एस धम्मो सनंतनो, भाग 5

प्रवचन-क्रम

42...झुकने से उपलब्धि, झुकने में उपलब्धि 2

43...परमात्मा अपनी ओर आने का ही ढंग
.... 22

44..ऊर्जा का क्षण-क्षण उपयोगः धर्म
.... 42

45..सुख या दुख तुम्हारा ही निर्णय
.... 60

46...जीवन-मृत्यु से पार है अमृत
.... 79

47..अकेलेपन की गहन प्रतीति है मुक्ति
.... 98

48..आज बनकर जी!
.... 118

49......................................महोत्सव से परमात्मा, महोत्सव में परमात्मा
.... 137

50..अशांति की समझ ही शांति
.... 156

51...आत्म-स्वीकार से तत्क्षण क्रांति
.... 178

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
ब्यालीसवां प्रवचन

झुकने से उपलब्धि, झुकने में उपलब्धि

अभिवादनसीलिस्स निच्चं पद्धापचायिनो।
चत्वारो धम्मा बड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।। 96।।

यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झयिनो।। 97।।

यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतं दल्हं।। 98।।

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बयं।। 99।।

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं।। 100।।

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं।। 101।।

आस्कर वाइल्ड की एक छोटी सी कहानी है। एक आदमी मरा। जिंदगी में लोग जो करना चाहते हैं, सब करके मरा। बड़ा पद, बहुत धन, सुंदर स्त्रियां--जो भी मनुष्य की आकांक्षाएं हैं--सभी को पूरी करके मरा।
परमात्मा के सामने न्यायालय में उपस्थित किया गया। स्वभावतः परमात्मा नाराज था। उसने कहा, बहुत पाप किए तुमने। तुम्हारे पास अपने किए गए पापों के लिए कोई उत्तर है? उस आदमी ने कहा, जो मैं करना चाहता था वह मैंने किया और उत्तरदायी मैं किसी के प्रति नहीं हूं। परमात्मा थोड़ा चौंका। उसने कहा, तुम हिंसा किए, हत्या किए, खून किए? उस आदमी ने कहा, निश्चित ही। तुमने धन के लिए लोगों की जानें लीं? तुमने व्यभिचार किया, बलात्कार किया? उस आदमी ने कहा, निश्चित ही। लेकिन उस आदमी के चेहरे पर शिकन भी न थी। न अपराध का कोई भाव था। न कोई चिंता थी। परमात्मा थोड़ा बेचैन होने लगा। अपराधी बहुत आए थे, यह कुछ नए ही ढंग का आदमी था। परमात्मा ने कहा, जानते हो, तुम्हारा यह बार-बार कहना कि हां, निश्चित ही, मैं तुम्हें नर्क भेज दूंगा! उस आदमी ने कहा, तुम भेज न सकोगे। क्योंकि मैं जहां भी रहा, नर्क में ही रहा। अब तुम मुझे कहां भेजोगे? मैंने नर्क के सिवाय कभी कुछ जाना ही नहीं, अब तुम हमें और कहां भेजोगे जहां नर्क हो सकता है?
अब तो परमात्मा के चेहरे पर पसीना झलक आया। कुछ सूझा न उसे। अब तक के सारे निर्णय, अब तक की लंबी सनातन से चली आती हुई घटनाएं, कोई काम न पड़ीं। कोई फाइल सार्थक न मालूम हुई। उसने कहा--घबड़ाहट में--कि फिर मैं तुम्हें स्वर्ग भेज दूंगा। उस आदमी ने कहा, यह भी न हो सकेगा। परमात्मा ने कहा, तुम आखिर हो कौन? मेरे ऊपर कौन है, जो मुझे रोक सके तुम्हें स्वर्ग भेजने से! उस आदमी ने कहा, मैं हूं। क्योंकि मैं सुख की कल्पना ही नहीं कर सकता और हर सुख को दुख में बदल लेने में मैं इतना निष्णात हो गया हूं। तुम मुझे स्वर्ग न भेज सकोगे। तुम भेजोगे, मैं नर्क बना लूंगा। मैंने सुख का स्वप्न भी नहीं देखा। सुख की कल्पना भी नहीं कर सकता हूं, तुम मुझे स्वर्ग कैसे भेजोगे?
और कहते हैं, मामला वहीं अटका है। परमात्मा सोच रहा है, इस आदमी को कहां भेजें? नर्क भेज नहीं सकता, क्योंकि नर्क में वह रहा ही है। स्वर्ग भेज नहीं सकता, क्योंकि स्वर्ग भेजने का उपाय नहीं है।
इस कहानी को ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना। यह किसी और आदमी की कहानी नहीं, सभी आदमियों की कहानी है। तुम वहीं भेजे जा सकते हो, जहां तुम

जाना चाहते हो। और अगर सुख की तुम्हारे जीवन में स्वप्न की भी क्षमता खो गयी है, तो तुम्हें कोई भी स्वर्ग नहीं दे सकता। स्वर्ग कोई दान नहीं। स्वर्ग किसी के अनुग्रह से न मिलेगा। अर्जित करना होगा।
सुख भी सीखना पड़ता है। सुख का स्वाद भी सीखना पड़ता है। और अगर तुम स्वाद को न जानो, तो सुख पड़ा रहेगा तुम्हारी थाली में, तुम उसे चख न सकोगे, तुम उसे अपना खून-मांस-मज्जा न बना सकोगे, वह तुम्हारी रक्त की धार में न बह सकेगा, वह तुम्हारे जीवन की रसधार न बनेगी।
और दुख भी तुम्हारा जीवन का ढंग है। तुम्हारे हाथ में जो पड़ जाता है, तुम दुख में बदल देते हो।
जो देखते हैं दूर और गहरा, उनसे अगर पूछो, जागे हुओं से पूछो, तो वे कहेंगे, सुख और दुख होते ही नहीं। तुम्हीं हो। वही घटना सुख बन जाती है किसी के हाथ में, वही घटना दुख बन जाती है। कोई उसी घटना को दुर्भाग्य बना लेता है, कोई उसी को सौभाग्य बना लेता है। सारी बात तुम पर निर्भर है। तुम आत्यंतिक निर्णायक हो। परमात्मा भी तुम्हें स्वर्ग नहीं भेज सकता, नर्क नहीं भेज सकता। तुम जहां होना चाहते हो, वहीं हो और वहीं रहोगे। तुम्हारी स्वतंत्रता अंतिम है। तुम अपने मालिक हो।
बुद्ध का इस बात पर गहनतम जोर है कि तुम अपने मालिक हो, कोई और मालिक नहीं। इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। उन्होंने कहा, बात ही क्या उठानी! आदमी आत्यंतिक रूप से जब खुद ही निर्णायक है, तो परमात्मा को छोड़ ही दो। परमात्मा को बीच में लाने से भ्रम बढ़ सकता है। भ्रम इस बात का कि चलो मैं गलती करूंगा, तो वह क्षमा कर देगा; कि चलो मैं भूल-चूक करूंगा, तो वह राह पर लगा देगा। इससे भूल-चूक करने में सुविधा मिल सकती है। परमात्मा की आड़ में कहीं ऐसा न हो कि तुम अपने को बदलने के उपाय छोड़ दो। तो बुद्ध ने कोई आड़ ही न दी। बुद्ध ने कहा, कोई आड़ की जरूरत नहीं, क्योंकि अंततः तो परमात्मा भी तुम्हारे विपरीत कुछ न कर सकेगा। हो, तो भी कुछ न कर सकेगा। और जब तुम्हीं करने वाले हो, तुम्हीं निर्णायक हो, तो यह परमात्मा शब्द कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी बेईमानियों को, तुम्हारी धोखाधड़ियों को छिपाने का आधार बन जाए। इसे हटा ही दो।
इसलिए बुद्ध का सारा जोर तुम पर है, मनुष्य पर है। बुद्ध का धर्म मनुष्य केंद्रित-धर्म है, उसमें परमात्मा की कोई भी जगह नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि बुद्ध के धर्म में परमात्मा का आविर्भाव नहीं होता। होता है, लेकिन मनुष्य से होता है। परमात्मा कहीं दूर आकाश में बैठा हुआ किसी सिंहासन पर नहीं है। मनुष्य के हृदय से ही उठती है वह सुगंध। दूर आकाश को व्याप्त कर लेती है।
और धर्मों का परमात्मा अवतरित होता है--हिंदू कहते हैं, अवतार--बुद्ध
का परमात्मा अवतरित नहीं होता, ऊपर से नीचे नहीं आता। ऊर्ध्वगमित होता है। नीचे से ऊपर जाता है। ज्योति की तरह है, वर्षा की तरह नहीं। वर्षा ऊपर से नीचे गिरती है। आग जलाओ, लपटें ऊपर की तरफ भागती हैं।
तो बुद्ध कहते हैं, जहां चैतन्य की ज्योति जलने लगी, वहां परमात्मा प्रगट होने लगता है। तुम जब पूरे जल जाओगे, जब तुम्हारे भीतर सारा कचरा- कूड़ा जल जाएगा, तुम खालिस कुंदन हो जाओगे, एक शुद्ध लपट रह जाओगे जीवन-चेतना की, बोध की, प्रकाश की, तुम्हीं परमात्मा हुए।
अभी तुम जो हो, उसके कारण भी तुम्हीं हो। कल तक तुम जो थे, उसके कारण भी तुम्हीं थे। कल भी तुम जो होओगे, उसके कारण भी तुम्हीं होगे। इस बात को ख्याल में ले लेना। यह आधारभूत है। बुद्ध के साथ बचने का उपाय नहीं। लुका- छिपी न चलेगी। बुद्ध ने आदमी को वहां पकड़ा है जहां आदमी सदियों से धोखा देता रहा है। बुद्ध ने मनुष्य को छिपने की कोई ओट नहीं छोड़ी। इसलिए बुद्ध का साक्षात्कार आत्म-साक्षात्कार है। बुद्ध को समझ लेना अपने को समझ लेना है। बुद्ध के साथ पूजा न चलेगी, प्रार्थना न चलेगी; बुद्ध के साथ भिक्षापात्र न चलेगा; बुद्ध के साथ तो आत्मक्रांति, रूपांतरण, खुद को बदलने का दुस्साहस!
पहला सूत्र है--

"जो अभिवादनशील है और जो सदा वृक्षों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें (धर्म) बढ़ती हैंः आयु, वर्ण, सुख और बल।"
एक-एक शब्द समझना होगा। क्योंकि बुद्ध जब शब्दों का प्रयोग करते हैं,
तो वह वैसा ही नहीं है जैसा औरों ने किया है। शब्द तो वही हैं, लेकिन बुद्ध ने उन पर अर्थों की बड़ी नयी कलमें लगायी हैं।
"जो अभिवादनशील है।"
बुद्ध ने अभिवादन करने को तो कोई भी नहीं छोड़ा। परमात्मा है नहीं। ऐसे तो कोई चरण नहीं हैं जहां सिर झुकाना हो। लेकिन फिर भी सिर झुकाने की कला को स्वीकार किया। इसलिए बात जरा सूक्ष्म हो जाती है। स्थूल पैर हों, तो सिर झुकाना बड़ा आसान। एक बार भरोसा कर लिया कि परमात्मा है, पैर हैं, झुक गए। झुकना सहज हो जाता है, पैर हों तो।
बुद्ध कहते हैं, पैर तो यहां कोई भी नहीं हैं। यहां कोई नहीं है जिसके सामने झुको, लेकिन झुकने की कला मत भूल जाना। इसलिए बात जरा सूक्ष्म और नाजुक हो जाती है। गहरी समझ होगी तो ही पकड़ में आएगी। स्थूल बुद्धि की भी पकड़ में आ जाता है कि यह पैर छूने योग्य हैं, क्योंकि इनसे पाने योग्य कुछ है। तो छूना भी व्यवसाय हो जाता है।
मंदिर में जाकर लोग झुक लेते हैं परमात्मा के चरणों में, पाने की आकांक्षा है कुछ। इन चरणों से मिल सकेगी, इन चरणों के प्रसाद से मिल सकेगी। यह झुकना न हुआ, सौदा हुआ। यह तुम परमात्मा का भी उपयोग करने चले गए। यह प्रार्थना न हुई। इसे तुम प्रार्थना मत कहना। यह तो परमात्मा को भी साधन बना लेना हुआ।
तुमने कभी ऐसी प्रार्थना की है जिसमें कुछ न मांगा हो? अगर नहीं, तो फिर प्रार्थना की ही नहीं। भक्ति शास्त्र कहता है--प्रार्थना करना, मांगना मत, नहीं तो प्रार्थना खंडित हो जाएगी। बुद्ध एक कदम और आगे ले जाते हैं। वे कहते हैं, प्रार्थना भी करना, मांगना भी मत, और कोई है भी नहीं जिससे तुम मांग सको। इसलिए मांगोगे, तो तुम कोरे आकाश में अपने से ही बातें कर रहे हो। इसलिए मांगना सिर्फ तुम्हारे अज्ञान की सूचना होगी। मगर अभिवादन, झुकने की कला, विनम्रता, समर्पित होने का भाव, ये बहुमूल्य हैं। बुद्ध ने जोर परमात्मा से हटा दिया, तुम पर ला दिया। अभिवादन तुम्हें करना है, कृतज्ञता ज्ञापन तुम्हें करना है, अनुग्रह का भाव तुम्हें करना है, कोई वहां है स्वीकार करने वाला या नहीं; नमस्कार तुम्हें करनी है, कोई वहां है नमन योग्य या नहीं, इस व्यर्थ चिंता में मत पड़ो। क्योंकि नमस्कार ही वरदान है। तुम झुके, इसमें ही पा लिया।
कोई देता नहीं है, झुकने से मिलता है। वहां कोई दाता नहीं बैठा है कि तुम झुकोगे--ज्यादा झुकोगे तो ज्यादा देगा, कम झुकोगे तो कम देगा, दिन-रात झुकते ही रहोगे तो देता ही चला जाएगा। जो न झुकेंगे उनको सजा देगा, जो विपरीत चलेंगे उनको नर्क में डाल देगा, ऐसा वहां कोई भी नहीं है। तुम्हारे झुकने से ही मिलता है। झुकने में ही मिलता है। झुकना ही मिलना है। इसलिए बात बिल्कुल आंतरिक है, तुम्हारी है, आत्मगत है। अकड़े, खोया। झुके, पाया। अकड़ से खोया, झुकने से पाया। न किसी ने छीना, न किसी ने दिया। परमात्मा को ऐसा बुद्ध ने हटा दिया। मंदिर नहीं मिटाया, परमात्मा को हटा दिया।
इसे थोड़ा समझो।
मंदिर को तो बनाए रखा। परमात्मा की मौजूदगी भी बाधा थी। मंदिर पूरा खाली न हो पाता था। परमात्मा की मौजूदगी के कारण, तुम झुकते भी थे तो स्वार्थ आ जाता था। परमात्मा की मौजूदगी के कारण, तुम जितना नहीं झुकना चाहते थे--कभी-कभी अतिशय कर जाते थे--उतना भी झुक जाते थे। धोखा आ जाता था। परमात्मा की मौजूदगी तुम्हें बिल्कुल नितांत अकेला न होने देती थी। तुम पूरे-पूरे स्वयं न हो पाते थे।
कभी तुमने ख्याल किया, दूसरे की मौजूदगी कभी अकेला नहीं होने देती। तुम अपने स्नानगृह में स्नान कर रहे हो, अचानक तुम्हें ख्याल आ जाए कि कोई चाबी के छेद से झांक रहा है, सब बदल गया। एक क्षण में सब बदल गया। अब तुम वही नहीं हो जो क्षणभर पहले थे। क्षणभर पहले दर्पण के सामने मुंह बिचका रहे थे, बचपन आया था, लौट गए थे पीछे, खुश थे, गीत गुनगुना रहे थे। लाख कहते

हैं लोग तुमसे, गीत गुनगुनाओ; तुम कहते हो, गला नहीं; स्नानगृह में भूल जाते हो। सभी गुनगुनाने लगते हैं। स्नानगृह में न गुनगुनाने वाला आदमी खोजना मुश्किल है। सभी वहां गायक हो जाते हैं। तुम ऐसे काम कर लेते हो कि अगर तुम भी अपने को पकड़ लो करते हुए, तो शरमा जाओ। मगर कोई झांकता है चाबी के छेद से, सब बदल गया। तुम वही न रहे जो क्षणभर पहले थे। मौजूदगी ने तुम्हें झूठा कर दिया।
बुद्ध कहते हैं, परमात्मा की मौजूदगी तुम्हें सच्चा ही न होने देगी। क्योंकि उसको तो चाबी के छेद से झांकने की जरूरत नहीं, वह तो सभी जगह मौजूद है। तुम नहा रहे हो, वह खड़े हैं। तुम कुछ भी करो, उनसे तुम बचकर न जा सकोगे।
वह तुम्हें स्थान न देंगे। वह तुम्हें चारों तरफ से घेर लेंगे। तुम बंधे- बंधे हो जाओगे।
बुद्ध ने कहा है, परमात्मा से मुक्त हो जाना मोक्ष का पहला कदम है। तभी तुम्हारी सहजता प्रगट होगी, तभी तुम सहजस्फूर्त होओगे। कोई नहीं है, तुम ही हो--निर्णायक, नियंता, मालिक।
इसे तुम स्वच्छंदता मत समझ लेना। क्योंकि इसी के साथ आता है परम दायित्व। क्योंकि फिर तुम्हारे ऊपर जो भी बीत रहा है, उसके जिम्मेवार भी तुम्हीं हो। दुख पाया, तुम्हीं ने बोया होगा। नर्क आया, तुमने ही निमंत्रण भेजा होगा। अंधेरे ने घेर लिया है, तुमने ही रचा होगा, तुमने ही सजाया होगा। मांगा होगा किसी अज्ञान के क्षण में, आ गया है अब। मांगने और आने में समय का फासला रहा होगा, लेकिन बिना तुम्हारे मांगे कुछ भी नहीं आता। फसल तुम वही काटते हो, जिसके तुम बीज बोते हो।
स्वच्छंदता नहीं है, स्वतंत्रता है। लेकिन स्वतंत्रता परम दायित्व है। अब तुम किसी और पर बोझ न रख सकोगे। भगवान को मानने वाला तो बोझ रख सकता है। वह कहता है, तूने दिया। तूने ऐसा करवाया, हम क्या करें? वह तो अपनी गठरी परमात्मा के कंधों पर रखने की उसे सुविधा है। बुद्ध के पास यह उपाय नहीं। गठरी तुम्हारी है, तो कंधा भी तुम्हारा है। उतारनी है, तो जिस तरह बनायी है, उसी तरह उतारनी होगी। जिस तरह बीज बोए, उसी तरह काटने भी होंगे। एक-एक बीज को दग्ध करना होगा, तभी तुम्हारे भीतर मुक्ति का प्रकाश होगा। "जो अभिवादनशील है।"
इसलिए बुद्ध कहते हैं, अभिवादनयोग्य तो कोई भी नहीं, लेकिन फिर भी अभिवादनशील तो रहना। कठिन होगा, लेकिन अगर समझोगे... बारीक है बहुत, फूल जैसा नहीं, सुगंध जैसा है। फूल को तो पकड़ भी लो, मुट्ठी में बांध भी लो। परमात्मा को मानने वाले की बातें फूल जैसी हैं। सुंदर। मुट्ठी में बांधी जा सकती हैं। बुद्ध की बातें फूल से मुक्त हो गयी सुवास जैसी हैं। अब तुम मुट्ठी भी न बांध सकोगे। अब बात बड़ी बारीक हो गयी। अब सीमाएं हट गयीं सब, असीम हो गयी।
"अभिवादनशील है जो।"
उसे बुद्ध चरित्र का पहला चरण मानते हैं। बुद्ध के पास जो जाता दीक्षा लेने, कहता--बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। किसी ने बुद्ध को पूछा कि आप तो कहते हैं अभिवादनयोग्य कोई भी नहीं, फिर कौन के प्रति लोग आकर कहते हैं--बुद्ध के शरण जाता हूं? तो बुद्ध ने कहा, बुद्ध का अर्थ ही वही है, जिसने जान लिया कि मैं नहीं हूं। शून्य के प्रति शरण जाते हैं। मैं सिर्फ बहाना हूं। मैं नहीं रहूंगा तब भी यह पाठ जारी रहेगा। मेरे होने, न होने से इसमें कोई फर्क न पड़ेगा। मैं था, मैं नहीं था, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। ये बुद्ध पुरुष की शरण नहीं जाते, बुद्धत्व की शरण जाते हैं। बोधि की शरण जाते हैं। होश की शरण जाते हैं। जागरण की शरण जाते हैं। स्मृति की शरण जाते हैं। मैं तो बहाना हूं।
जैसे सुगंध आयी हो और तुम्हें कठिन हो जाए, कहां अभिवादन करो, तो फूल
को अभिवादन कर दो। बाकी सुगंध तो अब मुक्त हो गयी है। फूल चला भी जाए तो भी सुगंध इस आकाश में व्याप्त रहेगी। बुद्ध आते हैं, जाते हैं, बुद्धों की सुवास तो सदा बनी रहती है। जिनके पास देखने की क्षमता होती है, अनुभव करने की क्षमता होती है, उनके लिए बुद्ध कभी मिटते नहीं। और जिनकी आंखें अंधी

हैं, कान बहरे हैं, उनके सामने भी साकार बुद्ध की प्रतिमा खड़ी होती है, तो भी उन्हें कुछ दिखायी पड़ता नहीं।
"जो अभिवादनशील है, जो सदा वृक्षों की सेवा करने वाला है।"
वृक्षों की! कहां यह आदमी परमात्मा से मुक्त होने की बात करता है, कहां कहता है वृक्षों की सेवा! वृक्ष बुद्ध के लिए प्रतीक है--जीवन का, विकास का, हरियालेपन का, ताजगी का, गति का।
बुद्ध के मरने के पांच सौ वर्ष तक बुद्ध की कोई प्रतिमा नहीं बनायी गयी। क्योंकि बुद्ध ने कहा, जरूरत क्या? मैं जिस वृक्ष के नीचे ज्ञान को उपलब्ध हुआ था, उसी की पूजा कर लेना। इसलिए बोधिवृक्ष की पूजा चली। पांच सौ वर्षों तक बुद्ध के मंदिर बने, उनमें सिर्फ बोधिवृक्ष का प्रतीक बना देते थे। काफी था। वृक्ष जीवन का प्रतीक है।
बुद्ध ने कहा, बजाय परमात्मा के चरणों में झुकने के... क्योंकि परमात्मा के चरणों में झुकना बड़ा आसान है, इतनी महिमापूर्ण घटना के चरणों में झुककर तुम भी महिमावान हो जाते हो। तुमने ख्याल किया, परमात्मा के चरणों में झुकने में भी हो सकता है अहंकार मजा लेता हो। हम कोई साधारण किसी के चरणों में थोड़े ही झुक रहे हैं, परमात्मा के चरणों में झुक रहे हैं! ये राम के चरण, ये कृष्ण के चरण! और हम झुकने वाले, हम भी कुछ छोटे न रहे! वृक्षों के चरणों में झुकना? यह बात ही कुछ बेबूझ हो जाती है। बुद्ध यह कह रहे हैं, झुकना ही हो तो छोटों के चरणों में झुकना। बुद्ध यह कह रहे हैं, झुकना ही हो तो ऐसे चरणों में झुकना कि कहीं झुकने में से ही अहंकार न निकलने लगे।
अब वृक्ष के चरणों में झुककर क्या अहंकार निकलेगा? लोग हंसें भला! लोग कहें, क्या कर रहे हो? मखौल भला उड़ायी जाए, लेकिन कहां सम्हालोगे अहंकार को! अहंकार तो सहारे चाहता है। अहंकार आकाश की तरफ देखता है। वृक्षों के चरणों में झुकने का अर्थ है, पृथ्वी के चरणों में झुकना। वहां, जहां वृक्ष की जड़ें हैं। मूल की तरफ झुकना, फूल की तरफ नहीं। परमात्मा तो आखिरी फूल है।
अगर हम जीवन को गौर से देखें तो वृक्ष जीवन की पहली झलक है, परमात्मा आखिरी। वृक्ष में पहली बार जीवन गतिमान हुआ है। परमात्मा अंतिम आरोहण है। तुम अंतिम की तरफ मत झुकना, तुम प्रथम की तरफ झुकना। क्योंकि यात्रा पहले ही कदम से होती है, अंतिम कदम से नहीं। मंजिल भूलो, उसकी कोई फिकर नहीं; पहले कदम को सम्हाल लो।
बड़े सौंदर्य का प्रतीक है वृक्ष। शांति का, मौन का, ताजगी का, नयेपन का-- अतीत के बोझ को नहीं ढोता; प्रतिपल नया है--छाया का, शीतलता का, विश्राम का; देता चला जाता है--दान का; तुम मारो पत्थर भी, तो भी फल ही दे देता है।
इसलिए बुद्ध ने बड़ी बेबूझ सी बात कही, "जो अभिवादनशील है और वृक्षों
की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं।"
ये चार बातें समझने जैसी हैं।
"आयु, वर्ण, सुख और बल।"
कोई बड़ी बातें नहीं मालूम होतीं। यह भी कोई बात हुई, बुद्ध के मुंह पर शोभा भी नहीं देती। आयु बढ़ाकर भी क्या होगा? वर्ण बढ़ने से क्या होगा? शूद्र न हुए ब्राह्मण हुए, क्या फर्क पड़ेगा? सुख, सुख तो सब सांसारिक है। और बल, शक्ति, वह तो अहंकार का ही परिपोषण करेगी।
नहीं, बुद्ध का अर्थ समझना होगा। आगे के सूत्र साफ हो जाएंगे, तब ख्याल में आ जाएगा।
बुद्ध कहते हैं, आयु का संबंध समय की लंबाई से नहीं, गहराई से है। तुम
सौ साल जीओ, यह सवाल नहीं है। तुम एक क्षण ध्यान में जी लो, बस। आयु बढ़ी। अमृत का स्वाद लगा। सौ साल भी जीओ, तो स्वप्न में ही जीते हो। वह जीना वास्तविक आयु नहीं है, आयु का भ्रम है। जैसे कोई रात सपना देखे और सपने में हजार साल जीए, सुबह जागकर पाए, हाथ खाली के खाली। क्या सुबह कहेगा, रात बड़ी लंबी आयु पायी? स्वप्न में गंवायी, लंबी हो कि छोटी, क्या फर्क पड़ता है?

आयु को बुद्ध कहते हैं, ध्यानपूर्वक एक क्षण भी उपलब्ध हो जाए, तो शाश्वत है। ध्यान से समय के पार जाने का द्वार खुलता है। जिसे हम आयु कहते हैं, वह समय की लंबाई है। जिसे बुद्ध आयु कहते हैं, वह शाश्वत में छलांग है। वहां कोई समय नहीं। समय के नीचे उतर जाना है। समय से गहरे उतर जाना है।
जैसे सागर की छाती पर लहरें हैं--तुम डुबकी लगा लो, लहरों के नीचे उतर गए। ऐसी समय की लहरें हैं सनातन, शाश्वत की छाती पर, तुम डुबकी लगा लो, तुम गहरे उतर गए। वहां है असली आयु। वहां बुद्ध पुरुष जीते हैं।
वर्ण से बुद्ध का अर्थ साधारण हिंदू वर्ण-व्यवस्था से नहीं है। क्योंकि बुद्ध ने कहा है, ब्राह्मण वही, जो ब्रह्म को जान ले। शूद्र वही, जो शरीर को ही सब मानकर जीए। तो बुद्ध ने कहा है, शूद्र सभी पैदा होते हैं, ब्राह्मण कभी-कभी कोई बन पाता है। पैदा तो सभी शूद्र होते हैं। शूद्र होना स्वाभाविक है। ब्राह्मण के घर में भी जो पैदा होता है, वह भी शूद्र ही पैदा होता है। लेकिन शूद्र के घर में भी कोई अगर स्वयं के ज्ञान को उपलब्ध हो जाए तो ब्राह्मण हो जाता है।
तो बुद्ध का वर्ण आत्मक्रांति का है।
बुद्ध कहते हैं, जिसने अभिवादन सीखा, जिसने झुकना सीखा, जिसने जीवन के मूल पर श्रद्धा के फूल चढ़ाए, उसके जीवन में शाश्वत उतरता है। शाश्वत के पीछे-पीछे ही शूद्रता विलीन हो जाती है, जैसे प्रकाश के आने पर छाया अंधेरा खो जाता है। वैसा व्यक्ति ब्राह्मणत्व को उपलब्ध हो जाता है, क्योंकि ब्रह्म को उपलब्ध हो जाता है। शाश्वत यानी ब्रह्म।
फिर सुख है। तुमने जिसे सुख कहा, वह नाममात्र को है, पीछे तो दुख ही छिपा है। ऊपर-ऊपर सुख लिखा है, भीतर-भीतर दुख छिपा है। बुद्ध सुख उसे कहते हैं, जो प्रथम में सुख, मध्य में सुख, अंत में सुख। जो कहीं से भी चखो, तो सुख। जिसे कैसे ही उलटो-पलटो, तो सुख। जिसको तुम कुछ भी करो, तो सुख। जापान में बुद्ध का महान संन्यासी भक्त हुआ, बोधिधर्म। उसकी प्रतिमा पूजी जाती है। जापान में उसका नाम है, दारुमा। तुमने दारुमा की जापानी गुड़ियां देखी होंगी। उन गुड़ियों की खूबी यह है कि उनको फेंको कैसा ही, वे हमेशा पालथी मारकर बैठ जाती हैं। उनकी पालथी वजनी है, अंदर शीशा भरा है। उनको फेंको उलटा-सीधा, लुढ़काओ, कुछ भी करो, कोई उपाय नहीं है, दारुमा हमेशा अपनी पालथी मारकर बुद्ध की भांति बैठ जाते हैं।
इसको बुद्ध सुख कहते हैं। तुम कुछ भी करो, उलटा करो, सीधा करो, ऐसा, वैसा, यहां से चखो, वहां से चखो, तुम उसे सुख ही पाओगे। जो प्रथम में, मध्य में, अंत में सुख है।
तुमने जिन्हें सुख जाना है, वह प्रथम तो सुख मालूम होते हैं, मालूम हुए भी नहीं कि जहर फैला। स्वाद लिया भी नहीं था कि तिक्तता आने लगी। हाथ बढ़ा ही नहीं था कि कांटे चुभने लगे। यह सुख नहीं है। यह तो ऐसा ही है जैसा मछली को पकड़ने के लिए हम कांटे में आटा लगाते हैं। कोई आटा खिलाने को थोड़े ही मछलियों को बांधकर बंसी में बैठा है! आटे में कांटा छिपाया हुआ है। मछली कांटा नहीं खाएगी, आटा खाएगी। लेकिन जो बंसी लगाकर बैठा है, उसकी नजर कांटे पर है।
जिनको तुमने सुख कहा है, उनके भीतर कांटे छिपे हैं। फंसोगे तुम कांटे में। जाओगे आटे की आशा में। हजार-हजार अनुभवों के बाद भी हम सीखते नहीं। जहां-जहां सुख दिखायी पड़ता है, फिर दौड़ जाते हैं। फिर कहीं आटा दिखायी पड़ा, चली मछली! सब अनुभव को बिसरा कर, सब भूल कर।
पहले भी ऐसा ही हुआ था, लेकिन आशा बड़ी अदभुत है। आशा से बड़ी कोई शराब नहीं। आशा कहती है, कौन जाने इस बार वैसा न हो, आटा ही आटा हो। एक बार कांटा था, हजार बार कांटा था, लेकिन एक हजार एकवीं बार हो सकता है कांटा न हो। अब तक बहुत दुख पाया, इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि आगे भी दुख होगा। एक और प्रयास करके देख लें। बस, आशा ऐसे ही एक प्रयास के सहारे जीती है। तुम फिर-फिर वही भूलें करते हो। तुम फिर-फिर उसी चाक में भरमते हो और आशा तुम्हें भरमाए चली जाती है।
बुद्ध कहते हैं सुख उस घटना को, जो शाश्वत और ब्रह्म के अनुभव से उपलब्ध होती है।

और बल। बल, जब तुम अत्यंत निराकार हो जाते हो, तब तुम्हारे भीतर से बल प्रवाहित होता है। जब तुम बांस की पोंगरी बन जाते हो, तब तुम्हारे भीतर से अनंत की धारा प्रवाहित होने लगती है। तब तुम सिर्फ द्वार होते हो। बल तुम्हारा तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि अंश का क्या बल! खंड का क्या बल! अखंड का ही बल हो सकता है। बूंद का क्या बल! सागर का ही हो सकता है। जब बूंद अपने को सागर में खो देती है, विराट के साथ एक हो जाती है, तो बलवान होती है।
बुद्ध कहते हैं, तुम जब तक अपने को पकड़े रहोगे, निर्बल रहोगे। जैसे ही छोड़ा, बलवान हुए। यह बल, हमारा साधारण पद, प्रतिष्ठा, तलवार, धन, तिजोड़ी का बल नहीं है। यह बल शून्य का बल है। मिटने से उपलब्ध होता है।
जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाएंगे, खो जाएंगे। जो अपने को खो देंगे, केवल वही बचते हैं। उसी बल की बात हो रही है।
जिंदगी जिससे इबारत हो तो वो जीस्त कहां
यूं तो कहने के तईं कहिए कि हां जीते हैं
ऐसे कहे चले जाते हैं कि हां, जीते हैं। मगर जिंदगी, जिसको कहें जिंदगी, वह कहां है! वह कहीं दिखायी नहीं पड़ती। जिंदा होकर भी हम मरे-मरे से हैं। न बल है, न सुख है, न ब्राह्मणत्व है, न शाश्वत की कोई झलक है। सब तरफ से मौत ने घेरा है, इसे तुम जिंदगी कहे चले जाते हो? प्रतिपल गंवाए चले जाते हो और इसको तुम विकास कहे चले जाते हो? हर सुख दुख बनता जाता है, हर स्वर्ग की आशा नर्क में परिवर्तित होती जाती है, फिर भी तुम कहे चले जाते हो कि जिंदगी है यह।
जिंदगी जिससे इबारत हो तो वो जीस्त कहां
यूं तो कहने के तईं कहिए कि हां जीते हैं
ऐसा किसको धोखा दे रहे हो? जिस दिन तुम्हें समझ में आ जाता है कि यह धोखा अपने को है, उसी दिन क्रांति की शुरुआत होती है, सूत्रपात होता है। और ध्यान रखना, जिस ऊर्जा से नर्क बनता है, उसी ऊर्जा से स्वर्ग भी बनता है। और जिस ऊर्जा से तुम्हारे जीवन में अंधकार आता है, उसी ऊर्जा से प्रकाश भी आता है। क्योंकि वे भिन्न नहीं हैं। सिर्फ तुम्हारे देखने का ढंग बदलने की बात है।
जहां घृणा करती है वास
जहां शक्ति की अनबुझ प्यास
जहां न मानव पर विश्वास
उसी हृदय में, उसी हृदय में
उसी हृदय में, वहीं, वहीं
जग की व्याकुलता का केंद्र
जहां से तुम्हारे भीतर अनबुझ प्यास उठती है शक्ति की और तुम दौड़ पड़ते
हो धन पाने, पद पाने; वहीं से, उसी केंद्र से समझ के साथ जब यह दौड़ उठती है, तो तुम पद पाने नहीं, परमपद पाने चलते हो। तब तुम धन जो बाहर है उसे पाने नहीं, धन जो भीतर है उसे पाने चलते हो। तब तुम जिस जिंदगी का अंत आज नहीं कल कब्र में हो जाएगा, उस जिंदगी पर समय व्यय नहीं करते, तुम उस अमृत की खोज में लग जाते हो जिसका कोई अंत नहीं है।
पर आदमी स्थगित किए चला जाता है। ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें इन बातों
का स्मरण न आता हो। नहीं, इतना नासमझ भी मैंने नहीं देखा कि जिसको इन बातों का स्मरण न आता हो। लेकिन तुम कहते हो, कल।
बस कल कर लूंगा, था यही रोग मेरा
दिन गुजर गए वे हाय! क्या हाथ आया
तुम कहते हो, कल, बात तो जंचती है। मेरे पास लोग आ जाते हैं, कहते हैं, बात जंचती है, अभी समय नहीं आया।
समय कब आएगा? तुमने कुछ इंतजाम किया है? कहीं ऐसा न हो कि मौत पहले आ जाए। समय पर तुम्हारा कोई बस है? तुम मौत को अटका सकोगे थोड़ी देर कि पहले मेरे समय को आ जाने दे, फिर तू आ जाना?
अगर तुम मौत को न टाल पाओगे, तो कृपा करके कुछ और मत टालो। जिंदगी को
तो तुम टाले चले जाते हो, मौत को तुम टाल न पाओगे। तुम किसे धोखा दे रहे हो?

लेकिन कल इतना करीब लगता है कि लगा अब आया, अब आया--आता कभी नहीं। कल इतना पास मालूम होता है कि सोए कि कल हुआ। लेकिन कभी हुआ? आज तक हुआ? जो आज है, वह भी कल कल ही था। कल छोड़ा था आज के लिए, आज छोड़ोगे कल के लिए, ऐसा छोड़ते ही चले जाओगे। क्रांति इस तरह की आत्मवंचना से मरती है।
"दुःशील और असमाहित होकर सौ साल जीने की अपेक्षा शीलवंत और ध्यानी का
एक दिन का जीना भी श्रेष्ठ है।"
दुराचरण में असमाहित होकर--और दुराचरण में असमाहित कोई होगा ही। लोग मेरे पास आते हैं, वे पूछते हैं, मन में बड़ी अशांति है, कोई उपाय? मैं उनसे पूछता हूं, पहले फिक्र करो अशांति है क्यों? क्योंकि अशांति कारण नहीं है, कार्य है। अशांति बीज नहीं है, फल है। बीज खोजो। तुम जरूर कुछ ऐसा करना चाह रहे हो, जिससे अशांति पैदा हो रही है। तुम जरूर ऐसा कुछ कर रहे हो, जिससे अशांति पैदा हो रही है। उसे तो तुम करते जाना चाहते हो और अशांति से भी बचना चाहते हो, यह असंभव है।
जैसे एक आदमी तेज दौड़ रहा है, छाती हांपने लगी। वह कहता है, छाती न हांपे, ऐसी कोई तरकीब बता दीजिए। लेकिन दौड़ जारी रखना चाहता है। वह कहता है, दौड़ेंगे तो, हम दौड़ने से कैसे रुक जाएं? असल में तो छाती न हांपे, इसीलिए पूछते हैं, ताकि ठीक से दौड़ सकें।
मेरे पास राजनेता आ जाते हैं। वे कहते हैं, मन में बड़ी अशांति है, रात नींद नहीं आती। मैं कहता हूं कि राजनीतिज्ञ को और नींद आती है, यह चमत्कार है! तुम्हें नहीं आती, यह स्वाभाविक है। अब या तो राजनीति छोड़ दो, या नींद को जाने दो। अक्सर तो वह नींद ही छोड़ने को राजी होते हैं। वह कहते हैं कि फिर अब थोड़ा सा तो फासला रह गया है, पहुंचे-पहुंचे हैं; उपमंत्री हो गए हैं, मंत्री हुए जाते हैं; या मंत्री हो गए हैं तो अब मुख्यमंत्री होने की बात है; अब थोड़े दिन और सही। इतना भूले-भटके, अब थोड़े दिन और सही।
लेकिन कभी कोई जानकर भूला-भटका है? ऐसा आदमी दोहरा धोखा दे रहा है। वह
यह कह रहा है, हम समझ भी गए कि यह सब भूल-चूक है, लेकिन फिर भी अपनी मौज से कर रहे हैं। मौज से कभी किसी ने आग में हाथ डाला है? समझे कि रुक जाता है। "दुःशील और असमाहित होकर सौ साल जीने की अपेक्षा... ।"
जीना कहां है? जहां चित्त तनावों से भरा हो, जहां चैन न हो, जहां चैन
की बांसुरी कभी बजी न हो, जहां कोई शीतल आंतरिक छाया न हो जहां विश्राम कर सको, जहां दो घड़ी सिर टिकाकर लेट सको ऐसा कोई स्थल, शरण-स्थल न हो, तो तुम सौ साल जीओ, यह ऐसे ही है जैसे कोई सौ साल एक सौ दस डिग्री बुखार में जीए। यह कोई जीना हुआ! इससे तो मर जाना भी शांति होती। कम से कम विश्राम तो होता। यह तो एक पीड़ा हुई, यह तो एक नर्क हुआ। समय की लंबाई से जीने का कोई संबंध नहीं। शांति की गहराई से जीने का संबंध है। उसी को बुद्ध आयु कहते हैं। "... शीलवंत और ध्यानी का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
किसको बुद्ध शीलवान कहते हैं? शील का, चरित्र का, बड़ा अपशोषण हुआ है।
शील के नाम पर, चरित्र के नाम पर, लोगों को बड़े झूठे पाखंड सिखाए गए हैं। अक्सर होता है, जब कोई बहुत महत्वपूर्ण बात होती है, तो उसकी आड़ में धोखाधड़ी चल पड़ती है।
जितने परम ज्ञानी हुए, सभी ने शील के गुणगान गाए। स्वभावतः, शील का सिक्का चल पड़ा। समाज, समाज के ठेकेदार, पंडित-पुरोहित, उन्होंने भी शील का नकली सिक्का गढ़ लिया। जब शील की इतनी चर्चा चली और सारे बुद्धपुरुषों ने शील की बात कही, तो स्वभावतः नकली सिक्के भी चल गए। नकली सिक्के तभी चलते हैं जब असली सिक्के में कोई बल हो। तुमने नकली सिक्कों के नकली सिक्के तो नहीं देखे। असली सिक्कों के ही नकली सिक्के चलते हैं। जो नोट चलता ही न हो, उसका कोई नकल करके भी क्या करेगा? जो दवा खुद ही न बिकती हो, असली न बिकती हो, उसकी नकली कोई क्या तैयार करेगा? नकली तो सिर्फ इतनी खबर देती है, वह असली के प्रति सम्मान है। वह असली की प्रशंसा है नकली का होना।
शील की बुद्धों ने बात की। लेकिन उनका शील से प्रयोजन बिल्कुल अलग है। और जब तुम्हारे समाज के ठेकेदार, मंदिर-मस्जिदों के ठेकेदार शील और चरित्र की बात करते हैं, उनका मतलब बिल्कुल और ही है। शब्द तो वही उपयोग करते हैं, लेकिन पीछे उनके अर्थ बिल्कुल अलग हैं।

बुद्ध कहते हैं शील उस जीवन की व्यवस्था को, जो तुम्हारे आंतरिक ध्यान से उपजे। इसलिए शीलवंत और ध्यानी एक साथ उपयोग किया है। कहीं चूक न हो जाए। जो शील तुम्हारे ध्यान के साथ रगा-पगा हो; जिस शील में ध्यान की गंध हो; जिस ध्यान में शील की गंध हो; जो शील एक तरफ से शील हो, दूसरी तरफ से ध्यान हो; एक ही सिक्के के दो पहलू हों--एक तरफ शील, दूसरी तरफ ध्यान--तो ही सार्थक है। अन्यथा चरित्र धोखा हो जाता है, पाखंड हो जाता है।
चरित्र दो तरह से निर्मित हो सकता है। बाहर से आरोपित, अंतर से आविर्भूत। लोग कहते हैं, ऐसा चरित्र चाहिए, और तुम पर थोप देते हैं। यह चरित्र झूठा है। तुम करोगे भी, बेमन से करोगे। तुम करोगे भी, करना भी न चाहोगे। करने से पीड़ा होगी। न करने से भी पीड़ा होगी। तुम अड़चन में पड़ोगे। अगर यह तुम्हारी अपनी अंतर्दृष्टि नहीं है, तो तुम करके भी पछताओगे, क्योंकि तुम्हारा मन कुछ और करना चाहता था। तुम शराब पीना चाहे थे, तुम मधुशाला जाने को आतुर थे, लेकिन पैर न जा सके। बीच में मस्जिद खड़ी थी, मंदिर खड़ा था, पंडित-पुजारी खड़े थे, तुम इतनी हिम्मत भी न जुटा पाए कि मधुशाला जा सकते। तुम लौट पड़े, मस्जिद में नमाज पढ़ने लगे। करना तो था कुछ, समय तो भरना था किसी से, मन को तो उलझाना था कहीं। पूजा की, पाठ किया, प्रार्थना की, लेकिन सब झूठा होगा। सब ऊपर-ऊपर होगा। कागजी होगा। भीतर मन मधुशाला के ही सपने देखेगा। न जाओगे मधुशाला, तो पछताओगे कि जो करने का मन था, वह न कर पाए। यह कुंठा घेरेगी। तुम दबे-दबे अनुभव करोगे। तुम्हारा जीवन बोझ रूप हो जाएगा।
और अगर तुम गए, तो मधुशाला में बैठकर भी तुम सुख न पाओगे। क्योंकि तब अपराध पकड़ेगा कि यह मैंने क्या किया? बुरा किया। मंदिर को त्याग कर मधुशाला आया। पुजारी की न सुनी, साधु की न सुनी, ज्ञानी की न सुनी। तब तुम्हारे मन में कांटा चुभेगा। तुम कुछ भी करो, झूठा चरित्र दुख देगा। ऐसा करो--पक्ष में; या वैसा करो--विपक्ष में; झूठे चरित्र ने सुख जाना ही नहीं। फिर कैसा चरित्र सुख जानता है? जो तुम्हारे भीतर, तुम्हारी समझ, तुम्हारी अंतर्दृष्टि से निकलता है।
करो वही जो तेरे मन का ब्रह्म कहे
और किसी की बातों पर कुछ ध्यान न दो
मुंह बिचकाएं लोग अगर तो मत देखो
बजती हों तालियां अगर तो कान न दो
चरित्र बड़ी क्रांतिकारी घटना है। हुआ तो उलटा है। समाज में तुम अक्सर
जो नपुंसक हैं, कमजोर हैं, उनको चरित्रवान पाओगे। हिम्मत न जुटा पाए--जाना तो मधुशाला था, मंदिर बीच में अड़ा था, प्रतिष्ठा दांव पर लग जाती। हिम्मत न जुटा पाए--जाना तो वेश्या तक था, लेकिन रामायण बीच में खड़ी थी, मर्यादा बीच में खड़ी थी। जाना कहीं था, गए कहीं। चाहते थे पूरब, पहुंचे पश्चिम; कमजोरी के कारण... ।
तुम अपने समाज में जिन लोगों को चरित्रवान समझते हो, जरा गौर से देखना। कहीं उनका चरित्र उनकी कायरता तो नहीं है? मैंने तो ऐसा सौ में निन्यानबे मौकों पर देखा कि जिनको तुम चरित्रवान कहते हो, वे कायर हैं। उनमें चरित्रहीन होने की हिम्मत नहीं, तो उन्होंने चरित्र का चोगा ओढ़ लिया है। वे कहते हैं, हम चरित्रहीन होना ही नहीं चाहते। लेकिन उनके भीतर वही कीड़ा काटता रहता है। अक्सर मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, दूसरे चरित्रहीन हैं, बेईमान हैं, धोखेबाज हैं, फल-फूल रहे हैं। और हम, जैसा शास्त्र में कहा है वैसा ही कर रहे हैं, कोई आशा नहीं दिखायी पड़ती, कोई सफलता नहीं मिलती।
चरित्रवान और ऐसी बात कहेगा! निश्चित ही यह चरित्रवान भी अपने चरित्र
के द्वारा वही पाना चाहता है जो चरित्रहीनों ने चरित्रहीनता के द्वारा पा लिया। मगर यह चरित्र भी बचाना चाहता है। यह वेश्यालय भी जाना चाहता है शोभायात्रा में बैठकर, लोग फूलमालाएं चढ़ाएं और यह वेश्यालय पहुंच जाए। तो जो कुट-पिट कर पहुंचे हैं वेश्यालय, उनसे इसके मन में ईर्ष्या है। पहुंचना तो इसे भी वहीं था, मंजिल तो इसकी भी वही थी, हिम्मत न जुटा पाए।

कमजोर चरित्रवान नहीं हो सकता। जो चरित्रहीन ही नहीं हो सका, वह चरित्रवान कैसे हो सकेगा? इसे मुझे फिर से दोहराने दो, जो चरित्रहीन भी होने की हिम्मत न जुटा पाया, वह चरित्रवान होने का साहस कैसे जुटा पाएगा? चरित्र क्या चरित्रहीनता से भी गया-बीता है? चरित्र तो महा ऊर्जा है। करो वही जो तेरे मन का ब्रह्म कहे
और किसी की बातों पर कुछ ध्यान न दो
मुंह बिचकाएं लोग अगर तो मत देखो
बजती हों तालियां अगर तो कान न दो
और तब संघर्ष से, घर्षण से, भूल-चूक से, गिरने-उठने से, भटकने से, फिर राह पर आने से, तुम्हारे भीतर निखार आता है। तुम पकते हो। अनुभव पकाते हैं। बस जो भी करो, बोधपूर्वक करना, ध्यानपूर्वक करना। जो भी करो, निरीक्षण करते हुए करना। सजग-भाव से करना। वही ध्यान का अर्थ है।
तो कोई भी तुम्हें भटका न पाएगा। आज नहीं कल तुम्हारे भीतर उस शील की गंध उठेगी, जो किसी के द्वारा आरोपित नहीं है। जिसे तुमने अर्जित किया। जो तुम्हारी संपदा है। जिसके तुम मालिक हो। जो तुम्हारी अपनी अंतर्दृष्टि का तुम्हारे बाह्य-जीवन में फैलाव और विस्तार है, वह तुम्हें आभामंडल की तरह घेरे रहेगा।
नर का भूषण विजय नहीं
केवल चरित्र उज्ज्वल है
लेकिन उज्ज्वल चरित्र का अर्थ दूसरों की व्याख्या नहीं है। किसको दूसरे उज्ज्वल चरित्र कहते हैं, इससे कोई संबंध नहीं है। उज्ज्वल चरित्र का अर्थ है, ध्यान के उजाले में पाया गया। अपने बोध से पाया गया। फिर दुनिया चाहे तुम्हें चरित्रहीन कहे... । बहुत बार ऐसा हुआ है, दुनिया ने जिन्हें चरित्रहीन कहा, समय ने बताया वे चरित्रवान थे। और दुनिया जिन्हें चरित्रवान मानती रही, वे कहां खो गए, धूल में कहां मिट गए, उनका कुछ पता नहीं।
जीसस को लोगों ने चरित्रहीन कहा। जीसस से बड़े चरित्रवान व्यक्ति को तुम खोज सकोगे? लेकिन चरित्रहीन कहा। न केवल कहा, बल्कि उनकी अदालतों ने पाया कि वे चरित्रहीन हैं, फांसी लगा दी।
सुकरात को जहर दिया, क्योंकि अदालत ने तय किया कि वह चरित्रहीन है। अदालत ने जो जुर्म लगाए सुकरात पर, उनमें एक था कि न केवल वह खुद चरित्रहीन है, वह दूसरों को भी चरित्रहीनता के लिए उकसाता है। यही तो जुर्म मुझ पर भी लगता है। लेकिन जिन्होंने जुर्म लगाया था, वे कहां खो गए! उनका नाम भी किसी को याद नहीं। सुकरात का चरित्र रोज-रोज उज्ज्वल होता गया। जैसे-जैसे आदमी की समझ बढ़ी, वैसे-वैसे अनुभव में आया कि यह आदमी जो कह रहा था, यह समाज की धारणाओं के विपरीत था, लेकिन जीवन की आंतरिक-अवस्था के विपरीत नहीं था। समाज चरित्रहीन है। इसलिए जब भी तुम्हारे बीच कोई चरित्रवान व्यक्ति पैदा होगा, समाज अड़चन अनुभव करता है। समाज को बेचैनी शुरू होती है। समाज ऐसा चरित्र चाहता है, जो समाज की चरित्रहीनता में व्याघात उत्पन्न न करे। ऐसा चरित्र चाहता है, जो बस ऊपर-ऊपर हो। जिससे कोई अड़चन जीवन की व्यवस्था में, ढांचे में न आए। गहरा चरित्र समाज नहीं चाहता। समाज चाहता है चरित्र की बात करो। समाज कहता है सत्य, अहिंसा, प्रेम की बात करो, उपदेश दो, लेकिन सच्चे बनने की चेष्टा ही मत करना, नहीं तो सारा समाज विपरीत हो जाएगा। बाप अपने बेटे से कहता है, सच बोलो। फिर कोई आया है मेहमान, घर के बाहर खड़ा है, और बाप बेटे से कहता है, कह दो घर में नहीं हैं। और वह बेटा कहता है, सच बोलूं? तब अड़चन शुरू होती है। यह बेटा दुश्मन जैसा मालूम पड़ेगा, जब यह कहेगा सच बोलूं? और अगर यह बेटा जाकर कह दे कि पिताजी भीतर हैं और उन्होंने कहा है कि घर पर नहीं हैं, तो समझ में आएगा कि सच... !
बाप चाहता भी नहीं था कि सच बोलो। वह तो यह कह रहा था कि अपने बेटों को
भी यही सिखा देना कि सच बोलो। बोलता कौन है! ये सिखाने की बातें हैं। ये सामाजिक रीति-रिवाज हैं, औपचारिकता है। सच बोलने ही मत लगना। सच बोलने की बात करते रहना, इससे झूठ बोलने में सुविधा होती है। सच की चर्चा करो! एक हाथ सच की बात करता रहे, दूसरे हाथ से जेब काट लो।

बेईमानी करने के लिए ईमानदारी का थोड़ा सा धुआं तो पैदा करना जरूरी है। असल में अगर तुम साफ-साफ बेईमान हो जाओ, तो तुम बेईमानी न कर सकोगे।
कैसे करोगे? अगर तुम सबसे कह दो कि मैं झूठ बोलता हूं, तो तुम सच्चे हो गए। अब और कैसे झूठ बोलोगे? अगर तुम लोगों से कह दो कि मैं चोर हूं, और चोरी करो--कैसे चोरी कर पाओगे? तब तो अचौर्य की दिशा में यात्रा शुरू हो गयी तुम्हारी।
अगर चोरी करनी है, तो शोरगुल मचाना कि चोरी पाप है; डंका बजाना कि चोरी पाप है। इतने जोर से बजाना कि कोई यह तो सोच ही न सके कि तुम, और चोरी कर सकते हो। इतना शोरगुल मचाने वाला आदमी चोरी करेगा! कभी नहीं। जिनकी तुम चोरी करोगे, वे भी यह भरोसा न कर सकेंगे कि यह आदमी, और चोरी करेगा!
तो चोर को अगर समझ हो, तो वह अचौर्य की शिक्षा देता है। झूठे को अगर थोड़ी अकल होती है, तो वह सच का शास्त्र फैलाता है। उसी के सहारे झूठ चलता है। झूठ के पास अपने पैर नहीं। उसको सच के पैर उधार लेने पड़ते हैं। बेईमानी के पास अपना बल नहीं। उसे ईमानदारी की आत्मा उधार लेनी पड़ती है। अधर्म खुद नहीं चल सकता, पंगु है। उसे धर्म के कंधे पर बैठना पड़ता है।
इसलिए तो मंदिरों की गहराई में तुम खोजोगे, तो धर्म को ऊपर, अधर्म को भीतर पाओगे। पाखंड जी सकता है तभी, जब वह घोषणा करता रहे कि पाखंड नहीं हूं मैं।
यही है सत्य, प्रचार जारी रहे। सदियों का प्रचार, झूठ को सच जैसा बताने लगता है।
चरित्र का अर्थ है, किसी के द्वारा थोपी गयी धारणाओं का अंधानुकरण नहीं, अपनी ही आंख से परखे गए मार्गों का अनुसरण।
जहां भुजा का पंथ एक हो, अन्य पंथ चिंतन का
सम्यक-रूप नहीं खुलता उस द्विधाग्रस्त जीवन का
तुम्हारा हाथ कुछ करे, तुम्हारा मन कुछ करे, तो तुम दुविधा में रहोगे। तुम्हारा सम्यक-रूप कभी खुल न सकेगा। तुम जो करो वही तुम्हारा भीतर का मन भी कहे, तुम जो कहो वही तुम करो भी, तुम्हारे भीतर एक समस्वरता हो-- समस्वरता यानी शील।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, "दुःशील और असमाहित।"
जो आदमी शील को छोड़ेगा, उसके भीतर की समता, समाहितता, सामंजस्य, संगीत, समन्वय खो जाएगा। शील, समाहित, समाधिस्थ--उसके भीतर सब शांत हो जाएगा, समता हो जाएगी, सम्यकत्व हो जाएगा। और सौ साल अशांत जीने की बजाय शीलवंत और ज्ञानी का एक क्षण का जीना भी श्रेष्ठ है।
"आलसी और अनुद्यमी होकर सौ साल जीने की अपेक्षा दृढ़ उद्यमशील का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
"आलसी और अनुद्यमी होकर... ।"
आलस्य का अर्थ क्या है? आलस्य का अर्थ है, जीवन तो मिला, लेकिन हम उपयोग नहीं करेंगे। सुबह हुई, लेकिन उठेंगे नहीं। सुबह का अर्थ है, उठो। भोर हुई, रात गयी, पक्षी भी जाग गए, जिनको तुम पशु कहते हो निंदा से, वे भी उठ गए, वृक्षों ने भी आंखें खोल दीं, फूल सूरज की खोज पर निकल पड़े, सब तरफ जीवन उठा, तुम पड़े हो! तुम यह कह रहे हो कि भगवान, तूने मार क्यों न डाला? तू मार ही डालता तो अच्छा था। हम उठने को तैयार ही नहीं। तुममें और कब्र में पड़े आदमी में फर्क क्या है?
आलस्य का अर्थ है, तुम जीवन का अवसर खो रहे हो। जहां ऊर्जा बहनी चाहिए, जहां ऊर्जा का प्रवाह होना चाहिए, जहां ऊर्जा नृत्यवान होनी चाहिए, वहां तुम बैठे हो सुस्त, काहिल, मुर्दे की भांति। जहां प्रेम की तरंग उठनी थी, वहां तुम उदास बैठे रहे, धूल चढ़े। जहां तुम्हारा चित्त का दर्पण चमकना था, जीवन का प्रतिफलन होता, वहां तुम पड़े रहे एक कोने में, अपने को अपने ही हाथ से अस्वीकार किए।
आलस्य का अर्थ है, जीवन अवसर देता, तुम खोते। जीवन बुलाता, तुम सुनते नहीं। जीवन आवाहन देता, तुम बहरे रह जाते। जीवन हजार-हजार तरफ से चोटें करता--उठो! तुम ऐसे जड़ कि चोटों को धीरे-धीरे पी जाते, अभ्यस्त हो जाते, पड़े रहते अपनी जगह।
"आलसी और अनुद्यमी होकर सौ साल जीने की अपेक्षा... ।"

फिर फायदा क्या? आलस्य है क्रमिक आत्मघात। मरना ही हो, एकदम से मर जाओ। यह धीरे-धीरे का मरना क्या? यह आहिस्ता-आहिस्ता मरना क्या? जीना हो, भभककर जी लो!
पश्चिम की एक बहुत विचारशील महिला रोजा लक्जेंबर्ग का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि अगर जीना हो, मशाल को दोनों तरफ से जलाकर जी लो।
अगर जीना हो! अगर न जीना हो, तुम्हारी मर्जी, मशाल को जलाओ ही मत। अगर दूसरे भी आग लगा जाएं, तो धुआं फेंकते रहो। जरा गौर से अपनी मशालें देखना। धुआं ही धुआं निकलता रहता है। लपट का पता ही नहीं चलता।
लेकिन जहां भी धुआं है, वहां लपट छिपी है। जरा हिम्मत जुटाओ! जरा खोजो! धुआं खबर दे रहा है आग की। धुआं ही धुआं उठाते रहोगे जिंदगी में? फिर सुख न पाया, आनंद न पाया, रस न पाया--शिकायत किसकी?
"आलसी, अनुद्यमी होकर सौ साल जीने की अपेक्षा दृढ़ उद्यमशील का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
बुद्धपुरुष की तरह एक क्षण जी लेना भी श्रेष्ठ है, हजारों साल बुद्धुओं की भांति जीने की बजाए। एक क्षण की प्रज्वलित चेतना सब झलका जाती है। एक क्षण का प्रज्वलित बोध सारे जगत को खोल जाता है, सारे रहस्य उघाड़ जाता है, सब पर्दे उठा जाता है, सब घूंघट हटा जाता है। सब जो मिलना चाहिए, एक क्षण में मिल सकता है, तुम्हारी त्वरा चाहिए।
बहुत शेष है, बहुत शेष है, बहुत शेष है
हम मत भूलें, हम मत अपना गुणगान करें
जिस घर को छूने, सागर की लहरें दौड़ रही हैं
आओ, उस घर के मालिक से कुछ पहचान करें
ऐसा सोचकर मत बैठे रहना कि बहुत शेष है, बहुत शेष है, बहुत शेष है, जल्दी क्या है? ऐसा सोच-सोचकर आलस्य को मत सजाते-संवारते रहना।
जिस घर को छूने, सागर की लहरें दौड़ रही हैं
जरा गौर से देखो सागर की लहरों को। कितनी उत्तुंग हैं, कितनी उतावली हैं, कितनी प्यासी हैं, कैसी भाग-दौड़ मची है, कैसी प्रतिस्पर्धा है!
जिस घर को छूने, सागर की लहरें दौड़ रही हैं
आओ, उस घर के मालिक से कुछ पहचान करें
और तुम्हें मौका मिला है मनुष्य होने का। घर से ही नहीं, घर के मालिक
से पहचान हो सकती है। लहरें तो किनारों को छूकर लौट जाएंगी, किनारे का राजा अपरिचित रह जाएगा। लहरें तो घर की दीवालों को छूकर लौट जाएंगी, तो भी इतनी उतावली हैं! तुम घर के मालिक से पहचान कर सकते थे, लेकिन तुम्हारे चैतन्य के सागर की लहरें उठतीं तो ही। उद्दाम वेग चाहिए, त्वरा चाहिए। ऐसे धीमे-धीमे टिमटिमाते-टिमटिमाते जीना क्यों? भभककर दोनों ओर से जले मशाल, उसको ही बुद्ध जीवन कहते हैं। तब तुम्हारे जीवन में एक क्रांति घटित होती है--लंबाई समाप्त हो जाती है, गहराई शुरू होती है। तब तुम ऐसे एक लहर से दूसरी लहर पर नहीं जाते, एक लहर से सीधे सागर की गहराई में जाते हो। "उत्पत्ति और विनाश का दर्शन किए बिना सौ साल जीने की अपेक्षा उत्पत्ति और विनाश के दर्शन का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
तुम्हें यही पता नहीं, कहां से आते हो, कहां जाते हो, कौन हैं? फिर भी तुम किस मुंह से कहते हो जीवित हो! और इससे बड़ी बेहोशी क्या होगी? और सोयापन क्या होगा? नींद में और जागरण में और फर्क क्या होगा? न पता कहां से आते, न पता कहां जाते। न पता क्यों हैं, क्या हैं, किसलिए हैं। ये कैसे तुम लकड़ी के एक टुकड़े की तरह नदी में बहे चले जाते हो--न कोई गंतव्य है, न कोई दिशा है, न कोई बोध है--थपेड़ों पर। परिस्थितियां जहां ले जातीं। तुम एक दुर्घटना हो। और दुर्घटना के ऊपर उठना साधना है।
पश्चिम में एक शब्द जोर से प्रचलित होता जा रहा है--एक्सीडेंटल मैन। दुर्घटनात्मक आदमी। आदमी एक दुर्घटना मालूम होता है। ऐसा लगता है, चीजें घट रही हैं, घटती जाती हैं; कुछ भी हो रहा है, क्यों हो रहा है, सन्निपात जैसा मालूम होता है। कुछ कारण नहीं दिखायी पड़ता। कुछ आकस्मिक संयोग मिल जाते हैं, कुछ हो जाता है, फिर तुम छिटक जाते हो; फिर कुछ संयोग मिल जाते हैं, फिर हो जाता है। भीतरी कोई जैसे समस्वरता नहीं है जीवन में।

ऐसे ही समझो कि गुलाब का पौधा है, चमेली के पास लगा था, चमेली का फूल खिल आया है। पौधा गुलाब का था, चमेली के पास लगा था, नकल में पड़ गया। चमेली का फूल खिल आया है। अब मुश्किल हुई खड़ी! यह चमेली का फूल गंधहीन होगा, क्योंकि गंध तो गुलाब की हो सकती थी। यह चमेली का फूल छाती पर बोझ होगा। यह फूल हो ही नहीं सकता, पत्थर होगा। क्योंकि फूल का तो मतलब यह है कि प्राण भीतर फूल जाएं, खिल जाएं, प्रफुल्लित हो जाएं। भीतर की नियति तो अधूरी रह गयी, अधमरी रह गयी, यह तो कुछ का कुछ हो गया।
दुर्घटना का अर्थ है, जो तुम होने को हो वह तो नहीं हो पाते, कुछ का कुछ
हो जाते हो। जैसा मैं लोगों को देखता हूं, किसी को भी उस जगह नहीं पाता जहां उन्हें होना चाहिए। लोग असंगत स्थितियों में बैठे हैं।
एक मित्र दस दिन पहले वापस इंग्लैंड गए। संन्यस्त हुए, दांत के डाक्टर हैं। दस साल से दांत के डाक्टर हैं, छोड़ना चाहते हैं, परेशान हैं, संगीतज्ञ होने की धुन थी सदा से। अब संगीतज्ञ और दांत का डाक्टर! कोई लेना- देना नहीं। दांतों की कटकटाहट सुनी है, संगीत सुना कभी?
मैंने पूछा, दस साल? वे बोले, सोचने में ही! दांत का डाक्टर भी नहीं हो
पा रहा हूं, क्योंकि मन वहां लगता नहीं। करता हूं दिनभर, मगर लगता है, यह मैं क्यों समय खो रहा हूं! यह जीवन गया, यह दिन और गया। यह एक दिन और बीता। मौत और करीब आयी। जो हाथ वीणा को छूने चाहिए थे, जो वीणा को छूने को आतुर हैं, वे व्यर्थ लोगों के दांतों की सफाई करने में लगे हैं।
दांत के डाक्टर होने में कुछ बुराई नहीं है। लेकिन तुम्हारी नियति हो, दुर्घटना न हो। क्योंकि जिसको दांत का डाक्टर होना था, वह अगर वीणा लेकर बैठ जाए, तोड़ डालेगा। उनका वीणावादन लोगों के प्राणों में शांति न लाएगा, घबड़ाहट ले आएगा। वे लोगों की शांति को नष्ट कर देंगे।
जिसको जो होना है, वही हो। लेकिन यह तो कैसे? हमें उत्पत्ति का ही पता नहीं--हम कैसे बनते हैं! हम कैसे होते हैं! हम कैसे बिखरते हैं! यह तो हमें जब तक अपने स्वभाव से पहचान न होगी तब तक हम दुर्घटना ही रहेंगे।
बुद्ध कहते हैं, "उत्पत्ति और विनाश का दर्शन किए बिना सौ साल जीने की अपेक्षा उत्पत्ति और विनाश के दर्शन का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।" जिसने ठीक से देख लिया, कहां से आता हूं, क्या है मेरा मूल स्रोत, कहां जाता हूं, क्या है मेरा गंतव्य, तो कई बातें दिखायी पड़ जाएंगी। एक बात तो यह दिखायी पड़ेगी कि शरीर पैदा होता है, शरीर समाप्त हो जाता है। क्या मेरे भीतर कुछ और है, जो न कभी पैदा होता, न कभी समाप्त होता? अगर शरीर को तुमने गौर से देख लिया, तो तुम्हें उस सनातन का स्वर भी भीतर सुनायी पड़ने लगेगा, जो न कभी शुरू हुआ और न कभी समाप्त होता है।
अभी तो तुमने शरीर की मंजिल को अपनी मंजिल समझ रखा है, वही दुर्घटना
हो गयी है। अभी तुमने आजीविका को जीवन समझ रखा है, वही दुर्घटना हो गयी है। जीवन कुछ और है, सिर्फ रोटी-रोजी कमा लेना ही नहीं। रोटी के ही सहारे कौन कब जी पाया है? रोटी जरूरी है, पर्याप्त नहीं। बिना उसके न जी सकोगे, लेकिन अगर उसी से जीए, जीना न जीना बराबर है।
होड़ देवों से लगायी, मनुज भी बनना न सीखा
विश्व को वामनपगों से नापने की कामना है
आदमी क्या से क्या नहीं होना चाहता? लेकिन वही नहीं हो पाता, जो हो सकता था।
होड़ देवों से लगायी, मनुज भी बनना न सीखा
विश्व को वामनपगों से नापने की कामना है
पहले तुम वही हो जाओ, जो तुम हो सकते हो। पहले अपनी नियति को पहचान लो। पहले तुम वही हो जाओ, जो तुम हो। तुम्हारा होना ही तुम्हारा भाग्य है। उसकी पहचान के बिना इर्द-गिर्द तुम कितने ही चक्कर काटो, तुम दुर्घटना ही रहोगे।
कहां से बढ़ के पहुंचे हैं कहां तक इल्मो-फन साकी
मगर आसूदा इन्सां का न तन साकी न मन साकी
कितना ज्ञान बढ़ गया! कितना इल्म, कितना फन, कितनी कला, कितना विज्ञान, लेकिन न आदमी के तन को शांति है, न मन को शांति है।

कहां से बढ़ के पहुंचे हैं कहां तक इल्मो-फन साकी
मगर आसूदा इन्सां का न तन साकी न मन साकी
कहीं कुछ भूल हो रही है। स्वभाव से पहचान नहीं बैठ रही है। इल्म और फन किसी और मार्ग पर लिए जा रहे हैं। आदमी कुछ और होने को बना था। आदमी के भीतर कुछ और है जो उसे तृप्त करेगा, उसकी प्यास को बुझाएगा, और इल्मो-फन कुछ और बताए जाते हैं। जरा ध्यान रखना, दुर्घटना इतने जोर से घट रही है, घटती रही है कि बहुत संभावना है, तुम भी धोखे में आ जाओ।
अक्सर ऐसा होता है, लोग अनुकरण में लग जाते हैं। तुमने देखा, किसी ने नया मकान बनाया। बस, तुम्हें जरूरत न थी क्षणभर पहले तक इस नए मकान की, क्षणभर पहले तक तुमने स्वप्न भी न देखा था इस मकान का, क्षणभर पहले तक तुम्हें ख्याल भी न था कि अपने पास जो मकान है वह ठीक नहीं, किसी और ने मकान बनाया, बस अनुकरण पैदा हुआ। चले तुम। अब तुम भूल ही गए कि इस मकान को बनाने में वर्षों लगेंगे। यह जरूरत है तुम्हारी? यह तुम सच में चाहते हो? वर्ष इस पर खराब करने जैसे हैं? इसे सोचकर, समझकर, होश से तुम चुन रहे हो? कि सिर्फ एक पागलपन ने, एक जुनून ने पकड़ा कि पड़ोसी के पास है, मेरे पास क्यों न हो? किसी के पास कार देख ली, तुम बेचैन हो गए।
ध्यान रखना, अनुकरण से जो चलेगा, वह थपेड़ों में जीएगा। वह समय को ऐसे
ही गंवा देगा। तुम अपनी जरूरत को समझना। अपने भीतर की आंतरिक जरूरत को पहचानना। और अपने स्वभाव को देखना कि मेरे लिए क्या हितकर है? मेरी आंतरिक आकांक्षा, अभीप्सा क्या है? मैं क्या पाकर सुखी हो सकूंगा? तुम यह मत देखना कि दूसरे क्या पाकर सुखी हो गए हैं।
पहली तो बात, वे सुखी हुए हैं या नहीं, तुम तय नहीं कर सकते। किसी के पास बड़ा मकान है, इससे कोई सुखी हो गया है, ऐसा मत सोच लेना। तुमसे छोटे मकान वाले तुमको भी सुखी समझ रहे हैं। किसी के पास बड़ी कार है, इससे वह सुखी हो गया है, ऐसा मत समझ लेना। सुख चेहरे पर है, वह दूसरे को दिखाने के लिए है। चेहरे बाजारू हैं। उनको हम बाजार में काम लाते हैं, घर पर रख देते हैं। वे मुखौटे हैं।
फिर दूसरी बात, हो सकता है दूसरा सुखी हो गया हो, उसके स्वभाव के साथ कुछ तालमेल बैठा हो। लेकिन तुम्हारे स्वभाव के साथ तालमेल बैठेगा?
अपनी अभीप्सा को शुद्ध-शुद्ध पहचानना जरूरी है आदमी के लिए, ताकि वह दुर्घटनाओं से बच जाए। अन्यथा मैं अनेकों को देखता हूं, वे सब दुर्घटनाओं में ग्रस्त हैं। जहां उन्हें जाना नहीं था, चल पड़े। पहुंच जाएं तो परेशान होंगे, क्योंकि तब पाएंगे, अरे! यहां तो कभी आना ही न चाहा था। जहां पहुंच गए, जहां पहुंचने के लिए जीवनभर जद्दोजहद की, वहां पहुंचकर पता चला कि यह तो अपनी मंजिल ही न थी। अब लौटना भी मुश्किल हो गया। लौटने का समय भी न रहा, सांझ हो गयी। अब तो रात घिरने लगी। तब वे तड़फेंगे। एक-एक क्षण बहुमूल्य है। स्वभाव से उसे कसते रहना।
दूसरों का अनुकरण करने का कुछ बुनियादी कारण है। और वह कारण यह है कि अपना ही अनुकरण करने में हमें आश्वस्तता नहीं मालूम होती। पता नहीं ठीक हों कि न हों। दूसरों ने तो करके दिखा दिया है। यह देखो महावीर पहुंच गए। यह देखो बुद्ध पहुंच गए। ये तो पहुंच गए। इनका पहुंचना तो प्रामाणिक है।
अब हम चलेंगे, अंधेरे में टटोलेंगे, पता नहीं पहुंचें कि भटकें। बेहतर, किसी के पीछे हो लें। पीछे होने का कारण यह है कि तुम सोचते हो, दूसरा पहुंच गया, तो अब हम सिर्फ सहारा पकड़कर पहुंच जाएंगे।
लेकिन दूसरा अपने स्वभाव को पहुंचा। तुम अपने स्वभाव को पहुंचने थे।
बुद्ध के पीछे चलोगे तो तुम भी वहीं पहुंच जाओगे जहां बुद्ध पहुंचे। लेकिन बुद्ध के स्वभाव से उसका तालमेल था, संगीत था, समन्वय था; तुम पहुंचकर भी बेचैन रहोगे। इसलिए अनुकरण से कोई कभी नहीं पहुंचता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है, मौलिक है।
समझो सबसे, करो अपनी। और करने का साहस रखो। भूल से डरो मत। जो भूल से डरा, वह जल्दी ही अनुयायी बन जाता है। अनुयायी बनने का मतलब ही यह है कि भूल करने की हम हिम्मत नहीं करते।
प्रकाश मेरे अग्रजों का है

परंपरा का है
पोढ़ा है, खरा है
अंधकार मेरा है
कच्चा है, हरा है
प्रकाश मेरे अग्रजों का है
परंपरा का है
पोढ़ा है, खरा है
अंधकार मेरा है
कच्चा है, हरा है
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारा अंधकार ही तुम्हारे काम आएगा। दूसरों का उधार प्रकाश काम न आएगा। उधार प्रकाश अपने अंधकार से भी बदतर है। क्योंकि उससे तुम्हारे जीवन का कोई तालमेल ही न बैठेगा। तुम्हारी टोपी ही तुम्हारे सिर पर बैठेगी। दूसरों के जूते काटेंगे, कभी ढीले पड़ जाएंगे, कभी छोटे पड़ जाएंगे। तुम्हारे पैर का जूता तुम्हीं को खोजना, बनाना है। तुम भीतर कुछ इतने अनूठे हो कि तुम जैसा न कभी कोई हुआ है, न कभी कोई होगा।
इसलिए उधार कपड़े मत मांगना। जीने की हिम्मत, साहस रखना; तो ही तुम दुर्घटना से बचोगे। अन्यथा दुर्घटना सौ में निन्यानबे मौकों पर करीब-करीब निश्चित है। सौ में कोई एकाध सौभाग्यशाली बच पाता है। जो बच जाता है, वह बुद्धत्व को उपलब्ध होता है।
"अमृतपद (निर्वाण) का दर्शन किए बिना सौ साल जीने की अपेक्षा अमृतपद
का दर्शन कर एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
जिसे हम जीवन कहते हैं, क्षणभंगुर है। अभी है, अभी गया। अभी था, अभी न हुआ। आभास की तरह। चांद के प्रतिबिंब की तरह है झील में। जरा सी झील हिली, चांद का प्रतिबिंब टूटा, बिखरा--चांदी फैल गयी। अभी था, अभी खो गया। यह जो संसार है, स्वप्न से ज्यादा नहीं है। क्षणभंगुर है।
इसके साथ बहुत माया-मोह में मत पड़ जाना। क्योंकि तुम जब तक माया-मोह बसा पाओगे, यह बदल जाता है। यह बेईमान है। इसका विश्वास मत कर लेना। इधर तुम घर बनाने को तैयार थे, तब तक भूमि ही खिसक जाती है। तुम जब तक नाव बनाकर तैयार हुए, नदी ही विदा हो जाती है। तुम्हारा और इस संसार का कभी मेल न होगा। क्योंकि यह पल-पल भागा जाता है, पल-पल बदला जाता है।
जिसने संसार की क्षणभंगुरता देख ली, उसके ही जीवन में निर्वाण का, शाश्वत का स्मरण शुरू होता है।
विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चंद
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मंद
यहां किसका अनंत यौवन!
अरे अस्थिर छोटे जीवन!
छलकती जाती है दिन-रैन
लबालब तेरी प्याली मीत
ज्योति होती जाती है क्षीण
मौन होता जाता संगीत
करो नैनों का उन्मीलन,
क्षणिक है मतवाले जीवन!
जरा आंख को मींड़कर देखो--दीया चुकता जाता है। जरा आंख खोलकर देखो-- संगीत समाप्त होता जाता है। जरा गौर से चारों तरफ देखो--यहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है, सब बदला जा रहा है।
इस बदलते हुए प्रवाह में तुमने घर बनाने की सोची! सराय तक बनाते, तो ठीक था। रात का विश्राम ठीक था, सुबह चल पड़ना होगा। रुक जाते, पड़ाव समझते, ठीक था, समझदारी थी; घर बनाने बैठ गए हो! स्थाई घर बना रहे हो! अस्थाई तत्वों से स्थाई घर बनाने की कामना की है! तो दुख पाओगे। तो भरमोगे, भटकोगे; और निर्वाण का परमपद तुम्हारे ख्याल में भी न आएगा।

गुंचा चटका और आ पहुंची खिजां
फस्ले-गुल की थी फकत इतनी बिसात
इधर खिला भी नहीं फूल कि आ गया पतझड़। इतनी ही बिसात है। आदमी को तुमने खिलते देखा? कली खिल कहां पाती है? कभी-कभी खिलती है। तब तो हमें बुद्धों का स्मरण हजारों साल तक रखना पड़ता है। बुद्धों का मतलब है, जिनकी कली खिली। अधिक लोग तो कली की तरह ही मर जाते हैं।
गुंचा चटका और आ पहुंची खिजां
फस्ले-गुल की थी फकत इतनी बिसात
बस इतनी सी सीमा। खिल भी न पाए और मौत आ गयी। हंस भी न पाए और आंसू घिर आए। डोला उठा भी न था कि अर्थी उठ गयी। इसे गौर से जो देखता है, पहचानता है, समझता है, धीरे-धीरे पाता है, यहां घर बनाने जैसा नहीं। अमृत में घर बनाएंगे, मरणधर्मा में क्या घर बनाना! निर्वाण में घर बनाएंगे, संसार में क्या घर बनाना! यहां कुछ भी तो साथ देगा नहीं। संगी-साथी सब दो दिन के आश्वासन हैं, सांत्वना हैं, संतोष हैं। कौन किसका साथी है? राह पर मिल लिए, थोड़ी देर साथ हो लिए, फिर राहें अलग हो जाती हैं, फिर हम अलग हो जाते हैं। कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक
मरते दम आंख को देखा है फिर जाती है
औरों की तो बात ही छोड़ दो, अपनी ही आंख फिर जाती है। वही साथ नहीं देती।
कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक
मरते वक्त देखा है?
मरते दम आंख को देखा है फिर जाती है
यहां सब ख्याली पुलाव है। यहां सब सपने का जाल है। यहां कोई अपना नहीं। यहां कोई संगी-साथी नहीं। शाश्वतता में साथ खोजो। बुद्ध का वचन है, अमृतपद। जो कभी मरे न, जो मरणधर्मा नहीं है।
"अमृतपद का दर्शन किए बिना सौ साल जीने की अपेक्षा अमृतपद का दर्शन कर
एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
"उत्तम धर्म का दर्शन किए बिना सौ साल जीने की अपेक्षा उत्तम धर्म का दर्शन कर एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।"
उत्तम धर्म उस प्रक्रिया का नाम है जिससे अमृतत्व उपलब्ध होता है। उत्तम धर्म उस विधि का नाम है जिससे तुम समय से हटकर शाश्वत के करीब आते हो। उत्तम धर्म उस कीमिया का नाम है जिससे तुम दूसरों के आरोपित चरित्र से मुक्त होकर अपने शील के निकट आते हो। उत्तम धर्म उस विज्ञान का नाम है जिससे तुम दुर्घटना से बचते और तुम्हारे जीवन में गंतव्य दिशा आती।
धर्म तो बहुत हैं, उत्तम धर्म एक है। धर्म तो हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है, बौद्ध है; उत्तम धर्म विशेषणशून्य है। उत्तम धर्म शास्त्र में नहीं, स्वयं में है। उत्तम धर्म किसी दूसरे के सिखाए नहीं सीखा जाता, अपने ही अनुभव, अपने ही जीवन की कसौटी पर कस-कसकर पाया जाता है। धर्म सीखा जा सकता है, उत्तम धर्म जीया जाता है। वेद में, कुरान में, बाइबिल में जो है, वह धर्म है। अब तो धम्मपद में जो है, वह भी धर्म है। जब तुम्हारे भीतर जागरण होता है और तुम गवाह हो जाते हो वेदों के, कुरानों के, बाइबिलों के, धम्मपदों के; जब... ।
अभी तो ऐसा होता है, तुम वेद पढ़ते हो, तुम कहते हो, शायद ठीक हो, शायद ठीक न हो, कौन जाने? अभी तुम चेष्टा करके मान भी लो कि बुद्ध जो कहते हैं ठीक ही कहते होंगे, तो भी यह चेष्टा ही होगी, श्रद्धा न होगी। भीतर कहीं संदेह खड़ा ही रहेगा।
लेकिन फिर एक ऐसी घड़ी आती है तुम्हारे ही ध्यान की, तुम्हारे ही मौन
की कि तुम भी इसी सत्य के दर्शन को उपलब्ध होते हो, जिसको बुद्ध उपलब्ध हुए हैं, महावीर उपलब्ध हुए हैं, वेदों के ऋषि उपलब्ध हुए हैं; मोहम्मद ने पाया, क्राइस्ट ने पाया; तुम्हारी आंखें भी उसी परमसत्य को देखती हैं। तुम खुद ही आ गए गौरीशंकर के करीब। अब यह कोई सुनी-सुनायी बात न रही। यह कोरी हवा में उठी बात न रही। अब यह तुम्हारा अपना अंतरदर्शन हुआ। यह तुम्हारा अनुभव हुआ। यह शीतलता तुमने पायी। यह आनंद तुमने भोगा। यह नाच तुम्हारे

जीवन में उठा। यह सुगंध तुम्हें घेर गयी। अब तुम यह कह सकते हो कि वेद सही हैं। इसलिए नहीं कि वेद सही होने चाहिए, बल्कि इसलिए कि मेरा अनुभव कहता है। अब तुम कह सकते हो कि बुद्ध ठीक हैं। इसलिए नहीं कि बुद्ध गलत नहीं हो सकते, बल्कि इसलिए कि अब मेरा बुद्धत्व कहता है कि उनके ठीक होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। मैं गवाह हूं।
उत्तम धर्म का अर्थ है, जिस दिन तुम गवाह बन जाओ। और वैसा जीवन ही जीवन है। बुद्ध कहते हैं, एक क्षण भी उत्तम धर्म का जीवन जी लिया, अर्थात अपने अनुभव का, अपने प्रकाश का, अपनी ज्योतिर्मयता का, तो सौ वर्ष जीने से बेहतर है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
तिरतालीसवां प्रवचन

परमात्मा अपनी ओर आने का ही ढंग

पहला प्रश्नः कल तक आप हमें परमात्मा की ओर जाने को कह रहे थे, आज हमें अपनी ही ओर जाने पर जोर दे रहे हैं। आपको तो दोनों ओर, दोनों अतियों में बहना सरल है, खेल है, पर हम कैसे इतनी सरलता से दोनों ओर बहें, आपके साथ-साथ बहें? कृपा कर समझाएं।

जीवन को अतियों में तोड़कर देखना ही गलत है। जीवन को दो में तोड़कर देखने में ही भ्रांति है। तुम अगर कभी एक को भी चुनते हो, तो दो के खिलाफ चुनते हो। तुम्हारे एक में भी दो का भाव बना ही रहता है। तुम एक किनारे को चुनते हो, तो दूसरे किनारे को छोड़कर चुनते हो। छोड़ने से दूसरा किनारा मिटता नहीं। तुम्हारे छोड़ने से दूसरे किनारे के मिटने का क्या संबंध है! वस्तुतः तुम्हारे इस किनारे को पकड़ने में दूसरा किनारा बना ही रहता है। तुम उसके विपरीत ही इसे पकड़े हो। अगर दूसरा किनारा खो जाए, तो यह किनारा भी कैसे बचेगा? जाते हैं दोनों साथ जाते हैं, रहते हैं दोनों साथ रहते हैं।
अद्वैत, दो में से एक का चुन लेना नहीं है। अद्वैत, दो का ही चला जाना है। अद्वैत का अर्थ हैः जहां दो को देखने की दृष्टि न रही, जहां विभाजन करने का रस न रहा, जहां तुम चीजों को विपरीतता में देखते ही नहीं।
रात है और दिन है, किसने तुम्हें कहा अलग-अलग हैं? कहां तुम विभाजन की रेखा खींचते हो? कहां बनाते हो सीमा? दिन कहां समाप्त होता है? किस घड़ी में, किस पल? किस पल रात शुरू होती है? दोनों एक हैं। प्रकाश और अंधकार एक ही ऊर्जा के दो नाम हैं, एक ही ऊर्जा की अभिव्यक्ति के दो ढंग हैं। परमात्मा और आत्मा भी एक ही बात को कहने की दो शैलियां हैं। भक्ति और ज्ञान भी, संकल्प और समर्पण भी।
जहां-जहां तुम्हें विरोध दिखायी पड़े वहां-वहां चेत जाना। सम्हलना। कहीं कोई भूल हुई जाती है। कहने के ढंग हैं। फिर तुम्हें जो रुच जाए, तुम्हें जो भला लग जाए, कहने की वही शैली चुन लेना। लेकिन कहने की शैली को सत्य की अभिव्यंजना मत मानना।
तुम्हारी मौज, तुम भक्ति के रस में डुबाकर कहो अपने अनुभव को। तुम अपने अनुभव को भगवान कहो, तुम्हारी मौज। तुम अपने अनुभव को आत्मा कहो, भगवान का शब्द न दो। लेकिन जिस तरफ इशारा हो रहा है, वह एक ही है।
गालिब का एक बहुत महत्वपूर्ण पद है--
कतरा अपना भी हकीकत में है दरिया लेकिन
हमको तकलीदे-तुनकजरफिए-मंसूर नहीं
सूफी फकीर मंसूर ने कहा, अनलहक! मैं ब्रह्म हूं, मैं परमात्मा हूं। गालिब ने खूब गहरा मजाक किया है। किसी ने मंसूर पर ऐसा मजाक नहीं किया। गालिब कहता है--
कतरा अपना भी हकीकत में है दरिया लेकिन
माना कि बूंद भी सागर है, यह मुझे भी पता है।
हमको तकलीदे-तुनकजरफिए-मंसूर नहीं
लेकिन मंसूर का कहने का ढंग जरा ओछा है। यह कहने का ढंग हमें पसंद नहीं। मालूम तो हमें भी है कि मैं ब्रह्म हूं, लेकिन यह बात हमें कहनी जंचती नहीं। मंसूर ने जरा जल्दबाजी कर दी। यह कहने की बात नहीं थी। यह समझ लेने की बात थी। यह चुपचाप पी लेने की बात थी। यह ढंग हमें पसंद नहीं। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात गालिब कह रहा है। गालिब यह कह रहा है कि बात तो बिल्कुल सही है, रत्तीभर भी कुछ भूल-चूक नहीं, लेकिन कहने की यह शैली हमें जंचती नहीं।
कतरा अपना भी हकीकत में है दरिया लेकिन
हमको तकलीदे-तुनकजरफिए-मंसूर नहीं

गालिब कहता है, हमें इस कहने में थोड़ा ओछापन मालूम पड़ता है। बूंद अपने
को सागर कहे, यह बात छोटी हो गयी। सागर को ही कहने दो। बूंद अपनी घोषणा करे, यह बात छोटी हो गयी। सागर को ही कहने दो।
लेकिन अगर तुम मंसूर से पूछोगे तो मंसूर हंसेगा, अगर तुम मंसूर से पूछोगे तो वह कहेगा कि गालिब पागल है। अभी भी कुछ फासला रहा होगा कहने में। अन्यथा बूंद और सागर में छोटे-बड़े का फासला क्यों? ओछे की बात ही क्यों उठती है? अगर बूंद सागर है, तो फिर ओछापन क्या? कहो या न कहो। अगर पता चल गया, कहा कि न कहा, क्या भेद पड़ेगा? फिर डरना किससे है? ओछा किसके सामने होने का भय है? जब बूंद को पता ही चल गया, तो क्यों रुके? क्यों न नाचे? क्यों न गुनगुनाए? क्यों न कहे?
अगर मंसूर से पूछो तो मंसूर कहेगा, यह भी छुपा हुआ अहंकार है, जो कह रहा है कि यह बात ओछी हो गयी। अपने ही मुंह से कहें कि हम ब्रह्म हैं, यह बात छोटी हो गयी। लेकिन मंसूर कहेगा, ब्रह्म ही कह रहा है, हम तो हैं ही नहीं। अगर ब्रह्म ही कह रहा है कि हम ब्रह्म हैं, तो बात छोटी कैसे हो गयी? दोनों ही ठीक हैं। दोनों ही गलत हैं। अगर तुम एक के दृष्टिकोण को पकड़
लो, तो दूसरा गलत मालूम होगा। और अगर तुम दोनों की दृष्टियों में गहरे झांको, तो दोनों सही मालूम होंगे। और मैं चाहता हूं कि तुम्हें दोनों सही मालूम पड़ें। क्योंकि मंसूर को ओछा कहने में गालिब ने खुद को भी ओछा कर लिया। यह मंसूर की आलोचना में भूल हो गयी।
मैं चाहता हूं कि तुम कहीं भी इतने कुशल हो जाओ, तुम्हारी दृष्टि ऐसी पैनी हो जाए कि द्वैत तुम्हें धोखा न दे पाए। कोई भक्ति का गुणगान करे, तो तुम ज्ञान का गुणगान सुन सको। कोई ज्ञान का गुणगान करे, तो तुम्हें भक्ति की रसधार बहती मालूम पड़े। तुम्हें रूप में भी अरूप दिखायी पड़े। तुम्हें प्रेम में भी ध्यान का अनुभव हो। तुम्हें मरुस्थल में भी कमल खिलते हुए दिखायी पड़ने लगें। मेरी सारी चेष्टा यही है कि कैसे तुम द्वंद्व के बाहर आओ।
इसलिए विपरीत दिखायी पड़ने वाली बातें तुमसे रोज कहे जाता हूं। कब तक अड़े रहोगे? तुम जम भी नहीं पाते, तुम्हें खिसका देता हूं। तुम सिंहासन लगाकर बैठने की तैयारी ही कर रहे होते हो कि सिंहासन खींच लेता हूं। अभी तुम भक्त होकर बैठने की तैयारी ही कर रहे थे कि बुद्ध आ गए। अभी तुमने चाहा ही था कि नारद की पकड़ लें बागडोर कि बुद्ध ने सब झकझोर दिया।
मेरी सारी चेष्टा यही है कि तुम कहीं जम न पाओ। क्योंकि तुम जमे, वहीं भूल हो जाती है। तुम जमे यानी तुम्हारा अंधकार जमा। तुम जमे यानी तुम्हारा अहंकार जमा। तुम जमे यानी कोई दृष्टिकोण बना, कोई दृष्टि बनी, कोई पक्षपात पैदा हुआ। और मन की सदा यही चेष्टा है कि वह यह मान ले कि मैं ठीक हूं और दूसरा गलत है। मजा मैं ठीक हूं इसके मानने में है। रस अहंकार का यही है कि मैं ठीक हूं। कोई भी बहाना हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? भक्ति ठीक हो कि ज्ञान ठीक हो, एक बात साफ होनी चाहिए कि मैं ठीक हूं। तो तुम भक्ति के पक्ष में खड़े हो जाते हो। तुम सोचते हो, भक्ति के पक्ष में खड़े हुए। मैं जैसा देखता हूं वह यह कि तुमने भक्ति को अपने पक्ष में खड़ा कर लिया।
इसलिए तुम्हें मैं टिकने न दूंगा। जब तक तुम हो, तुम्हें टिकने न दूंगा। जिस दिन पाऊंगा कि तुम नहीं हो, टिकने वाला ही न बचा, तुम तरल हो गए, उस दिन फिर तुम्हें हिलाने की कोई जरूरत नहीं। तुम स्वयं ही तरल हो। अभी तुम ठोस हो बहुत, बहुत चोटों की जरूरत है।
इसलिए निरंतर कभी ज्ञान की बात करता हूं, कभी योग की, कभी भक्ति की। और
जब तुम मुझे भक्ति पर बोलते सुनोगे, तो तुम्हारा मन भक्ति से राजी होने लगेगा, बात जंचेगी। मगर मैं तुम्हें ज्यादा जंचने न दूंगा। इसके पहले कि ज्यादा जंच जाए और तुम कोई पक्षपात बना लो, तुम्हारी जड़ों को उखाड़ ही देना पड़ेगा।
मैं चाहता हूं, तुम जमीन में गड़े नहीं, आकाश में उड़े हुए रहो। मैं चाहता हूं, तुम्हें विपरीत और अतियां दिखायी ही न पड़ें। तुम इतनी सरलता से अतियों में डोलने लगो कि तुम्हारे डोलने में अतियां समाहित हो जाएं।

एक पंख के साथ, कहो कब
विहग भला उड़ सका गगन में?
मैं तुम्हें आकाश की यात्रा पर ले चल रहा हूं। तुम्हारी जिद है एक पंख
से उड़ने की, और मैं कहता हूं--
एक पंख के साथ, कहो कब
विहग भला उड़ सका गगन में?
कौन पक्षी उड़ सका है एक पंख के साथ? पक्षियों को पंखों के साथ पक्षपात नहीं है, अन्यथा कभी का उड़ना भूल गए होते। कभी के जमीन में गिर पड़े होते। धूल-धूसरित हो गए होते। कभी का आकाश से संबंध टूट गया होता। दोनों पंखों को लिए उड़ते हैं। और कभी उनके मन में दुविधा भी नहीं आती कि यह कैसा विरोधाभास? दो पंख! दोनों विपरीत दिशाओं में फैले हुए! लेकिन उन्हीं दोनों विपरीत दिशाओं में फैले पंखों पर पक्षी आकाश में अपने को सम्हाल लेता है, तौल लेता है। तुम्हें भी मैं चाहूंगा कि जहां-जहां विपरीत हो, वहां-वहां विरोध न दिखे, पंख दिखायी पड़ें।
इसे थोड़ा समझना। दो पैर हैं, तो तुम चल पाते हो। दो हाथ हैं, तो तुम कुछ
कर पाते हो। तुम्हें शायद भीतर का पता न हो, तुम्हारे पास दो मस्तिष्क हैं, इसलिए तुम सोच पाते हो। एक मस्तिष्क हो तो तुम सोच न पाओगे। तुम्हारे भीतर तुम्हारा सिर भी दो हिस्सों में बंटा है, दो पंखों की तरह। तुम्हारा बायां और दायां मस्तिष्क अलग-अलग हैं; दोनों बीच में बड़े पतले सेतु से जुड़े हैं। इसलिए तुम सोच पाते हो। और उन्हीं दो मस्तिष्कों के कारण स्त्री और पुरुष में भेद है। क्योंकि स्त्री दाएं मस्तिष्क से सोचती है, पुरुष बाएं मस्तिष्क से सोचता है। इसलिए तालमेल नहीं बैठता। जोर है स्त्री का दाएं मस्तिष्क पर, ज्यादा वजन दाएं पर पड़ रहा है। पुरुष का जोर है बाएं पर, ज्यादा वजन बाएं पर पड़ रहा है। बाएं मस्तिष्क में है तर्क, चिंतन, दर्शन, राजनीति। दाएं मस्तिष्क में है प्रेम, भक्ति, भाव, रस, नृत्य, गीत, गायन, वादन, नर्तन। अलग-अलग हैं।
और परम मुक्त वही है जिसने दोनों का रस पूरा-पूरा पीया। जिसके भीतर दाएं और बाएं का फासला न रहा। जिसने दोनों पंख एक साथ तौल लिए। जिसके दोनों पंख एक साथ तुल गए। जिसने दोनों पंखों पर एक सा बल डाल दिया और दोनों पंखों को अपना लिया। जिसका अपना कोई पंख न रहा--दोनों ही अपने हो गए। इसलिए तुम मेरे साथ अड़चन पाओगे। नारद के साथ सुविधा है। वह दायां मस्तिष्क है उनका जोर--भक्ति, भाव, रस, गीत, भजन, कीर्तन, आंसू, रुदन, रोमांच--वह सब स्त्रैण-मस्तिष्क के लक्षण हैं। इसलिए भक्त में स्त्रैण-गुण प्रगट होने लगते हैं। भक्त स्त्रैण होने लगता है। उसमें से पुरुष-गुण खो जाते हैं। पुरुष का पौरुष-भाव खो जाता है, कोमल हो जाता है। छोटे बच्चों जैसा हो जाता है, या स्त्रियों जैसा हो जाता है। उसके रंग-ढंग में, उठने- बैठने में भी स्त्रैणता आ जाती है। एक कौमल्य का प्रादुर्भाव होता है। सौंदर्य आ जाता है।
फिर चिंतक है, ज्ञानी है, योगी है, उसका पौरुष-भाव और भी गहरा होकर प्रगट होता है। उसके चेहरे पर कोमलता खो जाती है। तर्क की सुस्पष्ट रेखाएं आ जाती हैं। रोमांच की बात ही बेहूदी मालूम पड़ेगी चिंतक को, यह क्या बचकानी बात हुई! सोचने का रोमांच से क्या संबंध है? क्या रोओं के कंपित हो जाने से चिंतन करोगे? यह तो चिंतन में बाधा हो जाएगी। रोमांच करके कौन सोच पाया? आंसू! बात ही बड़ी दूर की मालूम पड़ती है। चिंतन से आंसुओं का क्या लेना-देना है? सोचना है, तो आंखें सूखी और साफ चाहिए। गीली आंखें सोच न पाएंगी। सोचना कमजोर हो जाएगा। भाव प्रविष्ट हो जाएगा। भाव डगमगा देगा। जो सोचना था, तर्कयुक्त होना था, वहां अगर भावयुक्त हो गए तो करुणा, प्रेम, दया और हजार चीजें प्रवेश कर जाएंगी। न्याय पूरा न हो पाएगा।
चिंतक कोमल नहीं हो पाता, कठोर हो जाता है। वैज्ञानिक के चेहरे पर तर्कसरणी लिख जाती है। योगी पानी की तरह तरल नहीं हो जाता, पत्थर की तरह सुदृढ़ हो जाता है। डांवाडोल करना उसे मुश्किल है। ज्ञानी एक गहरी उदासीनता, उपेक्षा से भर जाता है।

कहां रोमांच! रोमांच का अर्थ है, उपेक्षा बिल्कुल नहीं। जरा सी घटना घटती है और रोमांच हो जाता है। एक पक्षी भी गिर पड़े, तो भक्त रोने लगेगा। एक फूल टूट जाए, तो भक्त की आंखें गीली हो जाएंगी। ज्ञानी, सारा संसार भी विचलित हो जाए, तो अडिग, अकंप, तटस्थ, शून्य बैठा रहेगा। जैसे कुछ भी न हुआ। तो अगर तुम महावीर को समझो, तो तुम ज्ञानी को समझ रहे हो; पतंजलि को समझो, तो ज्ञानी को समझ रहे हो। वह मस्तिष्क का आधा हिस्सा है। उसकी बड़ी खूबियां हैं। अगर तुम नारद को समझते हो, चैतन्य को समझते हो, तो मस्तिष्क के दूसरे हिस्से को समझ रहे हो; उसकी भी बड़ी खूबियां हैं।
अगर तुम मेरे साथ खड़े होने को राजी हुए हो, तो मेरा कोई पक्षपात नहीं है। इसलिए मैं तुम्हें बड़ी मुश्किल में डालूंगा, जब तक कि तुम मिट ही न जाओ। तुम हो तो मुश्किल रहेगी। क्योंकि तुम फिर-फिरकर घर बना लोगे और मैं फिर-फिरकर घर उजाड़ दूंगा। तुम मुझसे कई दफा नाराज भी हो जाओगे कि यह मामला क्या है? हम किसी तरह भरोसा ला पाते हैं, हमें बात जंचने के करीब होती है, इधर हम बैठने-बैठने को ही हो रहे थे कि चलो अब जगह मिल गयी, कि फिर उखाड़ दिया। घर बनने दोगे या नहीं! या आयोजन ही चलता रहेगा, घर बनने ही न दिया जाएगा!
नहीं, मैं घर बनने न दूंगा। मैं तुम से यह कह रहा हूं, सभी सरायें हैं। रुको सब जगह, मगर रुक ही मत जाना। ठहरो सब जगह, बस ठहर ही मत जाना। तुम्हारी धारा सतत बहती रहे। दोनों किनारों को छूती, अतियों को जोड़ती, द्वंद्व के अतिक्रमण करती। तुम अद्वैत होते रहो। तुम्हें न भक्ति, न ज्ञान। द्वंद्व की भाषा ही भ्रांत है।
लेकिन, एक पर ही एकबारगी बोला जा सकता है। तब इतनी उलझन हो जाती है। अगर मैं दोनों पर एक साथ बोलूं, तब तो तुम्हारे पल्ले भी कुछ न पड़ेगा। इसलिए कभी भक्ति पर बोलता हूं, कभी ज्ञान पर बोलता हूं, तुम इससे यह मत सोचना कि मैं तुम्हें अतियों में उलझा रहा हूं।
पूछा है, "कल तक आप हमें परमात्मा की ओर जाने को कह रहे थे, आज अपनी ओर आने को कह रहे हैं।"
भाषा का ही भेद है। अपनी ओर जो गया, वह परमात्मा कि ओर पहुंच गया। और तुमने कभी सुना, परमात्मा की ओर जो गया हो, वह अपनी ओर न पहुंचा हो? परमात्मा की ओर अगर गए, तो अपनी ही ओर पहुंचोगे। परमात्मा अपनी ही ओर आने का ढंग है। अपनी ओर अगर गए, तो परमात्मा की ही तरफ पहुंचोगे। अपनी ओर आना भी परमात्मा की तरफ ही जाने का ढंग है। क्योंकि तुम परमात्मा हो। इस आत्यंतिक निचोड़ को गहरे से गहरा अपने भीतर समा जाने दोः तुम परमात्मा हो। अपनी ओर आओ तो परमात्मा पर पहुंचोगे, परमात्मा की ओर जाओ तो अपनी ओर पहुंच जाओगे। तुम्हारे होने में और परमात्मा के होने में रत्तीभर का भी भेद नहीं है।
यह दर्पण का महल कि इसमें
सब प्रतिबिंब तुम्हारे हैं
भ्रम के इस परदे में तुमने
कितने रहस संवारे हैं
तुम्हीं हो। किसी भी दर्पण में देखोगे, अपनी ही छाया पाओगे। जहां भी तुमने जो भी पाया है, देखा है, वह तुम्हारा ही फैलाव है। समझ न होगी उतनी फैली हुई। समझ सिकुड़ी-सिकुड़ी है, अस्तित्व बहुत फैला है। यही तो चेष्टा है सारी कि तुम्हारी समझ भी उतनी बड़ी हो जाए जितना बड़ा अस्तित्व है। तुम्हारी समझ पूरे अस्तित्व पर फैल जाए। फिर तुम कोई फर्क न पाओगे।
अभी तुम बहुत सिकुड़े-सिकुड़े, अस्तित्व बहुत बड़ा है। इसलिए तुम अस्तित्व से अलग मालूम पड़ते हो, अपने सिकुड़ेपन के कारण। फैलो, बिखरो, तरल बनो, बहो। पत्थर की, बरफ की तरह न रहो। पिघल जाओ, पानी बन जाओ, सभी दिशाओं में बह जाओ। तुम अचानक पाओगे तुम पहुंच गए। धीरे-धीरे तुमने उस अनंत को छू लिया। वह था ही तुम्हारा, तुम अपने ही हाथ से छोड़े बैठे थे।
द्वार के आगे
और द्वार
हर बार मिलेगा आलोक

झरेगी रस धार
खोले चलो द्वार के आगे और द्वार। खोले चलो द्वार के आगे और द्वार।
हर बार मिलेगा आलोक
झरेगी रस धार
इसलिए द्वार पर द्वार खोले चलता हूं। कभी भक्ति के द्वार के बहाने, कभी ज्ञान के द्वार के बहाने, कभी योग, कभी तंत्र, ये सभी उसी के द्वार हैं। क्योंकि यह सारा अस्तित्व उसी का मंदिर है। कहीं से पहुंचो उसी में पहुंच जाते हो। ज्ञान, भक्ति, योग, तंत्र को तो छोड़ दो, मैंने उन अतियों को भी एक करने की चेष्टा की है जिनको सोचकर भी तुम्हारा मन घबड़ा जाता है--समाधि और संभोग तक को। उनसे भी, तुम पहुंचोगे तो उसी में, क्योंकि और कहीं जाने का कोई उपाय नहीं है। तुम कहीं जाकर जा नहीं सकते। भरमा लो भला, समझा लो भला कि कहीं और पहुंच गए, पहुंचोगे तुम परमात्मा में ही। नाम तुम कुछ भी रखो, वही है।
धन से भी तुमने उसी की खोज की है, पद से भी उसी की खोज की है। भ्रांत होगी खोज, भूल भरी होगी, पर तुमने चाहा उसे ही है। उसके सिवाय कभी कोई चाहा ही नहीं गया। वही प्रीतम है। तुमने कहीं भी प्यारे को देखा हो--किसी सुंदर देह में, किसी सुंदर फूल में, किसी सुंदर चांद-तारे में--तुमने कहीं भी प्यारे की छवि पायी हो, प्यारा वही है। तुमने प्यारे को कहीं से भी पाती लिखी हो, पता उसी का है। उसके अतिरिक्त किसी का पता हो नहीं सकता। तुम चाहे अपने ही नाम पर चिट्ठी लिखकर डाल लेना, तो भी उसी को मिलेगी।
तुम्हारी कठिनाई भी मैं समझता हूं, क्योंकि तुम इन बातों को अति मान लेते हो। तुम शुरू से ही स्वीकार कर लेते हो कि इनमें कुछ विरोध है। भक्ति और ज्ञान में कुछ विरोध है। तंत्र, योग में कुछ विरोध है। हिंदू, मुसलमान में कुछ विरोध है। ईसाई, यहूदी में कुछ विरोध है। तुम विरोध की मान्यता को लेकर ही चलते हो। तुमने कभी विरोध की मान्यता पर पुनर्विचार नहीं किया। तुमने सोचा ही नहीं कि विरोध हो कैसे सकता है!
अस्तित्व अगर एक है, तो विरोध दिखता हो--देखने की भूल होगी--हो नहीं सकता। अपनी देखने की भूल सुधार लेना। विरोध कहीं है नहीं। शरीर और आत्मा में भी विरोध नहीं है, पदार्थ और परमात्मा में भी विरोध नहीं है, संसार और निर्वाण में भी विरोध नहीं है। और जिस दिन तुम्हें यह झलक दिखायी पड़ने लगेगी, उस दिन तुम जहां हो वहीं परमानंद को उपलब्ध हो जाओगे।
जब तक तुम्हें विरोध दिखेगा, तब तक तुम बेचैनी में रहोगे। क्योंकि दुकान पर बैठोगे तो मंदिर की याद आएगी--क्योंकि मंदिर और दुकान में विरोध है। तुम्हारा मन तड़फेगा कि जीवन गंवा रहा हूं दुकान पर बैठा-बैठा। ये क्षण तो थे पूजा के थाल संवार लेने के; ये क्षण तो थे अर्चना के, प्रार्थना के; यह घड़ी तो ध्यान में लगाने की थी, मैं कहां धन में गंवा रहा हूं! तुम अपनी ही निंदा करोगे। तुम अपने को ही पापी, अपराधी समझोगे। तुम अपने ही अपराध में सिकुड़ोगे।
फिर अगर तुम मंदिर में जाओगे, तो दुकान पीछा करेगी। लगेगा कि इतनी देर में तो कुछ कमायी हो जाती; पता नहीं किस मंदिर में बैठकर मैं क्या कर रहा हूं! यह मूर्ति सच भी है कि सिर्फ मान्यता है? ये जिन्होंने पूजा की, की भी है कि सिर्फ धोखा दिया है? यह धर्म कहीं अफीम का नशा तो नहीं? यह कहीं पुजारियों, पंडितों का पाखंड-जाल तो नहीं? हजार प्रश्न मंदिर में उठेंगे, हजार प्रश्न दुकान में उठेंगे।
लेकिन, न तो तुम दुकान पर बैठकर मंदिर के प्रश्न हल कर पाओगे, न मंदिर में बैठकर दुकान के प्रश्न हल कर पाओगे। क्योंकि प्रश्नों की जड़ तुम्हारे भीतर एक बुनियादी धारणा में है। बुनियादी धारणा है कि तुमने विरोध स्वीकार कर लिया कि मंदिर अलग, दुकान अलग; संसार अलग, निर्वाण अलग। अलग वे नहीं हैं। ऐसे जीओ कि उनका अलगपन गिर जाए। इसी जीने को मैं संन्यास कहता हूं।
इसलिए मेरे संन्यास को पुराना संन्यासी समझ भी नहीं सकता। उसकी तो कल्पना ही संसार के विरोध में संन्यास की थी। वह तो धारणा ही यही थी कि संसार को छोड़ देना संन्यास है। और मेरी धारणा यही है कि द्वैत को छोड़ देना

संन्यास है। द्वंद्व को छोड़ देना संन्यास है। अतियों में अति न देखना संन्यास है। मंदिर में, मस्जिद में, बाजार में, पूजागृह में, पदार्थ में, परमात्मा में एक को ही देख लेना। माया और ब्रह्म में एक को ही देख लेना। मैं तुमसे जिस संन्यास की बात कर रहा हूं वह शंकराचार्य के संन्यास
से भी ऊंचे अद्वैत तक जाता है। क्योंकि शंकराचार्य का संन्यास तो फिर भी माया में, ब्रह्म में विरोध मानता है। कहता है, माया छोड़ो, तो ब्रह्म मिलेगा। जिस माया को छोड़ने से ब्रह्म मिलता हो, वह ब्रह्म कुछ बहुत कीमती नहीं हो सकता। माया से ज्यादा कीमती नहीं हो सकता। कीमत ही माया चुकायी है। उससे ज्यादा कीमती हो भी कैसे सकता है! माया चुकाकर ही पाया है; तो माया के ही मूल्य का होगा।
शंकर को भी अड़चन है, माया को कहां रखें? है तो नहीं, फिर भी है। इसे समझाएं कैसे? इतना साहस नहीं जुटा सके कि कह सकें, यह परमात्मा की अभिव्यक्ति है। क्योंकि तब डर लगा, अगर परमात्मा की अभिव्यक्ति है तो फिर दुकानों से उठाकर लोगों को मंदिरों में कैसे पहुंचाओगे? वे कहेंगे, यह परमात्मा प्रगट हो रहा है दुकान में। फिर लोगों को पत्नियों से छुड़ाकर ब्रह्मचर्य में कैसे लगाओगे? क्योंकि वे कहेंगे कि अगर परमात्मा की अभिव्यक्ति है माया, तो पत्नी भी उसी की, बच्चे भी उसी के, परिवार भी उसी का। अगर परमात्मा भी बिना माया के नहीं, तो हम कैसे बिना माया के हो सकते हैं!
तो शंकर को अड़चन हो गयी है। वे तर्कनिष्ठ आदमी हैं। आधा मस्तिष्क! विचार, तर्क, गणित वाला मस्तिष्क है। बड़ा कुशल तार्किक मस्तिष्क है। इसलिए बड़ी अड़चन है। आधे मस्तिष्क को क्या करोगे? तो तर्क, विचार, गणित से जो ठीक बैठता है, वह ब्रह्म। जो गणित, तर्क से ठीक नहीं बैठता, वह माया। इसलिए तुम चकित होओगे, भक्त जिसको भगवान कहते हैं, शंकर ने उनको भी माया के अंतर्गत रखा है। भक्तों का भगवान तो माया है। रो रहे हो! भजन-कीर्तन कर रहे हो! यह तो तुम्हारे ही राग का फैलाव है। शंकर का ब्रह्म भक्त के भगवान के ऊपर है। पार, जहां भगवान भी छूट गया।
यह शंकर का ब्रह्म पुरुष के मस्तिष्क की ईजाद है।
यह नारद का भगवान स्त्री-मस्तिष्क की ईजाद है।
मैं तुमसे एक बड़ी अनहोनी, अनघट घटना की अपेक्षा कर रहा हूं कि तुम स्त्री-पुरुष से मुक्त हो जाओ। या तुम दोनों एक साथ हो जाओ। दोनों बातें एक ही हैं। तुम इस तरह से देखो कि प्रेम और ध्यान में फासला न मालूम हो। प्रेम-पगा हो तुम्हारा ध्यान। तुम्हारा प्रेम ध्यान से ही आविर्भूत हो। तुम्हारा विचार भी तुम्हारे भाव के आंसुओं से भरा हो। तुम्हारे हृदय और मस्तिष्क की दूरी कम होती जाए, कम होती जाए, और एक ऐसी घड़ी आ जाए कि उन दोनों का एक ही केंद्र हो जाए। उसी क्षण अखंड, उसी क्षण अद्वैत का आविर्भाव होता है।
इसलिए मेरा संन्यास सेतु है। संसार को तोड़ना नहीं, मोक्ष को चुनना नहीं, जहां-जहां विरोध हो वहां-वहां एक को खोजना। जहां-जहां दिखायी पड़े कि कुछ विरोध है, वहां-वहां अपनी भूल मानना और अपनी भूल के ऊपर उठने की चेष्टा करना, ताकि एक के दर्शन हो सकें।
इसलिए तुम्हें मैं बहुत बार एक किनारे से दूसरे किनारे, दूसरे से इस किनारे हटाऊंगा; तुम्हारी नाव को कभी उस तरफ कभी इस तरफ लाऊंगा, ताकि दोनों किनारों को तुम पहचानने लगो और तुम समझ लो कि दोनों किनारे एक ही गंगा के किनारे हैं। यह तभी संभव है जब तुम दोनों किनारों को ठीक-ठीक परिचय कर लो, पहचान लो, संबंध हो जाए और दोनों किनारों से तुम्हारा नाता बन जाए। एक किनारे पर बस गए, तो दूसरा अजनबी मालूम होने लगता है। फिर दूसरा पराया मालूम होने लगता है। दूसरा दुश्मन मालूम होने लगता है।
इसलिए तुम्हें एक किनारे पर जमने नहीं देता। मेरा बोलना तुम्हें एक किनारे पर बसाने के लिए नहीं है; मेरा बोलना ऐसा है जैसे कोई मांझी तुम्हें एक किनारे से दूसरे किनारे ले चलता हो। तुम्हें उतरने भी नहीं देता। तुम्हें दर्शन हो गया दूसरे किनारे का, नाव मोड़ देता हूं। चलो फिर! धीरे-धीरे... कितनी देर तक तुम देर करोगे? कितना विलंब करोगे? कभी तो

तुम्हें दिखायी पड़ेगा--गंगा एक है, किनारे दो हैं। दोनों किनारे जरूरी हैं। गंगा बह न सकेगी एक किनारे के सहारे। दोनों किनारे जरूरी हैं और दोनों किनारे गंगा के नीचे मिले हैं। एक ही भूमि के हिस्से हैं। दोनों ने गंगा को सम्हाला है।
एक पंख के साथ, कहो कब
विहग उड़ सका भला गगन में?

दूसरा प्रश्नः जिंदगी के रोज-रोज के अनुभव सभी को क्षणभर के लिए बुद्ध बना देते हैं। पर फिर भी बुद्धत्व जन्मों-जन्मों तक क्यों रुकता चला जाता है, कृपा कर समझाएं।

क्षण का अनुभव क्षण का ही अनुभव है, तुम्हारा नहीं। क्रोध होता है, क्षणभर को तुम्हें भी उसकी तिक्तता, कड़वापन मालूम होता है, क्षणभर को तुम भी विषाद से, संताप से भर जाते हो। क्षणभर को ऐसा लगता है, बस हो गया, आखिरी। अब कभी नहीं, अब कभी नहीं। प्रतिज्ञा उठती है, व्रत का जन्म होता है।
लेकिन ऐसा तुम बहुत बार कर चुके हो। यह बुद्धि बहुत बार आयी है और छिन गयी है। इस बुद्धि पर भरोसा मत करो। यह तो केवल क्षण का आघात है, समझ नहीं। यह तो क्षण की पीड़ा है, बोध नहीं। यह तो क्रोध के कारण उठा हुआ जो तुम्हारे मन में पीड़ा-पश्चात्ताप का धुआं है, उसके कारण तुम कह रहे हो। क्रोध को जानकर तुमने नहीं कहा है, क्रोध को पहचान कर नहीं कहा है। यह क्रोध अभी भी उतना ही अपरिचित है जितना पहले था। आ गया है, तुमने दुख भोग लिया; कांटा चुभ गया, कांटा चुभ जाने से तुमने कांटे को पहचान लिया ऐसा नहीं है। कांटा चुभ गया, तुम तय करते हो कि अब कभी कांटे से न चुभेंगे। लेकिन तुम्हें याद है, कांटे से तुम पहले भी तय कर चुके थे न चुभने की बात।
कांटे को खोजता तो कोई भी नहीं। लोग फूलों को खोजते हैं और कांटा चुभता है। क्या अब तुम फूल न खोजोगे? तुम कहते हो, अब हम क्रोध न करेंगे, लेकिन क्या अब तुम सम्मान न चाहोगे? तुम कहते हो, अब कसम खाली कि अब क्रोध कभी भी न करेंगे, लेकिन क्या तुमने अहंकार को आज उतारकर रख दिया? क्या इस क्षण ने तुम्हें ऐसा बोध दिया कि तुम्हारा अहंकार जल गया? अगर अहंकार रहेगा, तो क्रोध होगा ही। अहंकार रहेगा तो क्रोध से कैसे बचोगे? अहंकार रहेगा तो उसके घाव में पीड़ा होगी ही। जरा कोई छू देगा, हवा का झोंका आ जाएगा, किसी से घर्षण हो जाएगा, मवाद निकल आएगी। घाव तुम्हारे भीतर है। तो ऐसे तो बहुत क्षण तुम्हारे जीवन में आएंगे। कामवासना के बाद तुम्हें लगेगा कि बस ब्रह्मचर्य ही जीवन है। किसको नहीं लगता! कामी से कामी आदमी को भी ब्रह्मचर्य का सुख अनुभव होता है। कामी से कामी आदमी भी तय करता है कि बस अब बहुत हो गया, अब जागने का समय आ गया, सुबह हो गयी। क्रोधी से क्रोधी आदमी भी निर्णय लेता है कि बस अब जाकर कसम ले लेना है मंदिर में। बहुत बार ले भी लेता है। कसमें आती हैं, चली जाती हैं, कोई रेखा भी नहीं छूटती।
इसे तुम बुद्धत्व मत समझ लेना कि क्षणभर को बुद्ध हो गए। क्योंकि क्षणभर को जो बुद्ध हो गया, वह सदा को बुद्ध हो गया। बुद्धत्व का शाश्वत से कोई संबंध थोड़े ही है। क्षण ही शाश्वत है। एक क्षण को भी जो जाग गया, फिर सो न सकेगा। यह जागरण नहीं है, जागरण का धोखा है; इसी धोखे के कारण तुम अपनी नींद को और सुगम बनाए चले जाते हो। इसे जागरण तो समझना ही मत, यह नींद की दवा भला हो।
इसे समझने की कोशिश करो।
क्रोध हुआ, क्रोध होते से ही तुम्हारे भीतर क्या घटना घटती है, उसे थोड़ा विश्लेषण करो। तुम सदा से मानते थे कि तुम क्रोधी व्यक्ति नहीं हो। तुम बड़े सज्जन, सरलचित्त। कभी क्रोध भी करते हो तो दूसरों के हित में। अगर क्रोध करना भी पड़ता है, तो इसीलिए कि लोगों को सुधारना है। ऐसे तुम क्रोधी नहीं हो। प्रसंगवशात, आवश्यक मानकर, औषधि की तरह, लोगों को तुम क्रोध देते हो। बाकी क्रोधी तुम हो नहीं, क्रोधी तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

परिस्थितिवश! मजबूरी होती है। चाहते नहीं करना, तो भी करते हो। क्योंकि न करोगे तो संसार चलेगा कैसे? बच्चा कुछ गलती कर आया है, तो नाराज होना पड़ता है। नौकर ने कुछ भूल की है, नाराज न होओगे, सब काम-धाम रुक जाएगा। संसार चलाने के लिए क्रोध करते हो, क्रोधी तुम नहीं हो, यह तुम्हारी मान्यता है। यह तुम्हारी अपनी प्रतिमा है।
फिर तुम अपने को क्रोध करते पकड़ते हो रंगे-हाथ, आग-बबूला हो गए थे, भीतर आग जल गयी थी, उसमें तुमने कुछ उलटा-सीधा कर दिया, सामान तोड़ दिया, कि किसी को जरूरत से ज्यादा चोट पहुंचा दी, अनुपात से ज्यादा चोट पहुंचा दी, जितना कि कसूर न था--तुम्हारी प्रतिमा खंडित होती है। तुम्हारा अहंकार तड़फता है। अब तो तुम दुनिया से यह न कह सकोगे कि तुम क्रोधी नहीं हो। अब तो तुमने खुद ही अपने को पकड़ लिया! किस मुंह से कहोगे? किस मुंह से दिखाओगे? अब तुम पछताते हो। यह पछतावा प्रतिमा को फिर से रंग-रोगन करने की तरकीब है। पछताकर तुम कहते हो, देखो! क्रोध हो गया तो भी मैं आदमी बुरा नहीं हूं, पछताता हूं। क्षमा मांगते हो कि क्षमा कर दो। इस तरह तुम यह कह रहे हो कि मेरा सिंहासन से जो गिर गया अहंकार, उसे पुनः प्रतिष्ठित हो जाने दो। क्षमा मांग कर, पछता कर, दुखी होकर, मंदिर में जाकर, पूजा-प्रार्थना करके, उपवास करके, तुम फिर विराजमान हो जाते हो। तुम फिर कहते हो, मैं भला आदमी हो गया; धार्मिक, साधु। अब तुम फिर तैयार हो गए वहीं, जहां तुम पहले थे क्रोध के। अब तुम फिर क्रोध करोगे। अब तुम उसी जगह आ गए जहां से क्रोध पैदा हुआ था। तुम्हारा पश्चात्ताप तुम्हारे क्रोध को बचाने की तरकीब है। तुम्हारा दुख, तुम्हारी क्षमायाचना, वास्तविक नहीं है; तुम्हारे अहंकार का आभूषण है। इसीलिए तो काम नहीं पड़ता, हजार बार करते हो और व्यर्थ हो जाता है।
नहीं, इसको तुम बुद्धत्व का क्षण मत समझ लेना। बुद्धत्व के क्षण का अर्थ है--जो भी घड़ी घटी हो, उसको उसकी सर्वांगीणता में देखना। क्रोध को देखना, क्यों उठा? दूसरे पर जिम्मेवारी मत देना। क्योंकि क्रोध से दूसरे का कोई भी संबंध नहीं है। दूसरा निमित्त हो सकता है, कारण नहीं। खूंटी हो सकता है, कोट नहीं। कोट तो तुम्हारा ही तुम्हें टांगना पड़ता है। दूसरे ने अवसर दिया हो, यह हो सकता है। लेकिन उस अवसर में जो प्रगट होता है, वह तुम्हारा ही अंतस्तल है।
ऐसा ही समझो कि कोई एक सूखे कुएं में बाल्टी डालता है, खड़खड़ाकर लौट आएगी, पानी लेकर नहीं आएगी। सूखा कुआं है, पानी आएगा कहां से? कोई बाल्टी थोड़े ही पानी ला सकती है। किसी ने तुम्हें गाली दी, अगर तुम्हारे भीतर क्रोध का कुआं सूखा है, खड़खड़ाकर गाली वापस लौट आएगी; क्रोध लेकर नहीं आएगी। पछताएगा गाली देने वाला। पीड़ित होगा, सोचेगा, क्या हुआ? चकित होगा, विश्वास न कर सकेगा। तुम उसे भी एक मौका दोगे पुनर्विचार का। वह फिर से ध्यान करे अपनी स्थिति पर, क्या कर गुजरा। तुम जैसे के तैसे रहोगे।
हां, बाल्टी भीतर जाए, जल भरा हो, तो भरकर ले आती है। जल तो तुम्हारा है, बाल्टी किसी और की हो सकती है, यह ख्याल रखना। जो क्रोध करता है, उसे गौर से देखना चाहिए कि जल सदा मेरा है, कारण मेरे भीतर है, दूसरा निमित्त है। एक। दूसरी बात, उसे देखना चाहिए कि अगर आज यह निमित्त न मिलता, तो मैं क्रोध करता या न करता? तुम चकित होओगे, अगर यह आदमी आज न मिलता तो कोई दूसरे पर तुम्हें क्रोध करना ही पड़ता। क्रोध तो तुम्हें करना पड़ता। वह तो निकास था। तुम कोई न कोई बहाना खोज लेते।
मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से प्रयोग किए हैं। एकांत में रख देते हैं व्यक्ति को बीस दिन के लिए, सारी सुविधा जुटा देते हैं। जब भोजन चाहिए, थाली आ जाती है। स्नान चाहिए, स्नान हो जाता है। बिस्तर पर जाना है, बिस्तर हो जाता है। कोई तकलीफ नहीं। लेकिन बीस दिन में... खोपड़ी से तार जुड़े रहते हैं, जो खबरें देते रहते हैं कि कब आदमी क्रोधित हो रहा है, कब नहीं हो रहा है। वह क्रोधित होता है फिर भी। अब तो कोई कारण नहीं है, न कोई बिगाड़ कर रहा है, न किसी का पता है उसे, लेकिन फिर भी क्रोध की घड़ी आती है। उत्तप्त हो जाता है, भीतर आग जलने लगती है, बेतहाशा क्रोध होने की आकांक्षा पैदा होती है।

ऐसा समझो, कामवासना तुममें है, उसी तरह क्रोध की वासना भी तुममें है। लोभ की वासना भी तुममें है। जो व्यक्ति गौर से चिंतन करेगा, ध्यान करेगा, वह पाएगा कि सब भीतर है, बाहर तो बहाने हैं।
इसलिए बहानों पर जिम्मेवारी मत डालो। अपने ही भीतर चलो, विश्लेषण करो, गहरे उतरो--और जब क्रोध हो तभी उतरो। क्रोध जा चुका, फिर उतरने का कोई सार नहीं। आग बुझ गयी, फिर राख को टटोलने से कुछ भी न होगा।
अक्सर हम राख को टटोलते हैं। क्रोध तो जा चुका, फिर बैठे पछता रहे हैं। राख को रखे बैठे हैं। जब क्रोध जलता हो, भभकता हो, तब द्वार-दरवाजे बंद कर लो, यह अवसर मत छोड़ो। यह ध्यान का बड़ा बहुमूल्य क्षण है। इस क्रोध को ठीक से देखो। इसे पूरा उभारो। तकिए रख लो चारों तरफ, मारो, पीटो, चीखो, चिल्लाओ; सब तरह से अपने को उद्विग्न कर लो। जितनी विक्षिप्तता तुममें भरी हो, बाहर ले आओ, ताकि पूरा-पूरा दर्शन हो सके। आईना सामने रख लो, उसमें अपने चेहरे को भी बीच-बीच में देखते जाओ, क्या हो रहा है? आंखें कैसी लाल हो गयी हैं? चेहरा कैसा वीभत्स हो गया है? तुम कैसे क्रोधित हो गए हो? राक्षसों की तुमने कल्पना सुनी थी, कहानी पढ़ी थी, वह सामने खड़ा है। उसे पूरा का पूरा देख लो।
और जरा भी भीतर दबाओ मत। क्योंकि दबाना ही रोग है। दबाने के कारण ही
हम परिचित नहीं हो पाते। प्रगट करो। किसी पर प्रगट कर भी नहीं रहे हो, तकियों को मार रहे हो। तकिया तो बुद्धपुरुष है, उनको कोई... वे तुम पर नाराज भी न होंगे, बदला भी न लेंगे। तुम उनसे क्षमा भी न मांगोगे, तो भी कोई चिंता न करेंगे। लेकिन घड़ीभर को तुम अपने को जितना जला सको जला लो। अपने जलते हुए रूप को देखो। अपने को बिल्कुल चिता पर चढ़ा दो क्रोध की। रत्तीभर दबाओ मत। क्योंकि जितना दबा रह जाता है, उतना ही अपरिचित रह जाता है। और एक बार भी अगर तुमने क्रोध की पूरी भभक देख ली, तो पश्चात्ताप न करना पड़ेगा और न व्रत लेना पड़ेगा कि अब क्रोध न करूंगा। तुम क्रोध कर ही न सकोगे।
तो क्षण बुद्धत्व का हो गया। तो यह क्षण में जो संपदा तुम्हारे पास आएगी, सदा तुम्हारे पास रहेगी। इसे पकड़ना न पड़ेगा। ख्याल रखो--रेचन, दमन नहीं। प्रगट करो। किसी पर प्रगट करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि उससे तो जाल बढ़ता है,शृंखला बनती है। पत्नी पर प्रगट किया, पति पर प्रगट किया, बेटे पर प्रगट किया, उससे कोई हल नहीं होता। क्योंकि दूसरा जवाब देगा। आज नहीं देगा, कल देगा, परसों देगा। बच्चा अभी छोटा है, तुम जब बूढ़े हो जाओगे तब देगा। लेकिनशृंखला जारी रहेगी। पत्नी आज कुछ न बोलेगी, कल ठीक अवसर की तलाश में रहेगी, तब देगी। यह तो अंत न होगा।
इसे तुम अकेले में ही करो, शून्य में करो, ताकि इसका अंत हो जाए। और तुम अपने क्रोध को इतनी प्रगाढ़ता से देख लो कि उसका कोई कोना-कांतर भी तुम्हारे भीतर दबा न रह जाए।
तुम चकित हो जाओगे, उसे देखते-देखते ही क्रोध विलीन हो जाएगा। और एक गहन शांति भीतर उतर आएगी, जैसे तूफान के बाद सब शांत हो जाता है। उस शांति के क्षण को, उसके स्वाद को बुद्धत्व कहो। वह धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा।
ऐसा तुम प्रत्येक घटना के साथ करो। क्रोध के साथ, लोभ के साथ, काम के साथ। जीवन में जिन-जिनको तुमने अपना बंधन पाया है, जहां-जहां कारागृह अनुभव किया है, वहां-वहां प्रयोग करो। बहुत ज्यादा कारागृह नहीं हैं, बड़े थोड़े हैं, उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। फिर प्रत्येक व्यक्ति का एक बंधन सबसे ज्यादा मजबूत होता है। किसी का क्रोध, किसी का काम, किसी का लोभ। तुम अपने मूल बंधन को ठीक से पहचान लो, उसी पर तुम ठीक से प्रयोग करते जाओ। देर न लगेगी। जल्दी ही, बिना पछताए, तुम पार हो जाओगे। लेकिन पार होने का रास्ता इन रोगों का पूर्ण अनुभव है। पूर्ण अनुभव में तुम जागते हो। संबोधि घटित होती है। सम्यक-ज्ञान होता है।
तो यह मत कहो कि तुम्हारे जो छोटे-छोटे रोज अनुभव होते हैं और उनमें तुम जो सोए-सोए से कुछ निर्णय ले लेते हो कि ठीक है, अब लोभ न करेंगे, क्या सार है! इस तरह की सस्ती बातों से कुछ होगा न।
लबालब जाम फिर साकी ने वापस ले लिया मुझसे
न जाने क्या कहा मैंने न जाने क्या हुआ मुझसे

बहुत बार तुम्हारे सामने प्याली आ जाती है जीवन-रस की, लेकिन लौट जाती है।
लबालब जाम फिर साकी ने वापस ले लिया मुझसे
न जाने क्या कहा मैंने न जाने क्या हुआ मुझसे
होश में रहोगे तो ही यह प्याली पी सकोगे। यह ज्ञान की, बुद्धत्व की, अमृत की प्याली बहुत बार आती है तुम्हारे सामने, यह सच है। लेकिन हर बार हट जाती है। पास आ भी नहीं पाती, बस झलक मिलती है और हट जाती है। अब झलकों से ही राजी मत रहो। अब झलक को यथार्थ बनाओ। धीरे-धीरे प्रयोग करो।
बुद्धत्व का अर्थ हैः परिस्थिति से नहीं पैदा होता, मनःस्थिति से पैदा होता है। परिस्थिति तो बहुत बार आती है, लेकिन मनःस्थिति नहीं है। चूक-चूक जाते हो। अवसर तो बहुत मिलता है, खो-खो देते हो। मौसम तो बहुत बार आता है, लेकिन तुम बीज बोते ही नहीं; फिर फसल काटने का वक्त आता है तब तुम रोते बैठे रहते हो। अब जब अवसर आए, चूकना मत। बुरे से बुरा अवसर भी परमात्मा को पाने का ही अवसर है। अशुभ से अशुभ घड़ी भी उसी की तरफ जाने की सीढ़ी है। अंधकार से अंधकार क्षण भी प्रकाश की ही खोज पर एक पड़ाव है।
और जरा गौर से देखो, तुमने अब तक कमाया क्या है? गंवाया हो भला, कमाया
तो कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। कुछ थोथे शब्द इकट्ठे कर लिए होंगे, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है। जिनको तुम कचराघर में भी फेंकने जाओगे तो कचराघर भी प्रसन्न न होगा। क्या है तुम्हारे पास संपदा के नाम पर? क्योंकि संपदा तो सिर्फ एक है, संबोधि। संपदा तो एक है, जागरण। कितनी गंदगी तुमने इकट्ठी कर ली है! और तुम किए ही चले जाते हो। शायद तुम आदी हो गए हो। आदत का ख्याल करो।
मैंने सुना है, एक आदमी एक तोपखाने पर रात पहरा देता था। और रात हर घंटे तोप, एक तोप छूटती थी। तीस साल तक उसने पहरा दिया। वह मजे से रातभर सोया रहता था। हर घंटे तोप छूटती, और वह सोया रहता। लेकिन तीस साल बीतने के बाद इकतीसवें साल एक दिन तोप खराब हो गयी और दो बजे रात तोप न छूटी। वह एकदम चौंककर उठ बैठा। उसने कहा, क्या मामला है?
तीस साल तक तोप न जगा सकी उसे, एक दिन तोप न चली तो नींद टूट गयी। आदत! तुम्हारी दुर्गंध भी तुम्हें पता नहीं चलती। दूसरों को पता चले तो शिष्टाचारवश वे तुमसे कह नहीं सकते। कहें तो तुम नाराज होते हो, झगड़ा- झांसा खड़ा करते हो। और वे भी कहें कैसे, क्योंकि उनकी भी दुर्गंध है। उन्हें भी छिपानी है। तो सब एक-दूसरे की छिपाए रहते हैं।
शिष्टाचार का अर्थ है, एक-दूसरे की दुर्गंध को छिपाए चलो। न हम तुम्हारी कहें, न तुम हमारी कहो। एक पारस्परिक समझौता है। हम तुम्हारे सौंदर्य का गुणगान करें, तुम हमारे सौंदर्य का गुणगान करो। हम तुम्हारी महिमा के गीत गाएं, तुम हमारी महिमा के गीत गाओ। फिर सब भला ही भला है। जरा ख्याल करना, इस धोखे में मत पड़े रहना! अपने पर तुम्हें ध्यान करना होगा। अपनी दुर्गंधें खोजनी होंगी। कहां-कहां तुमने घाव और मवाद पैदा कर लिए हैं, उनका ठीक-ठीक स्मरण करना होगा। तो ही इलाज हो सकता है, तो ही औषधि खोजी जा सकती है, तो ही चिकित्सा का कोई उपाय है।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो
ये कंवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं
तुम कुम्हलाए जा रहे हो।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो
ये कंवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं
कहीं ये बिल्कुल ही न कुम्हला जाएं। कहीं ऐसा न हो कि इनके पुनरुज्जीवन की संभावना ही शून्य हो जाए।
क्रोध भी एक जल है, अक्रोध भी। कामवासना भी जल है, प्रेम भी। बेहोशी भी
जल है, होश भी। लेकिन बेहोशी सड़ा हुआ जल है। होश शुद्ध, स्फटिक मणि जैसा स्वच्छ जल है। अभी-अभी हिमालय से उतरा हो!
बदलो अपने आसपास के जल को। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं। वे यह कह रहे हैं कि कमल खिलाना चाहते हैं। लेकिन जल बदलने की तैयारी नहीं। कमल खिलाना चाहते हो, तो तालाब की थोड़ी स्वच्छता

करनी होगी। कमल खिलाना चाहते हो, तो यह सड़ा हुआ जल थोड़ा हटाना पड़ेगा। कमल अगर खिलाने की आकांक्षा जगी है, तो कमल के योग्य अवसर भी जुटाना पड़ेगा। वे चाहते हैं, कोई ऊपर से कमल डाल दे। वे कोई नकली कमल की तलाश में हैं। ऐसा धोखा नहीं हो सकता। कम से कम जीवन... अभी भी कागजी कमलों से धोखा नहीं दिया जा सकता जीवन को। अस्तित्व अभी भी असली को ही मानता है।
तो तुम, अगर दिखायी पड़ता है तुम्हें कि तुम्हारे जीवन में कमल नहीं खिल रहा है, जल को बदलो। और जल को बदलने का ढंग है, जल को गौर से देखो, छिपाओ मत; पहचानो कहां गंदगी है, उसका निदान करो। निदान आधी चिकित्सा है। ठीक से जान लेना आधा मुक्त हो जाना है।

तीसरा प्रश्नः कई दिनों से मुझे यही लग रहा है कि मेरा जीवन एक दुर्घटना है। कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पाती हूं। इस कारण बहुत पीड़ा भी भोग रही हूं। कृपया मुझे राह दिखाएं।

प्रश्न के उत्तर के पहले--मैं जब भी तुम्हें कुछ कहता हूं, मेरा प्रयोजन कुछ और होता है, तुम कुछ और अर्थ ले लेते हो।
मैं कहता हूं फूल चाहिए, ताकि तुम फूलों की खोज पर निकलो और तुम्हारे जीवन में सुवास की वर्षा हो। लेकिन तुम फूलों की खोज पर तो नहीं निकलते, कांटों की पीड़ा से भर जाते हो। मैं तुमसे कहता हूं कमल खिलना चाहिए, इसलिए जल को, सरोवर को साफ करो, स्वच्छ करो; तुम कमल की तो फिकर छोड़ देते हो, तुम इस सड़े जल के किनारे बैठकर छाती पीटकर रोने लगते हो कि सड़ा जल है, अब क्या करें? मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि मेरा प्रयोजन कुछ और होता है, तुम कुछ और अर्थ ले लेते हो।
जैसे मैंने कल कहा कि जीवन एक दुर्घटना नहीं होनी चाहिए। जीवन में एक दिशा हो। जीवन में एक तारतम्य हो। जीवन में एकशृंखला हो। तुम ऐसे ही हवा के थपेड़ों पर यहां-वहां न चलते रहो--कुछ हो गया, हो गया; नहीं हुआ, नहीं हुआ--भीड़ के धक्के तुम्हें कहीं न ले जाएं। तुमसे कोई पूछे तो तुम कह सको कि तुम जा रहे हो। कभी तुमने भीड़ में देखा, बड़ी भीड़ जा रही हो तो तुम चलने लगते हो। फिर ऐसी हालत हो जाती है कि रुकना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि भीड़ इतनी तेजी से चल रही है, तुमको भी चलना पड़ता है, नहीं तो गिर पड़ोगे। कुंभ के मेले में अनेक लोग मरे। वे भीड़ के साथ घसिट गए। रुक न सके।
कभी बड़ी भीड़ में चलकर देखो तो तुमको पता चलेगा कि फिर तुम नहीं चलते, भीड़ चलती है। तुम भीड़ के द्वारा चलाए जाते हो। भीड़ अगर पूरब जा रही है, तो तुम पश्चिम नहीं जा सकते, क्योंकि झंझट खड़ी होगी। भीड़ से टकरा जाओगे, मौत बन जाएगी। मरोगे, दब जाओगे। भीड़ के साथ ही जाना पड़ता है।
दुर्घटना से मेरा अर्थ है कि तुम्हारा जीवन ऐसा न हो कि तुमसे कोई पूछे कहां जा रहे हो, और तुम उत्तर न दे पाओ। तुम्हारा जीवन ऐसा न हो कि कोई तुमसे पूछे तुम कौन हो, और तुम निरुत्तर खड़े रह जाओ। कोई तुमसे पूछे कि क्या तुम्हारी नियति है, क्या पाना चाहा था, कौन से फूल खिलाने चाहे थे, कौन से तारे जलाना चाहे थे, और तुम कुछ भी जवाब न दे सको, तुम्हारी आंखें सूनी पथरीली रह जाएं। दुर्घटना का अर्थ यह है कि तुम निरुत्तर हो।
उत्तर खोजो। उत्तर खोजने का अर्थ है, थोड़ा अपने भीतर चलो। थोड़ा भीड़ की तरफ आंख कम करो, थोड़े अपने भीतर जाओ। क्योंकि भीतर कोई है तुम्हारे, जहां सब उत्तर है। जहां तुम्हारी नियति छिपी है। जहां बीज है, जो कमल बनेगा।
जहां संभावना है, जो सत्य बनेगी। भीतर चलो।
दुर्घटना का अर्थ है, तुम बाहर ही बाहर देखकर अब तक जीए हो। दूसरों को देखकर जीए हो, इसलिए भटक गए हो। अब अपने को देखकर जीओ।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हें कुछ करने में समर्थ होना चाहिए। प्रश्न पूछा है, "कई दिनों से मुझे यही लग रहा है कि मेरा जीवन एक दुर्घटना है। कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पाती हूं।"
करने का कोई सवाल नहीं है। क्या करना है? क्या करके तुम्हें लगेगा कि समर्थ हो गयी? धन कमाओ, पद कमाओ, प्रतिष्ठा पा लो, राष्ट्रपति हो जाओ, प्रधानमंत्री हो जाओ--क्या करके लगेगा कि समर्थ हो गयी? करने का कोई सवाल

ही नहीं है, सब करना दुर्घटना में ले जाएगा। तुम कुछ भी करो, राष्ट्रपति हो जाओ कि घर में भोजन बनाओ, दोनों हालत में दुर्घटना रहेगी।
राष्ट्रपतियों को तुम यह मत समझना कि भीड़ के बाहर हो गए हैं। भीड़ के आगे हो गए होंगे। वहां और बड़ी हुड़दंग है, क्योंकि पूरी भीड़ धक्का देती है। बीच में तो आदमी फिर भी खिसक जाए कहीं। पीछे हो--तुम अगर रसोइए का काम कर रहे हो--तो कोई ज्यादा चिंता नहीं है, पीछे के पीछे निकल भी गए तो कोई भीड़ तुम्हारे लिए शोरगुल न मचाएगी। राष्ट्रपतियों को तो निकलने भी नहीं देती। पहले तो पहुंचने नहीं देती, फिर निकलने नहीं देती। गरीब तो निकल भी जाए भीड़ के बाहर, कौन फिक्र करता है? लोग खुश ही होते हैं कि चलो, एक झंझट मिटी। गरीब तो राह के किनारे खड़ा भी हो जाए, तो कौन उसे निमंत्रण देता है? लेकिन पहले लोग आगे पहुंचने की जद्दोजहद करते हैं, तब लोग पहुंचने नहीं देते, क्योंकि उनको भी आगे जाना है। सभी तो आगे नहीं हो सकते। पंक्ति में आगे सभी को खड़े होना है, तो बड़ा संघर्ष है। फिर किसी तरह आगे पहुंच गए, तो फिर पीछे लौटना बहुत मुश्किल हो जाता है। खुद भी नहीं लौटना चाहते, लोग भी न लौटने देंगे।
करने का सवाल नहीं है। करना मात्र दुर्घटना में ले जाएगा। होना। होने
पर जोर दो। इस आयाम को ठीक से समझ लो।
करने का मतलब ही यह होता है, जो दूसरों को दिखायी पड़ सके। तुमने एक चित्र बनाया, दूसरे देख सकते हैं। तुमने एक मूर्ति बनायी, दूसरे देख सकते हैं। तुमने एक भवन बनाया, दूसरे देख सकते हैं। तुमने धन कमाया, पद कमाया, दूसरे देख सकते हैं। लेकिन तुमने शांति पायी, कौन देखेगा? अशांत आंखें पहचान ही न सकेंगी। तुम्हारे भीतर एक भाव का फूल खिला, कौन देखेगा? भाव का फूल देखने के लिए भक्त चाहिए। तुम्हारे भीतर ज्ञान की सुरभि उठी, कौन देखेगा? ज्ञानी पहचान पाएंगे। तुम्हारे भीतर चैन की बांसुरी बजी, कौन सुनेगा? सुनने के लिए बड़े निष्णात कान चाहिए।
होना। होने की फिक्र करो। फिर तुम बाहर रसोइया हो कि राष्ट्रपति हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। भीतर की बांसुरी बजे, तो दुर्घटना से मुक्त होओगे। फिर बाहर कुछ भी करो--कुछ तो करना ही होगा। बाहर के करने को इतना मूल्य ही मत दो। उसका कोई मूल्य भी नहीं है। अ करो, कि ब करो, कि स करो, अंततः बराबर है, मौत सब छीन लेगी।
हां, भीतर कुछ है जो मौत न छीन पाएगी। कुछ भीतर का बनाओ। बाहर का दूसरे
भी मिटा सकते हैं। बाहर का दूसरे नष्ट कर सकते हैं। भीतर की ही मालकियत पूरी है।
इसलिए तो हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। वही एकमात्र मालिक है। क्योंकि वह कुछ भीतर कमा रहा है, जिसे कोई छीन न सकेगा, जिसे कोई मिटा न सकेगा। वह एक ऐसा चित्र बना रहा है, सदियां बीत जाएंगी जिसके रंग फीके न होंगे। क्योंकि रंगों का उसने उपयोग ही नहीं किया, जो फीके हो जाएं। उसने एक ऐसा गीत गाया है, जो कभी बासा न होगा। क्योंकि उसने उन शब्दों का उपयोग ही नहीं किया जो बासे पड़ जाएं। उसने शून्य से गाया है। उसने अरूप में रंग भरा है। उसने निराकार को पकड़ा है।
भीतर चलो। दुर्घटना से बचना है तो भीतर चलो। दुर्घटना से बचने का यह अर्थ नहीं है कि तुम बाहर बदलाहट करो, कि चलो अब दुकान करते थे तेल की, अब तेल की न करेंगे कपड़े की करेंगे, कि सोने-चांदी की करेंगे। दुकानें सब दुकानें हैं। कपड़े की हों, तेल की हों, सोने-चांदी की हों--सब कचरा है। बाहर जो है, उसका कोई आत्यंतिक मूल्य नहीं है। तुम भीतर उतरो। तुम भीतर का मार्ग पकड़ो। बाहर के उलझाव से थोड़ा समय निकालकर भीतर डूबो। और मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारे पास जितनी साधारण जिंदगी हो उतनी ही सुविधा है भीतर जाने की। तुम उसका लाभ उठा लेना। ज्यादा धन हो, भीतर जाना मुश्किल! ज्यादा पद हो, भीतर जाना मुश्किल! हजार उपद्रव हैं, जाल-जंजाल हैं। बाहर कुछ ज्यादा उपद्रव न हो, थोड़ा-बहुत काम-धाम हो, भीतर जाने की सुविधा, अवकाश बहुत। गरीब अगर थोड़ा सा समझदार हो, तो अमीर से ज्यादा अमीर हो सकता है। लेकिन हालतें उलटी हैं। यहां अमीर भी नासमझ हैं। वे गरीब से भी ज्यादा गरीब हो जाते हैं। तुम अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य बना सकते हो।

कीमिया तुम्हारे हाथ में है, उपयोग करो। लेकिन तुम अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य नहीं बनाते। तुम अपने सौभाग्य को भी दुर्भाग्य की तरह देखते हो। अब स्त्रियां हैं सारी दुनिया में--यह प्रश्न स्त्री का है--सारी दुनिया में स्त्रियां कोशिश कर रही हैं कि पुरुषों के साथ दौड़ में कैसे उतर जाएं। क्योंकि पुरुष अधिकारी हैं, पदों पर हैं, धन कमा रहे हैं, प्रतिष्ठा है, यह है, वह है, स्त्रियों को भी दौड़ पड़ी है। उस दौड़ में वे और भी दुर्घटनाग्रस्त हो जाएंगी। उनको एक मौका था, घर की एक छाया थी, चुप्पी के साधन थे--बच्चे स्कूल जा चुके, पति दुकान जा चुका, संसार समाप्त हुआ-- थोड़ी देर अपने में डूबने का उपाय था। उसको खोने को स्त्रियां बड़ी आतुर हैं। उनको भी दफ्तर जाना है, उनको भी कशमकश करनी है, बाजार में खड़े होकर धक्का-मुक्की देने हैं। जब तक वे भी पुरुष की तरह ही पसीने से तर न हो जाएंगी और पुरुष की तरह ही बेचैन और परेशान और विक्षिप्त न होने लगेंगी, तब तक उन्हें चैन नहीं। क्योंकि स्त्री को भी समान होना है!
हम सौभाग्य को भी दुर्भाग्य में बदल लेते हैं। चाहिए तो यह कि हम दुर्भाग्य को भी सौभाग्य में बदल लें।
चीन में एक बहुत बड़ा फकीर हुआ। वह अपने गुरु के पास गया तो गुरु ने उससे पूछा कि तू सच में संन्यासी हो जाना चाहता है कि संन्यासी दिखना चाहता है? उसने कहा कि जब संन्यासी ही होने आया तो दिखने का क्या करूंगा? होना चाहता हूं। तो गुरु ने कहा, फिर ऐसा कर, यह अपनी आखिरी मुलाकात हुई। पांच सौ संन्यासी हैं इस आश्रम में, तू उनका चावल कूटने का काम कर। अब दुबारा यहां मत आना। जरूरत जब होगी, मैं आ जाऊंगा।
कहते हैं, बारह साल बीत गए। वह संन्यासी चौके के पीछे, अंधेरे गृह में चावल कूटता रहा। पांच सौ संन्यासी थे। सुबह से उठता, चावल कूटता रहता। सुबह से उठता, चावल कूटता रहता। रात थक जाता, सो जाता। बारह साल बीत गए। वह कभी गुरु के पास दुबारा नहीं गया। क्योंकि जब गुरु ने कह दिया, तो बात खतम हो गयी। जब जरूरत होगी वे आ जाएंगे, भरोसा कर लिया।
कुछ दिनों तक तो पुराने ख्याल चलते रहे, लेकिन अब चावल ही कूटना हो दिन-रात तो पुराने ख्यालों को चलाने से फायदा भी क्या? धीरे-धीरे पुराने ख्याल विदा हो गए। उनकी पुनरुक्ति में कोई अर्थ न रहा। खाली हो गए, जीर्ण-शीर्ण हो गए। बारह साल बीतते-बीतते तो उसके सारे विदा ही हो गए विचार। चावल ही कूटता रहता। शांत रात सो जाता, सुबह उठ आता, चावल कूटता रहता। न कोई अड़चन, न कोई उलझन। सीधा-सादा काम, विश्राम।
बारह साल बीतने पर गुरु ने घोषणा की कि मेरे जाने का वक्त आ गया और जो व्यक्ति भी उत्तराधिकारी होना चाहता हो मेरा, रात मेरे दरवाजे पर चार पंक्तियां लिख जाए जिनसे उसके सत्य का अनुभव हो। लोग बहुत डरे, क्योंकि गुरु को धोखा देना आसान न था। शास्त्र तो बहुतों ने पढ़े थे। फिर जो सब से बड़ा पंडित था, वही रात लिख गया आकर। उसने लिखा कि मन एक दर्पण की तरह है, जिस पर धूल जम जाती है। धूल को साफ कर दो, धर्म उपलब्ध हो जाता है। धूल को साफ कर दो, सत्य अनुभव में आ जाता है। सुबह गुरु उठा, उसने कहा, यह किस नासमझ ने मेरी दीवाल खराब की? उसे पकड़ो।
वह पंडित तो रात ही भाग गया था, क्योंकि वह भी खुद डरा था कि धोखा दें!
यह बात तो बढ़िया कही थी उसने, पर शास्त्र से निकाली थी। यह कुछ अपनी न थी। यह कोई अपना अनुभव न था। अस्तित्वगत न था। प्राणों में इसकी कोई गूंज न थी। वह रात ही भाग गया था कि कहीं अगर सुबह गुरु ने कहा, ठीक! तो मित्रों को कह गया था, खबर कर देना; अगर गुरु कहे कि पकड़ो, तो मेरी खबर मत देना।
सारा आश्रम चिंतित हुआ। इतने सुंदर वचन थे। वचनों में क्या कमी है? मन दर्पण की तरह है, शब्दों की, विचारों की, अनुभवों की धूल जम जाती है। बस इतनी ही तो बात है। साफ कर दो दर्पण, सत्य का प्रतिबिंब फिर बन जाता है। लोगों ने कहा, यह तो बात बिल्कुल ठीक है, गुरु जरा जरूरत से ज्यादा कठोर है। पर अब देखें, इससे ऊंची बात कहां से गुरु ले आएंगे। ऐसी बात चलती थी, चार संन्यासी बात करते उस चावल कूटने वाले आदमी के पास से निकले। वह भी सुनने लगा उनकी बात। सारा आश्रम गर्म! इसी एक बात से गर्म था।

सुनी उनकी बात, वह हंसने लगा। उनमें से एक ने कहा, तुम हंसते हो! बात क्या है? उसने कहा, गुरु ठीक ही कहते हैं। यह किस नासमझ ने लिखा? वे चारों चौंके। उन्होंने कहा, तू बारह साल से चावल ही कूटता रहा, तू भी ज्ञानी हो गया! हम शास्त्रों से सिर ठोंक-ठोंककर मर गए। तो तू लिख सकता है इससे बेहतर कोई वचन? उसने कहा, लिखना तो मैं भूल गया, बोल सकता हूं, कोई लिख दे जाकर। लेकिन एक बात ख्याल रहे, उत्तराधिकारी होने की मेरी कोई आकांक्षा नहीं। यह शर्त बता देना कि वचन तो मैं बोल देता हूं, कोई लिख भी दे जाकर--मैं तो लिखूंगा नहीं, क्योंकि मैं भूल गया, बारह साल हो गए कुछ लिखा नहीं-- उत्तराधिकारी मुझे होना नहीं है। अगर इस लिखने की वजह से उत्तराधिकारी होना पड़े, तो मैंने कान पकड़े, मुझे लिखवाना भी नहीं। पर उन्होंने कहा, बोल! हम लिख देते हैं जाकर। उसने लिखवाया कि लिख दो जाकर--कैसा दर्पण? कैसी धूल? न कोई दर्पण है, न कोई धूल है, जो इसे जान लेता है, धर्म को उपलब्ध हो जाता है।
आधी रात गुरु उसके पास आया और उसने कहा कि अब तू यहां से भाग जा। अन्यथा ये पांच सौ तुझे मार डालेंगे। यह मेरा चोगा ले, तू मेरा उत्तराधिकारी बनना चाहे या न बनना चाहे, इससे कोई सवाल नहीं, तू मेरा उत्तराधिकारी है। मगर अब तू यहां से भाग जा। अन्यथा ये बर्दाश्त न करेंगे कि चावल कूटने वाला और सत्य को उपलब्ध हो गया, और ये सिर कूट-कूटकर मर गए। जीवन में कुछ होने की चेष्टा तुम्हें और भी दुर्घटना में ले जाएगी। तुम चावल ही कूटते रहना, कोई हर्जा नहीं है। कोई भी सरल सी क्रिया, काफी है। असली सवाल भीतर जाने का है। अपने जीवन को ऐसा जमा लो कि बाहर ज्यादा उलझाव न रहे। थोड़ा-बहुत काम है जरूरी है, कर दिया, फिर भीतर सरक गए। भीतर सरकना तुम्हारे लिए ज्यादा से ज्यादा रस भरा हो जाए। बस, जल्दी ही तुम पाओगे दुर्घटना समाप्त हो गयी, अपने को पहचानना शुरू हो गया। अपने से मुलाकात होने लगी। अपने आमने-सामने पड़ने लगे। अपनी झलक मिलने लगी। कमल खिलने लगेंगे। बीज अंकुरित होगा। तुम्हारी नियति, तुम्हारा भाग्य, करीब आ जाएगा।
लेकिन मेरी बात को गलत मत समझ लेना। मैंने यह नहीं कहा है कि तुम कुछ करने में समर्थ हो जाओ; मैंने कहा है, तुम कुछ होने में समर्थ हो जाओ। होना। करना नहीं। करना तो बाहर की भाषा है, होना भीतर की भाषा है। और अगर ऐसी तुम्हारी समझ में बात बैठ जाए तो हर घड़ी का उपयोग है।
यह मेरा सौभाग्य कि अब तक
मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूं
मेरा भूत-भविष्य न कोई
वर्तमान में चिर नवीन हूं
कोई निश्चित दिशा नहीं है
मेरी चंचल गति का बंधन
कहीं पहुंचने की न त्वरा में
आकुल-व्याकुल है मेरा मन
खड़ा विश्व के चौराहे पर
अपने में ही सहज लीन हूं
मुक्त-दृष्टि निरुपाधि निरंजन
मैं विमुग्ध भी उदासीन हूं
तुम फिक्र छोड़ो बाहर की। बाहर की दिशाएं, गंतव्य, लक्ष्य, उनकी मैंने बात ही नहीं की है। मैं चाहता हूं कि तुम--
खड़ा विश्व के चौराहे पर
अपने में ही सहज लीन हूं
तब अगर बाहर के जीवन में बहुत आपाधापी न हो, तो सौभाग्य!
यह मेरा सौभाग्य कि अब तक
मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूं
क्योंकि जिनके जीवन में बाहर लक्ष्य हैं, वे भीतर जाने में बड़ी मुश्किल पाते हैं। बाहर के लक्ष्य पूरे नहीं होते। जीवन छोटा होता है, बाहर के लक्ष्य पूरे नहीं होते। भीतर जाएं कैसे! महल बनाना था, नहीं बन

पाया अभी। भीतर जाएं कैसे! तिजोड़ियां भरनी थीं, अभी खाली हैं, भीतर जाएं कैसे! पहले सब बाहर तो पूरा कर लें। बाहर का कभी कोई पूरा कर पाया है? कोई सिकंदर भी कभी बाहर का पूरा नहीं कर पाता। साम्राज्य बाहर का अधूरा ही रहता है। बाहर के साम्राज्य का स्वभाव अधूरा होना है। वह पूरा होता ही नहीं, पूरा होना उसका स्वभाव नहीं।
यह मेरा सौभाग्य कि अब तक
मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूं
बाहर कोई लक्ष्य ही नहीं है, तो भीतर जाने की बड़ी स्वतंत्रता है।
मेरा भूत-भविष्य न कोई
वर्तमान में चिर नवीन हूं
न कोई भूत है, न अतीत की कोई संपदा है हाथ में, जिसको सम्हालूं। न कोई भविष्य की बड़ी योजना है, जिसके पीछे चिंतित, व्यथित, परेशान रहूं।
कोई निश्चित दिशा नहीं है
मेरी चंचल गति का बंधन
और कोई ऐसी दिशा भी नहीं है, जो मुझे पकड़े हो।
तो भीतर जाना संभव है। ग्यारह दिशाएं हैं। दस दिशाएं बाहर हैं, ग्यारहवीं दिशा भीतर है। जब दस दिशाओं में तुम्हारा कोई बंधन नहीं होता, तब तुम्हारी ऊर्जा ग्यारहवीं दिशा में अपने आप समाविष्ट होने लगती है। कहीं पहुंचने की न त्वरा में
आकुल-व्याकुल है मेरा मन
न कहीं पहुंचना है, न कोई जल्दी है। इसलिए न कोई आकुलता, न कोई व्याकुलता, कोई आपाधापी नहीं।
खड़ा विश्व के चौराहे पर
अपने में ही सहज लीन हूं
तब तुम विश्व के चौराहे पर खड़े-खड़े भी निर्वाण में लीन हो जाते हो। तब बाजार में खड़े-खड़े मोक्ष पास आ जाता है।
मुक्त-दृष्टि निरुपाधि निरंजन
मैं विमुग्ध भी उदासीन हूं
तब तुम विमुग्ध भी दिखायी पड़ते हो, उदासीन भी। तुम्हारे भीतर अतियां मिल जाती हैं। तुम बाहर भी होते हो, भीतर भी। तुम्हारे भीतर अतियां मिल जाती हैं।
तो मेरी बात को ठीक से समझना। अन्यथा तुम सोचो कि कोई लक्ष्य बनाना है, कुछ होकर रहना है, कुछ दुनिया को करके दिखलाना है, नाम छोड़ जाना है इतिहास में--ये पागलपन की बातें मैं नहीं कर रहा हूं। तुम जिसे इतिहास कहते हो, वह पागलों की कथा है। जिसने भीतर की कोई बात खोज ली, उसने ही कुछ खोजा है। बाहर की दौड़-धूप बच्चों के खेल-खिलौने हैं।

आखिरी प्रश्नः कभी आप कहते हैं, व्यक्ति नहीं समष्टि ही है। कभी कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अनूठा, अद्वितीय है; और यह कि प्रत्येक की नियति अलग है। कृपा कर इस विरोधाभास को दूर करें।

विरोधाभास हो तो दूर करें। विरोधाभास नहीं है। तुम्हें दिखायी पड़ता है। तुम अपनी दृष्टि को थोड़ा प्रखर करो, पैना करो।
तेरा तो तब एतबार कीजे
जब होवे कुछ एतबार अपना
परमात्मा पर भरोसा तुम करोगे कैसे, अगर अपने पर ही भरोसा न हो? करेगा कौन भरोसा? तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है, तुम परमात्मा पर कैसे भरोसा करोगे? तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है, तो तुम्हें अपने भरोसे पर कैसे भरोसा होगा?
तेरा तो तब एतबार कीजे
जब होवे कुछ एतबार अपना
सब जुड़ा है। जो व्यक्ति होने में समर्थ है, वही समष्टि के प्रति समर्पित होने में समर्थ है। जो अभी स्वयं ही नहीं है, उसका समर्पण क्या?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम सब समर्पण करते हैं। मैं कहता हूं, मुझे पता भी तो चले, सब है क्या जो तुम समर्पण करते हो। नहीं, वे कहते हैं, अपना ही समर्पण करते हैं। मैं पूछता हूं, तुम हो कहां? क्या लाए हो? खाली हाथ! तुम किस भ्रम में पड़े हो? समर्पण के पहले कुछ होना तो चाहिए। और अगर कुछ भी नहीं है, तो समर्पण कौन करेगा? यह समर्पण तो फिर नपुंसक आवाज है। इसका कोई मूल्य नहीं है। संकल्पवान ही समर्पण कर सकता है।
तुम्हें विरोधाभास लगते हैं। तुम कहते हो, संकल्पवान! संकल्पवान ही समर्पण कर सकता है। जिसके पास कुछ है, वही निवेदन कर सकता है। जिसके पास है, वही चढ़ा सकता है।
व्यक्ति को जगाना होगा। व्यक्ति को उठाना होगा। व्यक्ति को उसकी परम गरिमा तक पहुंचाना होगा। तभी वह इस योग्य बनता है कि परमात्मा के चरणों में समर्पित हो सके। समष्टि में अपने को खो सके। बूंद को महिमा दो, बूंद को निखारो, ताकि बूंद सागर हो, सागर हो सके। बूंद को इतनी महिमा दो कि बूंद अपने सिकुड़ेपन को छोड़ने को राजी हो जाए, सागर बनने को राजी हो जाए। और हर चीज चाहे व्यक्ति हो, चाहे समष्टि हो; चाहे आत्मा हो, चाहे परमात्मा हो; सब अपनी- अपनी जगह बड़े सुंदर हैं। क्योंकि एक का ही खेल है। ऐसा समझो--
फैला तो बदर और घटा तो हिलाल था
जो नक्श था अपनी जगह बेमिसाल था
पहले दिन का चांद और पूर्णिमा का चांद, कौन सुंदर है? पहले दिन का चांद
कि पूर्णिमा का चांद?
फैला तो बदर
बड़ा होता गया तो पूर्णिमा का चांद बन जाता है।
और घटा तो हिलाल था
और छोटा होता गया तो फिर पहले दिन का चांद बन जाता है।
जो नक्श था अपनी जगह बेमिसाल था
लेकिन तुलना का कोई अर्थ नहीं है। पहले दिन का चांद भी बेमिसाल है, पूर्णिमा का चांद भी बेमिसाल है।
सुना है, ईरान के बादशाह ने अपने एक वजीर को भारत भेजा। ईरान और भारत में बड़ा विरोध था। वजीर को भेजा था कि कुछ सुलझाव हो जाए। वजीर आया, उसने भारत के सम्राट को कहा कि आप पूर्णिमा के चांद हैं। सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने कहा कि और तुम अपने बादशाह को क्या कहते हो? उसने कहा, वे दूज के चांद हैं। आप पूर्णिमा के चांद हैं। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसके वजीर भी बहुत प्रसन्न हुए। इस वजीर को उन्होंने बहुत धन-दौलत दी, इसे विदा किया, बड़ी मैत्री का संबंध हो गया। अपने सम्राट को कहता है दूज का चांद, भारत के सम्राट को कहता है पूर्णिमा का चांद!
जब यह वापस लौटा तो इसके दुश्मनों ने खबर पहुंचा दी ईरान। ईरान का बादशाह नाराज हुआ। दरबार की राजनीति। लोगों ने उलझा रखा है उसको कि इसने अपमान किया है, यह जालसाजी करके आ रहा है। आपको दूज का चांद बताया, यह तो हार की बात हो गयी, यह तो अपमान हो गया। और भारत के सम्राट को पूर्णिमा का चांद बताया।
जब वजीर पहुंचा, तो नंगी तलवारों में घेर लिया गया। वहां फांसी तैयार थी। वजीर ने कहा, इसके पहले कि मैं मरूं, क्या मैं पूछ सकता हूं कि कारण क्या है? सम्राट ने कहा, अपमान हुआ है। तुम्हें हमने भेजा था समझौता करने, पराजित होने नहीं। खुशामद करने नहीं। अगर इस कीमत पर हल होना था मामला, तो लड़ ही लेना बेहतर था। तुमने पूर्णिमा का चांद कहा सम्राट को, मुझे दूज का चांद बताया! वह वजीर हंसने लगा। उसने कहा, निश्चित ही। क्योंकि दूज के चांद की बढ़ने की संभावना है। पूर्णिमा का चांद तो अब मरने के करीब है। दूज का चांद बढ़ेगा, बड़ा होगा, फैलेगा; पूर्णिमा का चांद तो अब सिकुड़ेगा, ढलेगा। मैंने तुम्हारे सम्मान में ही बात कही है।
कौन बड़ा है? दूज का चांद? पूर्णिमा का चांद? बात ही गलत है। यह सवाल ही गलत है बड़े-छोटे का। क्योंकि पूर्णिमा का चांद और दूज का चांद, दो चांद नहीं हैं। तुलना व्यर्थ है। दूज का चांद ही पूर्णिमा का चांद हो जाता है।

पूर्णिमा का चांद ही दूज का चांद बन जाता है। एक ही वर्तुल की यात्राएं हैं।
व्यक्ति ही समष्टि हो जाता है। समष्टि ही व्यक्ति बनती रहती है।
आत्मा में परमात्मा डूबता रहता है, आत्मा परमात्मा में डूबती रहती है।
तुम दूज के चांद हो, बढ़ते हो परमात्मा की तरफ। और परमात्मा छितर-छितर
कर फिर दूज का चांद बनता जाता है। इसलिए विरोधाभास मत देखो। विरोधाभास है भी नहीं।
फैला तो बदर और घटा तो हिलाल था
जो नक्श था अपनी जगह बेमिसाल था
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
चवालीसवां प्रवचन

ऊर्जा का क्षण-क्षण उपयोगः धर्म

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोतो पुंं पापस्मिं रमते मनो।। 102।।

पापंचे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो।। 103।।

पुंंचे पुरिसो कयिरा कयिराथेन पुनप्पुनं।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुंंस्स उच्चयो।। 104।।

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति।। 105।।

भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति।। 106।।

मावमोंंथ पापस्स न मन्तं आगमिस्सति।
उदविन्दुनिवातेन उदकुम्भोपि पूरति।
बालो पूरति पापस्स थोकथोकम्पि आचिनं।। 107।।

मावमोंंथ पुंंस्स न मन्तं आगमिस्सति।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति।
धीरो पूरति पुंंस्स थोकथोकम्पि आचिनं।। 108।।

धम्मपद के आज के सूत्र पाप और पुण्य के संबंध में हैं।
पाप दुख लाता है, फिर भी लोग किए जाते हैं। पुण्य सुख लाता है, फिर भी लोग टाले जाते हैं। तो पाप और पुण्य की प्रक्रिया को समझना जरूरी है।
जानते हुए भी कि पाप दुख लाता है, फिर भी मुक्त होना कठिन है। जानते हुए भी कि पुण्य सुख लाता है, फिर भी प्रवेश कठिन है। तो जरूर पाप और पुण्य की प्रक्रिया में कुछ उलझाव है, जहां मनुष्य खो जाता है, भ्रमित हो जाता है। पहली बात, पाप को पाप जानकर कोई भी करता नहीं, कभी नहीं किया है। पाप
को जो पाप की तरह जान लेता है, हाथ तत्क्षण रुक जाते हैं। पाप को व्यक्ति पुण्य की भांति जानकर ही करता है। तुम बुरा भी करते हो, तो भला मानकर करते हो। बुरा भले की ओट में छिपा होता है।
इसलिए तुम यह प्रतीक्षा मत करना कि तुम जान लोगे कि बुरा बुरा है, बुरा दुख लाता है, तो मुक्त हो जाओगे। तुम्हें अपने भले के दृष्टिकोण में छिपे बुरे को खोजना होगा। तुम्हें वहां तलाश करनी होगी, जहां तुमने तलाश की ही नहीं। तुम्हारा क्रोध तुम्हारी करुणा की ओट में छिपा है। तुम्हारी हिंसा तुम्हारी अहिंसा की आड़ में छिपी है। तुम्हारी कामवासना ने ब्रह्मचर्य के वस्त्र धारण कर लिए हैं। और तुम्हारा असत्य सत्य के शब्द सीख गया है। तुम्हारा अज्ञान पांडित्य की भाषा बोलता है।
शैतान को बचने को कोई जगह नहीं मिली, वह मंदिरों की प्रतिमाओं में छिप गया है। वहां तुम उसे देख ही नहीं पाते, क्योंकि वहां तुम भगवान को देखने जाते हो। वहां तुम एक पक्ष लेकर जाते हो। तुम्हारी आंखें पहले से ही भरी होती हैं। शैतान को बचने के लिए मंदिर और मस्जिद से बेहतर कोई जगह नहीं है। और अज्ञान को बचने के लिए शास्त्रों से बड़ा कोई सहारा नहीं है। और अहंकार को अगर अपने को सदा के लिए छुपा लेना हो सुरक्षित, तो विनम्रता, बस विनम्रता ही सुदृढ़ भीत है। उसी सुदृढ़ किले के भीतर अहंकार छिप जाता है। पाप को पाप जानकर किसी ने कभी किया नहीं। पाप को कुछ और जानकर किया है। इसलिए पाप का असली सवाल कृत्य का नहीं है, बोध का है। तुम्हारे जानने

में भूल हो रही है, तुम्हारे करने में नहीं। अगर जानना सुदृढ़ हो जाए, सुधर जाए, ठीक-ठीक हो जाए, करना रूपांतरित हो जाएगा। सम्यक दृष्टि तुम्हें सम्यक आचरण पर ले आएगी।
इसलिए तुमसे जो कहता है, पाप छोड़ दो, वह व्यर्थ ही समय गंवा रहा है। अपना भी, तुम्हारा भी। तुमने पाप को कभी पकड़ा ही नहीं है। तुम तो पुण्य को ही पकड़ते हो। तुमसे जो कहता है, बुरा मत करो; तुम हंसोगे, तुम कहोगे, बुरा तो हम कभी करते ही नहीं। हो जाता है, यह दूसरी बात है! करते हम सदा भला हैं।
करते तो हम भले की ही शुरुआत हैं, आखिरी में हाथ में बुरा लगता है, यह हमारा दुर्भाग्य है।
इन सूत्रों में प्रवेश के पहले पहली बात, जीवन की क्रांति बोध की क्रांति है, कृत्य की नहीं। क्योंकि बुनियादी भूल वहीं हो रही है। तुम्हारे जानने में भूल हो रही है। तुम्हारे होश में भूल हो रही है। दूसरी बात, पाप तुम्हें प्रलोभित करता है। क्यों? सदियों-सदियों से आदमी जानता रहा है, सभी आदमियों का अनुभव है, पर यह अपरिहार्य रूप से एक ही बात सिद्ध करता है कि पाप लोगों को गहन दुख में ले गया। हर बार निष्पत्ति दुख में होती है। तुमने हिंसा की, तुमने क्रोध किया, कब सुख पाया? तुमने लोभ किया, तुमने मत्सर बांधा, तुमने ईर्ष्या की, कब सुख की वर्षा हुई? एक आध भी तो अनुभव हो, जो तुम्हारे समर्थन में खड़ा हो जाए। सारे अनुभव तुम्हारे विपरीत हैं, फिर भी तुम अनुभव की नहीं सुनते। तो जरूर कहीं बड़ी गहरी चाल होगी।
पाप सुख का प्रलोभन देता है। सुख कभी नहीं देता, प्रलोभन देता है। यह
तो तुम भी जानते हो कि पाप से कभी सुख नहीं मिला, लेकिन प्रलोभन! वहीं तुम भूल जाते हो। अनुभव तो दुख है, लेकिन प्रलोभन का तो कोई अंत नहीं। प्रलोभन तो कोरा आश्वासन है।
पाप कहता है, इस बार नहीं हुआ, अगली बार होगा। पाप कहता है, आज नहीं हुआ, हजार चीजें विपरीत पड़ गयीं, कल होगा। लोगों ने न होने दिया, मैंने तो सब इंतजाम किया था, समय अनुकूल न पड़ा, भाग्य और विधि ने साथ न दिया, परिस्थिति प्रतिकूल हो गयी, हवाएं उलटी बहने लगीं, मैंने तो नाव छोड़ी थी ठीक समय, ठीक दिशा में, मेरा कोई कसूर नहीं, कल होगा। ठीक अवसर पर, ठीक मौसम में, समय-घड़ी, विधि-विधान चुनकर फिर से शुरू करना। पाप की कला यह है कि जब भी पाप हारता है, दोष दूसरों पर डालता है। और प्रलोभन को फिर-फिर बचा लेता है।
तो जिस व्यक्ति के जीवन में दूसरों को दोष देने की आदत है, वह कभी पाप
से मुक्त न हो पाएगा। क्योंकि वही तो पाप के बचाव की व्यवस्था है। पाप सदा ही इशारा कर देता है कहीं और, कि देखो, इस कारण अड़चन आ गयी। अगर यह अड़चन न होती, तो आज तुम विजेता हो गए होते। साम्राज्य तुम्हारा था। पाप दोषारोपण अपने पर नहीं लेता। और जिस व्यक्ति की यह आदत गहरी हो गयी हो कि दोष को दूसरे पर टाल दे, वह कभी पाप से मुक्त न हो पाएगा। होने का कोई उपाय ही नहीं।
तो जब भी तुम भूल करो, जो भी परिणाम हों, सारी अपनी भूल पर ही आरोपित करना। तो आश्वासन कटेगा, तो प्रलोभन कटेगा, तो तुम्हें पाप सीधा-सीधा दिखायी पड़ेगा, तो पाप तुम्हें धोखा न दे पाएगा, प्रवंचना में न डाल पाएगा। अनुभव तो पाप के दुख के हैं, लेकिन प्रलोभन सदा सुख का है। पाप बुलाए चला जाता है। वह बड़े इंद्रधनुष बसाता है। पास पहुंचोगे, हाथ में कुछ भी न लगेगा। मृग-मरीचिका है। दूर का धोखा है।
लेकिन दूर से धोखा बड़ा सुंदर मालूम होता है। इंद्रधनुष के पास जाओगे,
सब रंग खो जाएंगे। हर बार ऐसा ही हुआ है। पाप के पास गए, रंग खो गए। अंधेरा हाथ लगा। कोई रोशनी हाथ न आयी। फिर दूर हटे, फिर प्रलोभन ने पकड़ा। फिर रंग दिखायी पड़ने लगे। दूरी में रंग है। दूर के ढोल सुहावने हैं।
पहला सूत्र है--
"पुण्य करने में शीघ्रता करे, पाप से चित्त को हटाए। पुण्य को धीमी गति से करने वाले का मन पाप में रमने लगता है।"

यह भाषा बहुत पुरानी हो गयी, ढाई हजार वर्ष पुरानी हो गयी है। इसे नया रूप देना होगा, तो ही तुम्हारे समझ के करीब आ सकेगी। इसे ऐसा समझो, जीवन ऊर्जा है। अगर ऊर्जा के लिए सक्रियता न हो, तो ऊर्जा उन दिशाओं में बहने लगती है जहां तुमने उसे कभी चाहा न था कि बहे।
छोटे बच्चे को खिलौना न हो, तो किसी भी चीज का खिलौना बना लेगा। महंगा
है यह सौदा। खिलौना चार पैसे का था, टूटता भी तो ठीक था। उसने घड़ी उठा ली, रेडियो का खिलौना बना लिया, तो महंगा सौदा है। ऊर्जा उसके पास है, ऊर्जा संलग्न होनी चाहिए। ऊर्जा प्रवाहित होनी चाहिए। ऊर्जा अगर प्रवाहित न हो, तो बेचैनी पैदा होती है। और बेचैनी में आदमी कुछ भी करने को राजी हो जाता है। पाप बेचैनी से पैदा होता है।
बुद्ध कहते हैं, "पुण्य करने में शीघ्रता करे।"
जब भी तुम्हारे पास शक्ति हो, बांटो। जब भी तुम कुछ कर सकते हो, कुछ शुभ करो। प्रतीक्षा मत करो कि करेंगे कल। क्योंकि ऊर्जा आज है, और तुमने शुभ को कल पर टाला, तो बीच के समय में पाप तुम्हें पकड़ेगा। तुम कुछ न कुछ करोगे।
यह चकित होओगे तुम जानकर कि जीवन के अधिक पाप कमजोरी से पैदा नहीं होते, शक्ति से पैदा होते हैं। बीमार दुनिया में बहुत पाप नहीं करते, स्वस्थ लोग पाप करते हैं। अगर पाप के हिसाब से देखो, तो बीमारी सौभाग्य है, स्वास्थ्य दुर्भाग्य है। अगर पाप की दृष्टि से देखो, तो जिनके पास शक्ति है वही उपद्रव है। जिनके पास शक्ति नहीं है, उनका कोई उपद्रव नहीं। आलसी आदमियों ने कोई बड़े पाप नहीं किए, पाप करने के लिए आलस्य तो तोड़ना पड़ेगा। कर्मठ, सक्रिय, कर्मवीर, वे ही पाप करते हैं। जहां ऊर्जा है वहां संभावना है, कुछ होकर रहेगा।
फूल भी खिलता है ऊर्जा से, कांटा भी निकलता है ऊर्जा से। अगर फूल न निकला, तो ऊर्जा कांटे से बहेगी। इसके पहले कि ऊर्जा कांटा बनने लगे, तुम फूल बना लेना। तो शक्ति को इकट्ठी करके मत बैठो।
शक्ति तुम रोज पैदा कर रहे हो अनेक-अनेक रूपों से। भोजन शक्ति दे रहा है, श्वास शक्ति दे रही है, जल शक्ति दे रहा है, सूरज शक्ति दे रहा है। तुम्हारा जीवन प्रतिपल ऊर्जा को उदगम कर रहा है, पैदा कर रहा है। इस ऊर्जा का तुम उपयोग क्या कर रहे हो?
अगर इसका कोई सदुपयोग न हुआ, फूल न बने, तो भी यह ऊर्जा को निष्कासित
तो होना ही पड़ेगा। यह बहेगी। अगर यह करुणा न बनी, तो क्रोध बनेगी। अगर यह प्रेम न बनी, तो काम बनेगी। अगर यह प्रार्थना न बनी, तो निंदा बनेगी। अगर यह पूजा न बनी, तो कुछ तो बनेगी। यह ऊर्जा ऐसे ही नहीं रहेगी। यह संगृहीत नहीं रहेगी, यह बिखरेगी। क्योंकि कल फिर नयी ऊर्जा आ रही है, जगह खाली करनी पड़ेगी। इसे सक्रिय करो, बुद्ध के सूत्र का इतना ही अर्थ है।
"पुण्य करने में शीघ्रता करे।"
हम करते उलटा हैं। अगर पुण्य करना हो तो हम कहते हैं, सोचेंगे, विचारेंगे, कल करेंगे, परसों करेंगे। पाप करना हो तो हम तत्क्षण करते हैं। तुमने कभी इस पर ख्याल किया, कोई गाली दे तो तुम नहीं कहते कि चौबीस घंटे बाद, सोच-विचारकर उत्तर देंगे। अगर तुम ऐसा करो तो शायद उत्तर तुम कभी दे ही न पाओ। सोच-विचारकर कब किसी ने गाली का उत्तर दिया है? सोच-विचार तो गाली को आने ही न देगा। सोच-विचार तो गाली को रुकावट बन जाएगी। गाली के लिए तो बेहोशी चाहिए। तत्क्षण करते हो तुम। किसी ने गाली दी, तुम फिर क्षण भी नहीं खोते। फिर तुम्हें जो करना है, उसी वक्त बावले होकर, पागल होकर कर गुजरते हो।
लेकिन अगर किसी ने प्रेम मांगा, तुम कितने कंजूस हो जाते हो! तुमने कभी ध्यान किया, प्रेम में तुम कितने कंजूस हो। देते हो तो भी बड़े बेमन से देते हो, रोक-रोककर देते हो। जैसे प्राण टूटे जा रहे हैं, जैसे जीवन नष्ट हुआ जा रहा है।
मेरे पास हजारों लोग आते हैं। बड़ी से बड़ी कठिनाई जो मैं देखता हूं, वह प्रेम देने की कठिनाई है। मांगते हैं, देते नहीं। सभी के मन में एक शिकायत

है कि प्रेम नहीं मिल रहा है। होगी ही। क्योंकि कोई दे ही नहीं रहा है, तो मिलेगा कैसे? वे खुद भी नहीं दे रहे हैं।
देना हम भूल ही गए हैं। हमें ऐसा लगता है कि देने से खो जाएगा। जब कि जीवन का सार-सूत्र यही है कि जो भी पुण्य है, वह देने से बढ़ता है, बांटने से बढ़ता है। दबाने से घटता है, रोकने से मरता है।
पुण्य का सतत प्रवाह चाहिए। जैसे नदी ताजी होती है, बहती रहती है। डबरा बन गयी, सड़ने लगी। कीचड़ पैदा होने लगा। दुर्गंध उठने लगी। खो गयी स्वच्छता, खो गयी ताजगी, खो गया कुंवारापन। वह सुगंध न रही, वह सुवास न रही, बंधन में पड़ गयी; वह मुक्ति का छंद न रहा, वह गीत न रहा।
बहाओ। एक क्षण को भी ऊर्जा इकट्ठी मत करो। करनी ही क्या है? जिसने आज
दी है, कल भी देगा। जो प्रतिपल दे रहा है, वह प्रतिपल देता रहेगा। तुम लुटाओ दोनों हाथों से।
पुण्य का अर्थ है, जब भी तुम पाओ तुम्हारे पास कुछ करने की शक्ति है, करो। खोजो अवसर। अवसर की कोई कमी नहीं है। सिर्फ कृपणता न हो, तो अवसर ही अवसर है। कुछ भी करो, कुछ बहुत बड़ा काम करना है, ऐसा ही नहीं है। कि तुम सारी दुनिया को बदलो, कोई बहुत बड़ा आदर्श समाज बनाओ, तभी कुछ होगा। कोई छोटा सा काम ही करो। किसी आदमी के पैर में लगा कांटा ही निकाल दो। किसी के घर का आंगन ही साफ कर आओ। रास्ते का कचरा ही अलग कर दो। कुछ भी करो। लेकिन एक बात ख्याल रखो कि तुम जो करो, वह किसी के लिए सुख लाता हो। किसी के लिए सुख लाता हो, वही पुण्य है। और जो किसी के लिए सुख लाता है, वह अनंत गुना सुख तुम्हारे लिए ले आता है।
पाप कहता है, तुम्हारे लिए सुख लाऊंगा; पुण्य कहता है, दूसरों के लिए सुख लाऊंगा। पाप कहता है, तुम्हारे लिए सुख लाऊंगा; लाता नहीं, जब लाता है दुख की झोली भर आती है। पुण्य कहता है, दूसरों के लिए सुख लाऊंगा; लेकिन तुम उससे अगर राजी हो जाओ, तो तुम पर अनंत गुना बरस जाता है। जो तुम दूसरों को देते हो, वही तुम्हें मिलता है।
इसे थोड़ा समझो।
जब तुम अपने लिए सुख चाहते हो, तो तुम दूसरों के दुख की कीमत पर भी अपने लिए सुख चाहते हो। तुम देते दूसरे को दुख हो, अपने लिए सुख की कामना करते हो--दुख ही मिलता है। जब तुम दूसरे को सुख देने लगते हो, अपने को दुख देने की कीमत पर भी, तब तुम्हारे चारों तरफ सुख की लहरें उठने लगती हैं। "पुण्य करने में शीघ्रता करे।"
त्वरा चाहिए। जरा सी भी शिथिलता मत करना, क्योंकि शक्ति क्षणभर को रुकती नहीं। तुमने देर की, उतने में ही शक्ति पाप बनने लगेगी। ऐसा ही है कि अगर तुमने दूध का उपयोग न कर लिया, दूध खट्टा होने लगेगा, दही बनने लगेगा। अगर तुम मुझसे पूछो, तो शक्ति को देर तक रखना ही उसमें खटास पैदा कर देता है। वह पाप की तरफ उन्मुख हो जाती है। शक्ति का प्रतिपल उपयोग चाहिए। एक क्षण की भी देरी व्यर्थ है। अवसर खोना ही मत। और जितने तुम अवसर कम से कम खोओगे, उतने ज्यादा अवसर तुम्हें उपलब्ध होने लगेंगे।
और तुम चकित होओगे जानकर, जीवन के इस भीतरी गणित को पहचानकर कि जितना तुम बांटते हो, उतना ज्यादा तुम्हें मिलता जाता है। तुम थकते ही नहीं। तुम भरते ही चले जाते हो। जैसे अनंत स्रोत खुल गए। इधर तुम लुटाते हो, वहां झरने तुम्हें भरे जा रहे हैं। फिर तो लुटाने का मजा आ जाता है। क्योंकि लुटाने से मिलता है। एक दफा लुटाने का अर्थशास्त्र ख्याल में आ गया, फिर तुम कभी दीन हो ही नहीं सकते, फिर तुम दरिद्र हो ही नहीं सकते। फिर तुम सम्राट हो गए। और सम्राट होने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। शक्ति थोड़ी देर भी रुक जाए, जहर हो जाती है। शक्ति का रुकना ही, अवरुद्ध होना ही सड़ना है। हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है
तुम पुराने पड़ गए तो जो ऊर्जा तुम्हारे नए क्षण में अमृत थी, वही बासी
हो गयी, वही सड़ गयी। जैसे ऊर्जा मिले, उसका उपयोग कर लो। क्षण-क्षण जीओ। बुद्ध ने अपने विचार को, अपने दर्शन को क्षणवाद कहा है। कहा है, क्षण-क्षण जीओ। एक क्षण से ज्यादा का हिसाब मत रखो। जिस अनजान स्रोत से इस क्षण

को जीवन मिला है; उसी अनजान, उसी शून्य से अगले क्षण भी जीवन मिलता रहेगा। कृपण मत बनो। धर्म को अगर एक शब्द में कोई पूछे तो कहा जा सकता है, वह अकृपणता है।
मरने वाले तो खैर बेबस हैं
जीने वाले कमाल करते हैं
कोई आदमी मर गया, अब बांट नहीं सकता, समझ में आता है।
मरने वाले तो खैर बेबस हैं
जीने वाले कमाल करते हैं
जीते हैं और बांटते नहीं हैं। तो जीने के नाम पर सिर्फ मरते हैं। मृत्यु तो तुमसे सब छीन लेगी, उसके पहले तुम बांट दो, दाता बन जाओ। मृत्यु तो तुमसे सब झटक लेगी, फिर तुम लाख चिल्लाओगे तो कुछ काम न पड़ेगा तुम्हारा चिल्लाना। इसके पहले कि मृत्यु तुम्हारे हाथ से ले, तुम बांट दो, तुम सम्राट बन जाओ। जो व्यक्ति ऐसी स्थिति में मरता है--बांटता ही बांटता मरता है--वह मरता ही नहीं। उसने अमृत का सूत्र पा लिया।
"पुण्य करने में शीघ्रता करे, पाप से चित्त को हटाए।"
अगर तुम पुण्य की तरफ चित्त को न लगाओ, तो पाप की तरफ चित्त लगेगा। कहीं तो लगेगा। चित्त को कोई ध्यान का बिंदु चाहिए।
तुमने कभी ख्याल किया, बीच बाजार में बैठे हो, अगर कोई बांसुरी बजाने लगे और तुम्हारा ध्यान बांसुरी की तरफ चला जाए, उस ध्यान के क्षण में बाजार का सब शोरगुल विलीन हो जाता है। अपनी जगह चल ही रहा है बाजार, उतना ही शोरगुल है, तुम्हारे लिए खो गया। तुम्हारा ध्यान कहीं और चला गया। तुम बाजार में खड़े थे, सब तरफ उपद्रव था, किसी ने कहा, घर में आग लग गयी, तुम भागे। अब तुम्हें बाजार का कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। सपना हो गया। तुम्हें घर की लपटें ही दिखायी पड़ती हैं। तुम्हारा ध्यान कहीं और लग गया। तुमने कभी देखा, युवक खेलते हों हाकी, फुटबाल, वालीबाल, पैर में चोट लग गयी, खून बह रहा है, सभी दर्शकों को दिखायी पड़ता है, खिलाड़ी को दिखायी नहीं पड़ता। ध्यान उसका अभी लगा है--खेल में लगा है। अभी समय कहां? सुविधा कहां? अभी ध्यान को बहने का पैर की तरफ उपाय नहीं। खेल बंद हुआ। तत्क्षण ध्यान बहेगा, खून का पता चलेगा।
ऐसी कहानियां हैं--कहानियां जरा विश्वासयोग्य नहीं, लेकिन सूचक हैं-- ऐसी कहानी है कि राणा सांगा युद्ध में लड़ते रहे, सिर कट गया और लड़ते रहे। यह कहानी चाहे सच न हो, लेकिन ध्यान की दृष्टि से सार्थक है। अगर पैर में लगा, खून बहता रहता है और खिलाड़ी को पता नहीं चलता, तो यह भी संभव है कि योद्धा इतना तल्लीन हो युद्ध में कि गर्दन कट जाए और उसको पता न चले, वह लड़ता ही रहे। जब पता चले, तभी तो रुकेगा न। यह हुआ हो या न हुआ हो, यह सवाल नहीं है। लेकिन ध्यान की तरफ इसमें एक इशारा है। वह इशारा यह है कि तुम मरोगे भी तब, जब तुम मौत पर ध्यान दोगे। अगर तुम्हारा सारा ध्यान जिंदगी की तरफ बहता रहा तो तुम्हें मौत भी खड़ी रहेगी दरवाजे पर, बुला न सकेगी। तो किसी ने याद दिलाया होगा कि राणा सांगा यह क्या कर रहे हो, सिर तो कट ही गया। अब रुको भी। इसका ख्याल आते ही रुक गए होंगे, तो बात अलग। इस कहानी में सत्य का अंश मालूम पड़ता है।
काशी के नरेश का अपेंडिक्स का आपरेशन हुआ। तो उन्होंने कहा, मैं तो गीता पढ़ता रहूंगा, कोई नशे की दवा, कोई बेहोशी की दवा, कोई अनस्थीसिया नहीं लूंगा। ऐसा खतरनाक मामला था कि आपरेशन न हो तो भी मौत होनी थी, और नरेश किसी भी तरह बेहोशी की दवा लेने को तैयार न था। तो चिकित्सकों ने खतरा लेना ठीक समझा कि अब कोई मरेगा ही--आपरेशन न हुआ तो मौत निश्चित है और आपरेशन किया बिना बेहोशी की दवा के तो भी मौत करीब-करीब निश्चित है--पर कौन जाने शायद यह आदमी ठीक ही कहता हो, एक प्रयोग कर लेने में हर्ज नहीं है। प्रयोग किया।
वह अपनी गीता का पाठ करते रहे, आपरेशन चलता रहा। आपरेशन हो गया, तब डाक्टरों ने कहा कि अब आप पाठ बंद कर सकते हैं। पूछा उनसे कि क्या हुआ? उन्होंने कहा, कुछ और मैं जानता नहीं, इतना ही जानता हूं कि जब मैं गीता

पढ़ता हूं तब मुझे और कुछ भी ध्यान में नहीं रहता। सारा ध्यान गीता पर लग जाता है। मैं और कहीं नहीं रहता, सिकुड़कर गीता पर आ जाता हूं।
पाप और पुण्य विकल्प हैं। अगर तुम्हारा ध्यान करुणा पर लगा है, तो तुम क्रोध कैसे कर सकोगे? क्रोध भूल ही जाएगा। याद ही न आएगी। जैसे क्रोध कोई घटना होती ही नहीं। जैसे क्रोध कोई दिशा ही नहीं है। अगर तुम्हारा ध्यान दान पर लगा है, देने पर लगा है, तो कृपणता भूल ही जाएगी। ये दोनों बातें एक साथ याद नहीं रखी जा सकतीं। यह तो असंभव है। तुम एक में ही जी सकते हो। इसलिए बुद्ध के सूत्र का अर्थ यह है कि अगर तुम त्वरा करो, जल्दी करो, शीघ्रता करो और पुण्य में अपने मन को लगाते रहो, तो तुम पाओगे कि पाप से तुम बचने ही लगे, बचने की जरूरत न रही। और जब भी कभी तुम्हें लगे कि पाप पर नजर जा रही है, तत्क्षण पुण्य पर नजर देना।
ऐसा समझो कि तुम्हें कोई एक आदमी दिखायी पड़ा, बांसुरी बजा रहा है, लेकिन शकल कुरूप है। अब तुम्हारे सामने दो विकल्प हैं। या तो तुम उसकी कुरूप शकल देखो और पीड़ित और बेचैन हो जाओ, या उसकी सुंदर बांसुरी का स्वर सुनो, सौंदर्य में लीन हो जाओ।
अगर तुम सुंदर बांसुरी का स्वर सुनो, तो उसकी कुरूप शकल भूल जाएगी। स्वरों में तुम लवलीन हो जाओगे, तल्लीन हो जाओगे। अगर तुम उसका कुरूप चेहरा देखो, तो बांसुरी बजती रहेगी, तुम्हें सुनायी न पड़ेगी, तुम कुरूपता के कांटे से उलझ जाओगे। गुलाब की झाड़ी के पास खड़े होकर कांटे गिनो या फूल गिनो, दोनों संभावनाएं हैं। जो फूल गिनता है, वह कांटे भूल जाता है। जो कांटे गिनता है, उसे फूल दिखायी पड़ने बंद हो जाते हैं। पुण्य और पाप जीवन के विकल्प हैं।
"पाप से चित्त को हटाए, पुण्य करने में शीघ्रता करे। पुण्य को धीमी गति से करने वाले का मन पाप में रमने लगता है।"
करोगे क्या? नदी बहेगी नहीं तो डबरा बनने ही लगेगी। बहती रहे, बहाव रहे, तो डबरा कैसे बनेगी? एक ही हो सकता है। नदी डबरा बने तो बह न सके, बहे तो डबरा न बन सके।
बुद्ध का जोर पाप से बचने पर उतना नहीं है, जितना पुण्य में रत होने पर है। यही नीति और धर्म का भेद है। नीति कहती है पाप से बचो, धर्म कहता है पुण्य में डूबो। ऊपर से देखने पर दोनों एक सी बातें हैं, पर एक सी नहीं। जमीन और आसमान का भेद है। अगर तुम सिर्फ पाप से ही बचोगे, तो ज्यादा देर बच न पाओगे, क्योंकि बच-बचकर ऊर्जा का क्या करोगे? अगर क्रोध को ही रोके रहे, कितनी देर रोक पाओगे? विस्फोट होगा। इकट्ठा हो जाएगा, फिर बहेगा, फिर तुम अवश हो जाओगे। नहीं, सिर्फ क्रोध को बचाकर कोई क्रोध से नहीं बच सकता। करुणा में बहना पड़ेगा, अन्यथा क्रोध के डबरे भर जाएंगे।
धर्म विधायक रूप से पुण्य की खोज है, नीति निषेधात्मक रूप से पाप से बचाव है। हां, अगर तुम दोनों का उपयोग कर सको, तो तुम्हें दोनों पंख मिल गए। उड़ना बहुत सुगम हो जाएगा। इधर पाप से मन को बचाते रहो, उधर पाप की जितनी ऊर्जा बच गयी पाप से, पुण्य में लगाते रहो। शीघ्रता करो लेकिन। मन की एक तरकीब है--स्थगन। मन कहता है, कल कर लेंगे।
यह सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई
कहां चमन में नशेमन बने कहां न बने
यह बहार सदा रहने वाली नहीं। यह वसंत सदा रहने वाला नहीं। इसका प्रारंभ है, इसका अंत है। यह जन्म है और मौत आती है। ये बीच की थोड़ी सी घड़ियां हैं। तुम कहीं यही सोचते-सोचते बिता मत देना कि कहां बनाएं घर-- कहां नशेमन बने, कहां न बने। यह बहार रुकी न रहेगी तुम्हारे सोचने के लिए। यह जीवन तुमने कुछ भी न किया तो भी खो जाएगा, इसलिए कुछ कर लो। क्योंकि जो तुम कर लोगे, वही बचना होगा। जो तुम कृत्य में रूपांतरित कर लोगे, जो सक्रिय हो जाएगा, सृजनात्मक हो जाएगा, वही तुम्हारी संपदा बन जाएगी। बचाने से नहीं बचता जीवन, जगाने से, सृजन कर लेने से बचता है।
वे ही हैं धन्यभागी, जो एक-एक पल का उपयोग कर लेते हैं। इसके पहले कि
पल जाए, पल को निचोड़ लेते हैं। उनका जीवन सघन होता जाता है। उनका जीवन गहन आंतरिक शांति, आनंद और संपदा से भरता जाता है। मौत उन्हें दरिद्र नहीं

पाती। मौत उन्हें भिखारियों की तरह नहीं पाती। मौत उन्हें सम्राटों की तरह पाती है। लेकिन जिन्हें तुम सम्राटों की तरह जानते हो, मौत उन्हें भिखमंगों की तरह पाती है।
क्षण का उपयोग, इसके पहले कि खो जाए। और क्षण बड़ी जल्दी खो रहा है, भागा जा रहा है। एक पल की भी देर की कि गया। तुम जरा ही झपकी खाए कि गया। इतनी त्वरा से पकड़ना है समय को। विचार करने की भी सुविधा नहीं है। क्योंकि विचार में भी समय खो जाएगा और वर्तमान का क्षण विचार के लिए भी अवकाश नहीं देता। निर्विचार से, ध्यान से, पुण्य में उतर जाओ। इसलिए पुण्य की प्रक्रिया का ध्यान अनिवार्य अंग है। क्योंकि केवल ध्यानी ही शीघ्रता कर सकता है। जो विचार करता है, वह तो देर कर ही देगा। वह तो सोचता ही रहेगा-- यह सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई
कहां चमन में नशेमन बने कहां न बने
विचारक तो सोचता ही रहेगा। इसलिए धर्म विचारक का रास्ता नहीं है। धर्म है ध्यानी का रास्ता। ध्यानी का अर्थ है, सोच-विचार छोड़ा। जो अस्तित्व है हाथ में, उसका कुछ सृजनात्मक उपयोग करेंगे। जो हाथ में है, वहीं घर को बनाएंगे। जो हाथ में है, उसे ही रूपांतरित करेंगे। फिर कल जो होगा कल देख लेंगे। आज को कल के लिए न खोएंगे। आज को निर्माण करेंगे, ताकि कल उसके ऊपर, उसके आधार पर और ऊंचाइयों के शिखर छू सके।
"मनुष्य यदि पाप कर बैठे तो उसे पुनः-पुनः न करे, उसमें रत न हो; क्योंकि पाप का संचय दुखदायी है।"
पाप के दो रूप हैं। एक तो पाप का क्षणिक रूप है। वह क्षमा योग्य है। फिर पाप का एक स्थाई भाव है। वह क्षमा योग्य नहीं है। छोटा बच्चा है, तुमने चांटा मार दिया, वह गुस्से में आ गया, पैर पटकने लगा, यह क्रोध क्षमा योग्य है। क्योंकि क्षणभर बाद यह बच्चा उसे भूल जाएगा। क्षणभर बाद तुम इसे हंसता हुआ पाओगे। क्षणभर पहले वह कह रहा था कि तुमसे अब कभी बोलेंगे भी नहीं, तुम्हारी शकल भी न देखेंगे, क्षणभर बाद तुम इसे अपनी गोदी में बैठा पाओगे। यह क्षण का उफान था। यह कोई स्थाई भाव नहीं।
लेकिन हम पाप का स्थाई भाव निर्मित करते हैं। आज क्रोध किया, कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, अब क्रोध की एक लकीर बन रही है। और धीरे-धीरे और भी छोटे-छोटे कारणों पर हम क्रोध करने में कुशल होते जाएंगे। क्योंकि क्रोध करना हमारा स्वभाव--करीब-करीब स्वभाव बन जाएगा, आदत बन जाएगी। पहले हम बड़ी बातों पर क्रोध करेंगे, फिर छोटी बातों पर क्रोध करेंगे, फिर ना-कुछ पर क्रोध करने लगेंगे, फिर ऐसी घड़ी आ जाएगी कि क्रोध के लिए हमें कारण खोजने पड़ेंगे। क्योंकि न करेंगे तो बेचैनी मालूम होगी, तलफ लगेगी। जिस दिन क्रोध न किया उस दिन लगेगा कि जिंदगी ऐसे ही गयी। उत्साह ही मर जाएगा। क्रोध एक तरह का धूम्रपान हो जाएगा। उससे उत्तेजना मिलेगी, नशा चढ़ेगा, लगेगा जीवित हैं। रस मालूम होगा।
"मनुष्य यदि पाप कर बैठे तो पुनः-पुनः न करे।"
हो जाए पाप, तो कोई बहुत चिंता की बात नहीं। मनुष्य है, भूल स्वाभाविक है। लेकिन उसकी पुनरुक्ति न करे। पाप क्षमा योग्य है, पुनरुक्ति क्षमा योग्य नहीं है। भूल क्षमा योग्य है, लेकिन उसी-उसी भूल को बार-बार करना क्षमा योग्य नहीं है। तुमसे एक बार भूल हो गयी, समझो, अब उसे दोहराओ मत। अगर भूल को तुम दोहराते हो, तो फिर तो भूल धीरे-धीरे भूल मालूम ही न पड़ेगी। तुम्हारे जीवन की सामान्य प्रक्रिया हो जाएगी।
तुम दोनों तरह के लोगों को जानते हो। ऐसे लोग हैं जो कभी-कभी क्रोध करते हैं। उनको तुम भले आदमी पाओगे, बुरे आदमी नहीं। उनका क्रोध भी कुछ बहुत भयंकर नहीं होगा। कभी-कभी करते हैं। सामान्यजन हैं, सिद्धपुरुष नहीं हैं, माना। लेकिन कुछ लोग तुम पाओगे जो कभी-कभी क्रोध नहीं करते, जो क्रोध में रहते ही हैं। क्रोध जिनका स्वभाव है। उठते हैं, बैठते हैं क्रोध में; चलते हैं क्रोध में; बोलते हैं क्रोध में; प्रेम भी करते हैं तो क्रोध में; नमस्कार भी करते हैं तो क्रोध में; क्रोध उनकी स्थाई दशा है। क्रोध की सतत-धारा उनके नीचे बहती रहती है। यह क्षमा योग्य नहीं हैं। इन्होंने गहन अपराध कर लिया।

लेकिन ऐसा क्यों होता है? जरूर क्रोध कुछ देता होगा। दुख देता है, यह तो साफ है। लेकिन दुख के लिए ही तो कोई क्रोध को न करेगा, कुछ और भी देता होगा। कुछ रस भी देता होगा। तुमने कभी क्रोध में देखा कि क्रोध के क्षण में तुम शक्तिशाली मालूम होते हो। यह तुमने अनुभव किया होगा कि क्रोध में एक आदमी बड़ी चट्टान को हटा देता है, बिना क्रोध के नहीं हटा पाता। चार आदमी लगते हैं हटाने में। क्रोध की हालत में तुम अपने से मजबूत आदमी को उठाकर फेंक देते हो। प्रेम की हालत में तुम्हारा बच्चा भी तुम्हें चारों-खाने-चित्त कर देता है। क्रोध शक्ति देता मालूम पड़ता है। क्रोध अहंकार को बल देता मालूम पड़ता है। जब तुम क्रोध में होते हो तो ऐसा लगता है कि तुम शक्तिशाली हो, दूसरों के मालिक हो, दूसरों को अपने हिसाब से चलाने का तुम्हें हक है। जब तुम क्रोध नहीं करते हो तो ऐसा लगता है कि तुम निर्वीर्य हो, निर्बल हो, तुम किसी को चला नहीं पाते।

तो क्रोध दुख देता है, वह तो ठीक है; लेकिन क्रोध अहंकार भी देता है। उसे समझना जरूरी है। दुख के लिए तो कोई क्रोध को करता नहीं। लेकिन अहंकार के लिए करता है। अगर तुम अहंकार को पोसते हो, तो तुम क्रोध से न बच सकोगे। अगर तुम अहंकार को पोसते हो, तो तुम लोभ से न बच सकोगे। तुम फिर अहंकार के लिए नए-नए शब्द गढ़ लोगे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, अहंकार और स्वाभिमान में क्या फर्क है? मैं उनसे कहता हूं, तुम्हें हो तो स्वाभिमान, दूसरों को हो तो अहंकार। और तो कोई फर्क नहीं है। अपनी बीमारी को भी आदमी अच्छे-अच्छे शब्द देना चाहता है।

कल ही एक मित्र ने प्रश्न पूछा था कि दूसरे लोगों को महावीर चक्र मिलता है, तो हमको भी पाने की कोशिश करनी चाहिए कि नहीं। दिल्ली में सम्मान मिलते हैं--महावीर चक्र है, पद्मभूषण है, भारतरत्न है--ऐसी उपलब्धियां होती हैं लोगों को, तो ये पाने योग्य हैं या नहीं?

क्या करोगे महावीर चक्र लेकर? ऐसे ही कोई चक्रम तुम कम हो! और सरकारी सील लग जाएगी कि निश्चित! लेकिन अहंकार व्यर्थ की बातों में भी बड़ा रस लेता है। अब जिसने पूछा है, वह गलत जगह आ गया। यहां सारी कोशिश यह है कि तुम कैसे चक्रम न हो जाओ, चक्कर से कैसे बाहर निकलो, तुम्हें महावीर चक्र की सूझी है! क्या करोगे पाकर? क्या मिलेगा? कुछ पाना ही हो तो भीतर कुछ पाने की बात करो। और लोग कहें कि तुम बड़े विद्वान हो, और लोग कहें कि बड़े बलशाली हो; और लोग क्या कहते हैं, इससे क्या फर्क पड़ेगा? तुम क्या हो, इसकी चिंता करो।

गौण अतिशय गौण है, तेरे विषय में
दूसरे क्या बोलते, क्या सोचते हैं
मुख्य है यह बात पर अपने विषय में
तू स्वयं क्या सोचता, क्या जानता है

एक ही बात महत्वपूर्ण है, तुम अपने स्वयं में, अपनी समझ में, अपने भीतर, अपने अंतःस्तल में क्या सोचते, क्या जानते हो स्वयं को। भीड़ की फिकर छोड़ो। मरते वक्त तुम अकेले जाओगे। महावीर चक्र साथ न ले जा सकोगे। मौत को तुम महावीर चक्र दिखाकर यह न कह सकोगे, एक क्षण रुक, मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, भारतरत्न हूं। मौत तुम्हें ऐसे ही ले जाएगी जैसे किसी और को ले जाती है। जन्म से अकेले, मौत में अकेले, बीच में दोनों के भीड़ है। उस भीड़ की बातों में बहुत मत पड़ जाना।

अहंकार का अर्थ है, लोग क्या कहते तुम्हारे संबंध में, इसकी चिंता। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, अगर हम क्रोध न करें, तो लोग समझते हैं हम कमजोर हैं। तो क्रोध तो करना ही पड़ेगा। फिर पूछते हैं, मन की शांति कैसे हो? तो फिर मैं उनसे कहता हूं, फिर शांति की भी फिकर छोड़ो। क्योंकि शांत को भी लोग समझते हैं, कमजोर हो। तुम अशांत ही रहो। तुम तो जितने पगला जाओ उतना अच्छा। क्योंकि पागल को लोग समझते हैं कि बड़ा बलशाली है। पागल से लोग डरते हैं।

लोगों को डराने के लिए तुम करीब-करीब पागल हो गए हो। पत्नी पागल हो जाती है, पति डर जाता है। पति पागल हो जाता है, पत्नी डर जाती है। सब एक-

दूसरे को डरा रहे हैं। समय खोया जाता है। जब कि तुम अपने को जान सकते थे, उसको दूसरों को डराने में समय खो रहे हो। छोटे-छोटे बच्चों को डराते हैं मां-बाप, इस बुरी तरह डराते हैं! उसमें भी बड़ा मजा ले लेते हैं। यद्यपि सोचते यही हैं कि उनके हित में डरा रहे हैं। लेकिन वे जिंदगीभर इनके डर के कारण पीड़ित रहेंगे।
मनस्विद कहते हैं कि अगर मां-बाप ने बच्चों को बहुत ज्यादा डरा दिया
तो वे जिंदगीभर डरते रहेंगे, वे हर किसी से डरेंगे। जहां भी कोई शक्तिशाली होगा, वहीं डर जाएंगे। वे सदा पैर छूते रहेंगे। वे सदा भयभीत कंपते रहेंगे। उनको कभी भी जीवन में स्वयं होने की क्षमता न आ सकेगी। लेकिन मां- बाप डराते हैं यह कहकर कि उनके हित के लिए डरा रहे हैं।
मैं तुमसे यह कहना चाह रहा हूं कि तुम अपनी बीमारियों को अच्छे नाम मत देना। तुम अपनी बीमारियों को उनका वही नाम देना, जो ठीक है। अहंकार को अहंकार कहना, स्वाभिमान मत। क्रोध को क्रोध कहना, दूसरे का हित नहीं। बच्चे को मारो तो जानकर मारना कि मारने में तुम्हें रस आ रहा है, मजा आ रहा है। छोटे बच्चे को सताने में तुम्हें शक्तिशाली होने का सुख मिल रहा है। यह मत कहना कि तेरे हित में मार रहे हैं। नहीं तो तुम चूक जाओगे; फिर पाप चलेगा।
"मनुष्य यदि पाप कर बैठे तो उसे पुनः-पुनः न करे, उसमें रत न हो; क्योंकि पाप का संचय दुखदायी है।"
लेकिन यह तो बुद्धपुरुष सदियों से कहते रहे कि पाप का संचय दुखदायी है, फिर भी लोग पाप करते हैं। तो कारण खोजना होगा। लोग दुख को भी छोड़ना नहीं चाहते। दुख में भी कुछ न्यस्त स्वार्थ हैं।
इसे तुम थोड़ा समझने की कोशिश करो। मैं जैसे-जैसे लोगों के जीवन में उतरकर देखने की कोशिश करता हूं, मैं मुश्किल से पाता हूं ऐसा आदमी जो दुख छोड़ना चाहता है। क्योंकि दुख अकेला नहीं है, दुख के साथ बड़ी चीजें जुड़ी हैं।
समझने की कोशिश करें।
मनस्विद कहते हैं कि हर आदमी के भीतर मसीहा छिपा है। अगर कोई आदमी बीमार है, तो तुम्हारे मन में आकांक्षा उठती है उसकी सेवा करने की, उसको बीमारी के बाहर लाने की। अगर कोई आदमी दुखी है, तो तुम्हारे मन में आकांक्षा होती है, इसको इसके दुख के बाहर खींचना है, इसका उद्धार करें। कुछ बुरी आकांक्षा नहीं। लेकिन परिणाम बड़े भयंकर हैं। पुरुष अक्सर ऐसी स्त्रियों के प्रेम में पड़ जाते हैं जो स्त्रियां दुखी हैं। क्योंकि पुरुषों को बड़ा मजा आ जाता है, किसी को दुख से उबार रहे हैं। स्त्रियां ऐसे पुरुषों के जीवन में उलझ जाती हैं, जिनमें सुधार की गुंजाइश है। शराबी है पति, तो स्त्री को ज्यादा रस आता है। सुधारने का एक सुख है। एक उद्धार का अवसर मिला।
अब इसे थोड़ा हम समझें।
अगर तुमने एक स्त्री को इसलिए प्रेम किया कि वह बीमार थी, रुग्ण थी और तुम उसे चिकित्सा करना चाहते थे, उसकी दुख की सीमा के बाहर लाना चाहते थे, तो फिर वह दुख को छोड़ न सकेगी। क्योंकि दुख छोड़ने का अर्थ तुम्हारा प्रेम भी खो जाना होगा। अगर एक स्त्री अपने पति के पीछे लगी है कि यह शराब छोड़ दे, और अगर यह शराब छोड़ने के कारण ही सारा प्रेम बना है, तो पति शराब न छोड़ सकेगा। क्योंकि शराब छोड़ने का मतलब हुआ, संबंध समाप्त हुआ।
मुझसे लोग पूछते हैं कि अगर हम बदल जाएंगे, तो हमारे संबंधों पर परिणाम तो न होगा? अगर हम ध्यान करेंगे, तो हमारे संबंध तो रूपांतरित न होंगे? मैं उनसे कहता हूं, सोच-समझकर करना। रूपांतरित होंगे। क्योंकि तुम्हारे सब संबंध तुम्हारे रोगों से भरे हैं। ध्यान एक को बदलेगा, तो दूसरे को भी बदलाहट होनी शुरू हो जाएगी। हमारे दुखों में भी हमारी पकड़ है। मजा खो जाएगा।
मैं दो शत्रुओं को जानता था। दोनों पुराने रिटायर्ड प्रोफेसर थे और दोनों का कुल धंधा इतना था, एक-दूसरे की निंदा। उनमें से एक से भी मिल जाओ तो दूसरे के संबंध में चर्चा सुननी पड़ती। उनमें से एक मर गया। काफी उम्र

हो गयी थी, कोई अठहत्तर वर्ष। जिस दिन वह मरा, मैंने अपने एक मित्र को कहा कि अब दूसरा ज्यादा दिन जिंदा न रह सकेगा। तीन महीने बाद दूसरा भी मर गया। वह मित्र मेरे पास आया, उन्होंने कहा कि आपने यह कैसे कहा था? कि यह तो बिल्कुल सीधी बात थी। उनका रस ही इतना था। अब उसके, दूसरे के जीवन में कोई रस ही न रहा। एक के मर जाने के बाद दूसरे को बात ही करने को कुछ न बची। सारी बात--उसकी निंदा! मित्रों में ही संबंध नहीं होते, दुश्मनों में भी बड़े गहरे नाते होते हैं।
जिस दिन गांधी को गोली लगी, उस दिन जिन्ना अपने बगीचे में बैठा था। तब
तक जिन्ना ने--हर बार हर तरह से कोशिश की थी उसके मित्रों ने, अनुयायियों ने कि कुछ सुरक्षा की व्यवस्था की जाए--लेकिन उसने सदा इनकार कर दिया। उसने कहा, मुझे कौन मारने वाला है? जिनके लिए मैंने अपना जीवन लगाया, देश दिलवाया, वे मुझे मारेंगे? यह कोई सवाल ही नहीं है। मुझे किसी तरह की सुरक्षा, किसी तरह के गार्ड की कोई जरूरत नहीं है। मकान पर पुलिस वाले भी नहीं थे जिन्ना के।
लेकिन जैसे ही खबर पहुंची रेडियो से और उसके सेक्रेटरी ने आकर कहा कि गांधी को दिल्ली में गोली मार दी गयी, वह एकदम उदास हो गया, उठकर भीतर गया। सेक्रेटरी चकित हुआ, क्योंकि गांधी की मृत्यु से जिन्ना को खुश होना चाहिए, वे उदास हैं! वह भीतर गया और उसने कहा, आप उदास दिखते हैं! उन्होंने कहा, उदास दिखता हूं, जिंदगी एकदम खाली मालूम पड़ती है। इसी आदमी से तो सारा संघर्ष था।
और उसी दिन से जिन्ना के घर पर पहरा बैठ गया। क्योंकि जब गांधी मारा
जा सकता है, तो जिन्ना की क्या बिसात! लेकिन जिन्ना उससे ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहा फिर। अगर गांधी जिंदा रहते, जिन्ना भी जिंदा रहता। रस ही खो गया, जिंदगी का मजा ही चला गया। दुश्मन एक-दूसरे को जिलाते हैं।
तुम्हारे दुख में भी तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ होगा। इसीलिए लोग कहे चले जाते हैं कि दुख है, दुख है, फिर भी तुम किए चले जाते हो। कहीं कुछ रस होगा उसमें। तुम्हारे दुख में से भी कोई तरह की सुख की किरणें आ रही होंगी।
अगर तुम स्त्री हो और एक पति या प्रेमी तुम्हारे प्रेम में पड़ गया, क्योंकि तुम दुर्बल हो, कमजोर हो, बीमार हो, तो तुम स्वस्थ न हो सकोगी। क्योंकि स्वास्थ्य का अर्थ होगा, यह पति गया। यह फिर कोई और बीमार औरत खोजेगा, जिस पर यह दया कर सके, प्रेम कर सके, सहानुभूति कर सके, अस्पताल ले जा सके और जिसके आसपास यह मसीहा बन सके कि देखो, मैं इसको बचा रहा हूं, उद्धार कर रहा हूं।
ऐसे लोग हैं जो वेश्याओं से शादी करते हैं। उद्धार करना है। शादी- वादी का कोई बड़ा मामला नहीं है। शादी से वेश्या का क्या लेना-देना है। लेकिन वेश्या का उद्धार करना है। लेकिन उनकी बड़ी तकलीफ है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जिन्होंने वेश्याओं से शादी की और शादी के बाद मुश्किल में पड़ गए, क्योंकि फिर वेश्या वेश्या न रही। पहले उसका उद्धार कर लिया, मजा उद्धार करने में था। फिर वेश्या पत्नी हो गयी, बस मजा चला गया। वह दूसरी वेश्या के पीछे पड़ गया। अब वह पत्नी चिल्लाती है, रोती है कि तुमने मुझसे विवाह किया, मेरा उद्धार किया, अब तुम छोड़कर क्यों जाते हो? उसको भी समझ में नहीं आता कि मामला क्या है।
मामला बिल्कुल सीधा है, गणित का है। जब तक वह वेश्या थी, तभी तक उनका
रस था। जैसे ही वह वेश्या नहीं रही, रस खतम हो गया। साधारण औरत हो गयी। ऐसी साधारण औरतें तो बहुत थीं। अब अगर उनका रस कायम रखना हो, तो उस पत्नी को वेश्या बने ही रहना चाहिए; तो वे उद्धार करते रहें, काम जारी रहे। दुख में हमारे न्यस्त स्वार्थ हैं।
मुझसे लोग कहते हैं कि हम दुख से मुक्त होना चाहते हैं, लेकिन मैं गौर
से देखता हूं तो मुझे मुश्किल से कोई आदमी दिखायी पड़ता है, जो वस्तुतः दुख से मुक्त होना चाहे। कहते हैं वे। कहते हैं, कहने में रस है। दुख से मुक्त होने में रस नहीं है, दुख से मुक्त होना चाहते हैं, यह दिखलाने में रस है-- कि हम दुख से मुक्त होना चाहते हैं। इसका मजा ले रहे हैं। लेकिन दुख से तुम

मुक्त होना चाहो तो तुम्हें कौन दुखी रख सकता है? कोई उपाय नहीं है इस संसार में किसी व्यक्ति को दुखी रखने का, अगर वह मुक्त होना चाहता है। लेकिन वह मुक्त होना नहीं चाहता। क्योंकि उसकी सारी सहानुभूति खो जाएगी। तुम अपना निरीक्षण करो, छोटी सी बीमारी हो जाती है, तुम बड़ा करके बताते हो। तुम इसे ख्याल करना। जरा सा सिरदर्द हो जाता है, तुम ऐसा समझते हो कि सारा पहाड़ टूट पड़ा, हिमालय तुम्हारे ऊपर टूट पड़ा। तुम इतना बढ़ा- चढ़ाकर क्यों बताते हो? क्योंकि जब तुम बढ़ा-चढ़ाकर बताते हो तो दूसरे की आंखें सहानुभूति से भर जाती हैं। तुम सहानुभूति की भिक्षा मांग रहे हो। लोग अपने दुख की चर्चा करते फिरते हैं, एक-दूसरे से कहते फिरते हैं, मैं बहुत दुखी हूं। क्यों? दुख की चर्चा से क्या सार है? लोगों की आंखों में सहानुभूति आती है, प्रेम का थोड़ा धोखा हो जाता है। लगता है, लोगों को मुझ में रस है, मैं महत्वपूर्ण हूं। लोग मेरे दुख से दुखी हैं। मेरे दुख से मुझे छुटकारा दिलाना चाहते हैं।
तुम जरा गौर करो, तुम अपने दुख की चर्चा एक सप्ताह के लिए बंद कर दो। तुम चकित होओगे कि दुख की चर्चा बंद करते ही लोगों की सहानुभूति खो गयी। सहानुभूति खोने में ऐसा लगेगा कि जीवन की कोई संपदा खोयी जा रही है। तुम चकित होओगे कि जो लोग तुम्हारे मित्र थे, वे बदलने लगे। क्योंकि उनका रस सहानुभूति दिखाने में था। वे ऐसे लोग चाहते थे--दुखी, दीन--जिनके ऊपर सहानुभूति दिखाएं, मुफ्त का मजा ले लें। तुम्हारे संबंध बदल जाएंगे। तुम्हें नए मित्र बनाने पड़ेंगे। उनको नए बीमार खोजने पड़ेंगे।
तुम जरा सात दिन के लिए निरीक्षण करके देखो, मत करो दुख की चर्चा। तुम ऐसा करो, उलटा करो, सात दिन अपने सुखों की चर्चा करो। देखो, तुम्हारे दोस्त बदल जाएंगे। जो मिले उससे ही कहो कि अहा! कैसा आनंद आ रहा है! वह भी चौंकेगा कि अरे! कल तक सिर दर्द, पेट दर्द, कमर दर्द, यह, वह, पच्चीस बातें लाते थे!
मेरे पास लोग आते हैं। उनमें से नब्बे प्रतिशत झूठ होता है। मैं यह नहीं कहता कि वे झूठ जानकर बोलते हैं। ध्यान किया नहीं कि कमर में दर्द, कि सिर में दर्द, कि छाती में दर्द, कि पेट में दर्द, जैसे ध्यान से दर्द का कोई लेना-देना है! अगर मैं उनसे कहूं कि यह सब बकवास है, तो वे मुझसे नाराज होते हैं। मुझे कहना पड़ता है, कुंडलिनी जग रही है! वे बड़े प्रसन्न होते हैं। यही सुनने के लिए वे दर्द लेकर आए थे। कुंडलिनी जग रही है, अहा! वे कल और बड़ा दर्द बनाकर ले आएंगे। और ऐसा भी नहीं कि वे झूठ कह रहे हैं, ध्यान रखना, वे कल्पना इतनी प्रगाढ़ कर लेते हैं कि वह प्रतीत भी होती है कि है। बड़ा जाल है।
अगर मैं उनको उनके दर्द से मुक्त करूं, तो वे राजी नहीं हैं। क्योंकि दर्द में उनका न्यस्त स्वार्थ है। रोज मैं देखता हूं, अगर मैं किसी को कह देता हूं कि यह सब बकवास है, कुछ तुम्हें हो नहीं रहा, ख्याल है। वे मेरी तरफ ऐसे देखते हैं जैसे मैं दुश्मन हूं, उनसे मैंने कुछ छीन लिया है। सिर्फ दर्द ठीक नहीं हो रहा है, दर्द है नहीं, दर्द छीना, वे मेरी तरफ ऐसे देखते हैं कि मैं समझा नहीं, उनको कोई और गुरु तलाश करना पड़ेगा, जो कहे कि बिल्कुल ठीक हो रहा है। अगर मैं कह देता हूं कि बड़ी गहरी घटना घट रही है, तो दर्द एक तरफ, वे मुस्कुराने लगते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं।
तो दर्द में तुम सुख ले रहे हो, इसलिए दर्द है। तो बुद्धपुरुष कहते रहें कि पाप में दुख है, छोड़ो, तुम छोड़ोगे न। क्योंकि तुम्हें दुख में भी सुख है। और जब तक तुम वहां से न पकड़ोगे, तब तक बुद्ध-वचन तुम्हारे ऊपर ऐसे पड़ेंगे और निकल जाएंगे जैसे चिकने घड़े पर वर्षा होती है।
जरा जागो। अपने को पकड़ो रंगे हाथों, तुमने कैसा खेल अपने आसपास खड़ा कर लिया है! झूठी सहानुभूति मत मांगो। दुख के आधार पर प्रेम मत मांगो। क्योंकि दुख के आधार पर प्रेम मांगने से ज्यादा बड़ा आत्म-अपमान और कोई भी नहीं है। अगर प्रेम मांगते हो, तो आनंद के आधार पर मांगो। अगर प्रेम मांगते हो, तो स्वास्थ्य के आधार पर मांगो। अगर प्रेम मांगते हो, तो सौंदर्य के आधार पर मांगो। नकार के आधार पर प्रेम मत मांगो, अन्यथा तुम नकार होते चले जाओगे।

स्त्रियों ने सीख ली है वह कला बहुत। क्योंकि बचपन से उनको पता चल जाता है--सभी को पता चल जाता है--लेकिन स्त्रियां उसे ज्यादा सीख लेती हैं। उसके भी कारण हैं। बच्चों को पता चल जाता है कि जब वे बीमार होते हैं तब घरभर के ध्यान का केंद्र बन जाते हैं। बच्चा बीमार हुआ, बिस्तर पर लग गया, तो बाप भी आकर बैठता है दफ्तर से--चाहे कितना ही थका हो--सिर पर हाथ रखता है, पूछता है, बेटा कैसे हो? ऐसे कोई नहीं पूछता। जब वह ठीक रहता है, कोई सिर पर हाथ नहीं रखता। मां आकर पास बैठती है। घरभर तीमारदारी करता है। डाक्टर आता है। पड़ोस के लोग देखने आने लगते हैं। बच्चे को एक बात समझ में आ जाती है--जब भी प्रेम चाहिए हो, बीमार पड़ जाओ।
स्त्रियां इस कला में पारंगत हो जाती हैं। जब भी उनको प्रेम चाहिए, एकदम बीमार पड़ जाती हैं। तुम देखो, स्त्री भली-चंगी बैठी है, पति आया, एकदम सिर में दर्द हो जाता है। यह चमत्कार समझ में नहीं आता कि पति के आने से सिरदर्द का क्या संबंध है! और ऐसा भी नहीं कि वे झूठ बोल रही हों--मेरी बात ठीक से समझना--ऐसा भी नहीं कि वे झूठ बोल रही हैं। हो ही जाता है।
इतनी निष्णात हो गयी है कि खुद को भी झूठ में पकड़ नहीं पाती। पति का दर्शन हुआ कि सिरदर्द भी उठा। यह इतना स्वाभाविक हो गया है क्रम, क्योंकि सिरदर्द हो तो ही पति की सहानुभूति, नहीं तो वह अखबार लेकर बैठ जाता है। अखबार में छिपा लेता है अपने को। वह अखबार भी सब उपाय है। वह दिन में तीन दफे पढ़ चुका है उसी अखबार को। दफ्तर में भी वही काम करता रहा अखबार पढ़ने का, घर आकर भी उसी को पढ़ता है। वह अखबार पढ़ने के पीछे आड़ में अपने को छिपाता है कि बचूं किसी तरह! वह उसका छाता है।
लेकिन पत्नी के सिर में दर्द है तो अखबार रखना पड़ता है। सिर पर हाथ रखो, बैठो, दो सुख-दुख की बातें करो। अगर तुमने अपने दुख में किसी भी तरह का सुख लिया, तो तुम दुख से कभी बाहर न हो सकोगे। फिर तो तुमने नर्क में भी धन लगा दिया। वह तुम्हारा धंधा हो गया।
इसलिए जिस व्यक्ति को आत्मजागरण की यात्रा पर जाना हो, सबसे पहली और बहुत बुनियादी बात है कि वह अपने दुखों में किसी तरह का व्यवसाय न करे। अन्यथा दुख को छोड़ना असंभव है। फिर तो तुम उसे पैदा करना चाहोगे।
"मनुष्य यदि पुण्य करे तो उसे पुनः-पुनः करे, उसमें रत होवे; क्योंकि पुण्य का संचय सुखदायी है।"
गहन व्यथा के बाद हर्ष का नव नर्तन है
प्रसव पीर के पार नवल शिशु का दर्शन है
दुख छिपा है सुख की आड़ में। पाप सुख का आश्वासन देता है। पास गए, कांटा चुभता है, दुख मिलता है। ठीक इससे उलटी अवस्था पुण्य की है, सुख की है। पुण्य तुम्हें कोई आश्वासन नहीं देता। साधना का आवाहन देता है, आश्वासन नहीं देता। पुण्य कहता है, श्रम करना होगा, तपश्चर्या से गुजरना होगा, निखरना होगा। क्योंकि सुख इतना मुफ्त नहीं मिलता जितना तुमने पाप के आश्वासनों के कारण मान रखा है।
पाप कहता है, मिल जाएगा, तुम सुख पाने के अधिकारी हो, बस आ जाओ, जरा सी करने की बात है, कुछ भी करने की बात नहीं है वस्तुतः, सिर्फ मांगो और मिल जाएगा। पुण्य कहता है, करना होगा, अर्जित करना होगा, निखारना होगा स्वयं को, सुख ऐसे आकाश से नहीं उतरता, तुम्हारे भीतर के अंतर-भाव की क्षमता जब पैदा होती है, पात्रता जब पैदा होती है, तब उतरता है। मुफ्त नहीं मिलता। भीख में नहीं मिलता। श्रम से कमाना होता है। मूल्य चुकाना होता है। पुण्य कहता है, साधना। पाप कहता है, आश्वासन--सस्ते। वह कहता है, मुफ्त में, कुछ करने की बात ही नहीं; यह लो, हाथ भर फैलाओ, हम देने को तैयार हैं।
लेकिन तुम जरा सोचो, सुख जैसी बात इतनी मुफ्त में मिल सकती है? इतनी सस्ती मिल सकती है? जरूर कहीं कोई धोखा हो रहा है। हाथ खींच लो अपना। सुख पाने के लिए क्षमता अर्जित करनी होगी।
गहन व्यथा के बाद हर्ष का नव नर्तन है
पीड़ा से गुजरना होगा। क्योंकि पीड़ा निखारती है।
प्रसव पीर के पार नवल शिशु का दर्शन है

छोटा बच्चा पैदा होता है, नया जीवन का आविर्भाव होता है, तो मां बड़ी पीड़ा से गुजरती है। इस पीड़ा से बचना चाहो तो प्लास्टिक के बच्चे मिल सकते हैं। खिलौने रखकर बैठ जाओ, झुठला लो अपने को।
पर उन झूठों में समय व्यर्थ ही जाएगा, अवसर ऐसे ही खो जाएगा। क्षणभर
को पाप ऐसी प्रतीति करा देता है कि सुख मिल रहा है। इसलिए पुण्य की कसौटी यही है कि जो ठहरे, वही सच है। जो क्षणिक हो, वह धोखा है।
जिंदगी जामे-ऐश है लेकिन
फायदा क्या अगर मुदाम नहीं
अगर कोई ऐसा सपने जैसा सुख का प्याला सामने आता हो और हाथ पहुंच भी न पाएं और खो जाता हो, थिर न होता हो, तो फायदा क्या अगर मुदाम नहीं? तो इसे जीवन की कसौटी बना लेनी चाहिए कि जो ठहरे, जो रुके, जो शाश्वत बने, वही सुख है। जो क्षण को झलक दिखाए, सपने में उतरे और खो जाए, आंख खुलते ही ओर-छोर न मिले, वह सिर्फ धोखा है। वह मायाजाल है।
"मनुष्य यदि पुण्य करे तो पुनः-पुनः करे।"
जैसे पाप की पुनरुक्ति से स्वभाव बनता है, वैसे पुण्य की पुनरुक्ति
से भी स्वभाव बनता है। दुख को ज्यादा स्वभाव मत बनाओ। अन्यथा दुखी होते जाओगे। हां, अगर दुखी ही होने का तय किया हो, तब अलग बात! सुख को स्वभाव बनाओ। जितने सुख के अवसर आएं उनको खोओ ही मत, उनकी पुनरुक्ति करो। उनको बार-बार स्मरण करो, उनको बार-बार खींचकर ले आओ जीवन में फिर। सुबह को दोहराओ, रोशनी को पुनरुक्त करो, प्रभु की चर्चा करो। और जहां-जहां से सुख मिलता हो वहां-वहां बार-बार, दुबारा-दुबारा खोदो। ताकि तुम्हारी सारी ऊर्जा धीरे-धीरे सुख की दिशा में प्रवाहित होने लगे।
"जब तक पाप पकता नहीं--उसका फल नहीं मिलता--तब तक पापी पाप को अच्छा ही समझता है। लेकिन जब पाप पक जाता है, तब उसे पाप का पाप दिखायी देता है।" पाप का पता चलता है उसके फल में। पुण्य का भी पता चलता है उसके फल में। इसलिए जीवन को एक निरंतर शिक्षण समझो। जिन-जिन चीजों के फल पर तुम्हें सुख मिला हो, उन्हें दोहराओ। और जिन-जिन चीजों के फल पर तुम्हें दुख मिला हो, उनसे अपने को बचाओ। अगर क्रोध करके सुख मिला हो, दोहराओ, पुण्य है। अगर करुणा करके दुख मिला हो, बिल्कुल मत दोहराओ, पाप है। अगर देकर सुख पाया हो, दो। अगर कंजूस बनकर सुख पाया हो, रोको। इसको कसौटी समझ लो। लेकिन फल, परिणाम पर ध्यान रखो।
"जब तक पुण्य पकता नहीं--उसका फल नहीं मिलता--तब तक पुण्यात्मा भी पुण्य नहीं समझता है। लेकिन जब पुण्य पक जाता है, तब उसे पुण्य दिखायी पड़ता है।"
स्वभावतः, बीज को बोते हैं, समय लगता है। फल आते हैं, तभी पता चलता है, नीम बोयी थी कि आम बोए थे। बीज का निर्णय तो उसी दिन होगा जब फल लग जाएंगे। फिर कड़वे लगे, मीठे लगे, उससे ही निर्णय होगा। उससे तुम भविष्य के लिए शिक्षा लो। अगर कड़वे फल लगे हों, तो फिर दुबारा उन बीजों को मत बोओ। इतनी ही जिसे समझ में आ गयी, उसने बुद्धत्व की यात्रा पर पहला कदम रख दिया। जिसके पीछे हों गम की कतारें
भूलकर उस खुशी से न खेलो
जिसके पीछे हों गम की कतारें
भूलकर उस खुशी से न खेलो
क्योंकि वह खुशी सिर्फ दिखायी पड़ती है; पीछे से दुखों की कतार आ रही है। वह सिर्फ मुखौटा है।
"वह मेरे पास नहीं आएगा--ऐसा सोचकर पाप की अवहेलना न करे। जैसे पानी की बूंद-बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है, वैसे ही मूढ़ थोड़ा-थोड़ा संचय करते हुए पाप को भर लेता है।"
हम निरंतर ऐसे ही सोच-विचार में अपने को उलझाए रहते हैं--वह मेरे पास नहीं आएगा। क्रोध, लोभ, मोह, काम मेरे पास नहीं आएगा, दूसरों के पास जाता है--ऐसी अवहेलना न करे। क्योंकि इसी अवहेलना के द्वार से वह आता है।
एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी है अरब में कि ईश्वर ने तो बड़ी घोषणाएं की हैं संसार में कि मैं हूं--कुरान है, बाइबिल है, वेद हैं, उपनिषद हैं, गीता है--

जहां ईश्वर घोषणा करता हैः मामेकं शरणं व्रज; मेरी शरण आ, मैं हूं। कहानी कहती है, लेकिन शैतान ने अब तक एक भी शास्त्र नहीं लिखा और घोषणा नहीं की। अजीब बात है! क्या शैतान को विज्ञापनबाजी का कुछ भी पता नहीं? क्या शैतान को विज्ञापन के शास्त्र का कोई अनुभव नहीं? ईश्वर के तो कितने मंदिर, कितनी मस्जिदें, कितने गुरुद्वारे, कितने चर्च खड़े हैं। घंटियां बजती ही रहती हैं, विज्ञापन होता ही रहता है कि ईश्वर है। शैतान बिल्कुल चुप है। किसी ने शैतान से पूछा है कहानी में। उसने कहा कि हम जानते हैं। मेरी सारी खूबी इसी में है कि लोग मेरी अवहेलना करें। लोगों को पता न हो कि मैं हूं, तो मेरा काम सुविधा से चलता है। मैं उनकी बेहोशी में ही घात मारता हूं। उन्हें पता चल जाए कि मैं हूं, तो वे सजग हो जाएंगे। मेरा न होना ही मेरे लिए सुविधापूर्ण है। शैतान ने कहा, वस्तुतः मैंने अपने कुछ शागिर्द छोड़ रखे हैं, जो खबर फैलाते रहते हैं कि शैतान वगैरह कुछ भी नहीं। है ही नहीं। यह सब ख्याल है। मन का भ्रम है। आदमी का भय है। शैतान है नहीं। लोग निश्चिंत हो जाते हैं, मुझे सुविधा हो जाती है।
बुद्ध यह कह रहे हैं, "वह मेरे पास नहीं आएगा--ऐसा सोचकर पाप की अवहेलना न करे।"
क्योंकि तब तुम बेहोश हो जाते हो, जब अवहेलना करते हो। तब तुम सो जाते हो। जब तुम्हें पता है कि चोर आएगा ही नहीं, तुम निश्चिंत सो जाते हो। तुम्हारी निश्चिंतता में ही चोर के लिए सुविधा है।
जागे रहो! होश को जगाए रहो! दीए को जलाए रहो! क्योंकि एक-एक बूंद से जैसे घड़ा भर जाता है ऐसे ही छोटे-छोटे पापों से आदमी के पूरे प्राण भर जाते हैं।
"वह मेरे पास नहीं आएगा--ऐसा सोचकर पुण्य की अवहेलना न करे। जैसे पानी
की बूंद-बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है, वैसे ही धीर थोड़ा-थोड़ा संचय करते हुए पुण्य को भर लेता है।"
तो न तो पाप की अवहेलना करे कि मेरे पास नहीं आएगा, न पुण्य की अवहेलना करे कि मेरे पास नहीं आएगा। ऐसे लोग हैं, मैं उन्हें जानता हूं, अगर उनसे कहो--वे पूछते हैं, क्या हम शांत हो सकेंगे? मैं उनसे कहता हूं, निश्चित हो सकेंगे--वे कहते हैं, हमें भरोसा नहीं! हमें विश्वास नहीं आता कि हम शांत हो सकेंगे। अब उन्होंने एक दीवाल खड़ी कर ली। अगर तुम्हें भरोसा ही न आए कि तुम शांत हो सकोगे, तो तुम शांत होने की तरफ कदम कैसे उठाओगे? तुमने एक नकारात्मक दृष्टि बना ली। तुमने निषेध का स्वर पकड़ लिया। थोड़े विधायक बनो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, यह तो हमसे हो ही न सकेगा, यह असंभव है। असंभव? तुमने प्रयोग करके भी नहीं देखा है। संभव बनाने की चेष्टा तो करो पहले, हार जाओ तब असंभव कहना। तुमने कभी चेष्टा ही नहीं की, चेष्टा के पहले कहते हो असंभव है, तो असंभव हो जाएगा। तुम्हें तो कम से कम असंभव हो ही जाएगा, तुम्हारी धारणा ही तुम्हें आगे न बढ़ने देगी।
उत्साह चाहिए। भरोसा चाहिए। उल्लास चाहिए। श्रद्धा चाहिए कि हो सकेगा, तो होता है। क्योंकि अगर एक मनुष्य को हो सका, तो तुम्हें क्यों न हो सकेगा? बुद्ध को हो सका, तो तुम्हें क्यों न हो सकेगा?
जो बुद्ध के पास था, ठीक उतना ही लेकर तुम भी पैदा हुए हो। तुम्हारी वीणा में और बुद्ध की वीणा में रत्तीभर का फासला नहीं है। भला तुम्हारे तार ढीले हों, थोड़े कसने पड़ें। या तुम्हारे तार थोड़े ज्यादा कसे हों, थोड़े ढीले करने पड़ें। या तुम्हारे तार वीणा से अलग पड़े हों और उन्हें वीणा पर बिठाना पड़े। लेकिन तुम्हारे पास ठीक उतना ही सामान है, उतना ही साज है, जितना बुद्ध के पास। अगर बुद्ध के जीवन में संगीत पैदा हो सका, तुम्हारे जीवन में भी हो सकेगा।
इसी बात का नाम आस्था है।
आस्था का अर्थ यह नहीं है कि तुम भगवान पर भरोसा करो। आस्था का इतना
ही अर्थ है कि तुम भरोसा करो कि सुख संभव है, तुम भरोसा करो कि आनंद संभव है, तुम भरोसा करो कि मोक्ष संभव है। बिना प्रयोग किए असंभव मत कहो।

अवहेलना मत करो। क्योंकि एक-एक बूंद से फिर घड़ा भरता है--पुण्य का भी, पाप का भी।
मानी, देख न कर नादानी
मातम का तम छाया, माना
अंतिम सत्य इसे यदि जाना
तो तूने जीवन की अब तक
आधी सुनी कहानी
मानी, देख न कर नादानी
दुख है, माना। लेकिन अगर इसे ही तुमने सारा जीवन समझ लिया, तो तुमने सिर्फ आधी कहानी सुनी जीवन की। दुख है ही इसीलिए कि सुख हो सकता है। अंधेरा है ही इसीलिए कि प्रकाश हो सकता है। बेहोशी है ही इसीलिए कि जागरण हो सकता है। विपरीत संभव है।
मानी, देख न कर नादानी
मातम का तम छाया, माना
अंतिम सत्य इसे यदि जाना
तो तूने जीवन की अब तक
आधी सुनी कहानी
मानी, देख न कर नादानी
दुख है, लेकिन इसे तुम जीवन का अंत मत मान लेना। पाप है, लेकिन इसे तुम जीवन का अंत मत मान लेना। भटकन है, भटकाव है, लेकिन इसे तुम जीवन की अंतिम परिणति मत मान लेना। इसे तुम आत्यंतिक मत मान लेना। यह सब बीच की यात्रा है। नजर रहे लगी उस दूर मंदिर के शिखर पर, प्रकाशोज्ज्वल मंदिर के स्वर्ण-शिखर तुम्हारी आंखों से कभी ओझल न हों। कितने ही कांटे हों मार्ग पर, लेकिन संभावनाओं के फूल कभी तुम इनकार मत करना। क्योंकि कांटे नहीं रोकते, अगर संभावनाओं के फूल को ही तुमने इनकार कर दिया, तो तुम रुक जाओगे। और जहां भी तुम हो, दूर जाना है। जहां भी तुम हो, वहां पड़ाव हो सकता है; राह है, वहां रुक नहीं जाना है।
ओ मछली सरवर तीर की
यह कैसा प्यार कगार से
जो छूट चली मझधार से
तू किस याचक को दाता गुन
सुधि भूली गहरे नीर की
सुन, कहती लहर झकोर कर
तू अड़ी रह गयी यहीं अगर
जाएगा पल में ज्वार उतर
फिरते ही सांस समीर की
ज्वार आता है। मछली सागर की लहर पर चढ़ी किनारे पर आ जाती है। लेकिन ज्वार आ भी नहीं पाया कि उतरना शुरू हो जाता है। मछली अगर किनारे को ही पकड़कर रह जाए, तो मझधार से नाता छूट जाता है। और थोड़ी ही देर में, जैसे ही हवा का रुख बदलेगा, सागर तो उतर जाएगा वापस, तड़फती रह जाएगी मरुस्थल में-- रेत में तड़फती रह जाएगी। वैसी ही दशा मनुष्य की है।
ओ मछली सरवर तीर की
यह कैसा प्यार कगार से
जो छूट चली मझधार से
तू किस याचक को दाता गुन
सुधि भूली गहरे नीर की
सुन, कहती लहर झकोर कर
तू अड़ी रह गयी यहीं अगर
जाएगा पल में ज्वार उतर
फिरते ही सांस समीर की
बुद्धपुरुषों के वचन सिर्फ तुम्हें झकझोर कर इतना ही कहते हैं-- किनारे को पकड़ मत लेना, मझधार तुम्हारा गंतव्य है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
पैंतालीसवां प्रवचन

सुख या दुख तुम्हारा ही निर्णय

पहला प्रश्नः क्या मेरी नियति में सिर्फ विषाद की, फ्रस्ट्रेशन की एक लंबीशृंखला लिखी है?

तुम्हारे हाथ में है। लिखते जाओगे, तो लिखी रहेगी। विषाद कोई और तुम्हें नहीं दे रहा है, तुम्हारा चुनाव है। तुमने चुना है। आनंद भी कोई और नहीं देगा। तुम चुनोगे, तो मिलेगा। तुम जो खोज लेते हो, वही तुम्हारा भाग्य है।
थोड़ा समझें।
भाग्य की पुरानी धारणा कहती है, लिखा हुआ है; और किसी और ने लिखा है, तुमने नहीं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, भाग्य लिखा हुआ नहीं है, रोज-रोज लिखना पड़ता है। और किसी और के द्वारा नहीं, तुम्हारे ही हाथों से लिखा जाता है। यह हो सकता है कि तुम इतनी बेहोशी में लिखते हो कि अपने ही हाथ पराए मालूम होते हैं। यह हो सकता है, तुम इतनी अचेतन अवस्था में लिखते हो कि लिख जाते हो तभी पता चलता है कि कुछ लिख गया। तुम अपने को रंगे हाथ नहीं पकड़ पाते। तुम्हारे होश की कमी है। लेकिन कोई और तुम्हारा भाग्य नहीं लिखता है।
अगर कोई और तुम्हारा भाग्य लिखता है, तो सब धर्म व्यर्थ। फिर तुम क्या करोगे? तुम तो फिर असहाय मछली की तरह हो। फेंक दिया मरुस्थल में तो मरुस्थल में तड़पोगे, किसी ने डाल दिया जल के सरोवर में तो ठीक। फिर तो तुम दूसरों के हाथ का खिलौना हो, कठपुतली हो। फिर तो तुम मुक्त होना भी चाहो तो कैसे हो सकोगे? अगर भाग्य में मुक्ति होगी तो होगी, न होगी तो न होगी। भाग्य की मुक्ति भी क्या मुक्ति जैसी होगी? किसी को मुक्त होना पड़े मजबूरी में, तो मुक्ति भी परतंत्रता हो गयी। और कोई अपने चुनाव से नर्क भी चला जाए, कारागृह का वरण कर ले, तो अपना वरण किया हुआ कारागृह भी स्वतंत्रता की सूचना देता है।
मुक्ति कोई स्थान नहीं। कारागृह भी कोई स्थान नहीं। चुनाव की क्षमता में मुक्ति है। चुनाव की क्षमता न हो और आदमी केवल भाग्य के हाथ में खिलौना हो, तो फिर कोई मुक्ति नहीं। और अगर मुक्ति नहीं, तो धर्म का क्या अर्थ है! फिर तुमसे यह कहने का क्या अर्थ है कि ऐसा करो, कि पुण्य करो, कि जागो। जागना होगा भाग्य में तो जागोगे। न जागना होगा, सोए रहोगे। कोई और जगाएगा, कोई और सुलाएगा। तुम परवश हो।
लेकिन आदमी ने इस भाग्य की धारणा को माना था, क्योंकि उससे बड़ी सुविधा मिलती है। सुविधा यह मिलती है कि सारा उत्तरदायित्व हट जाता है। सारी जिम्मेवारी तुमने किसी और के कंधों पर रख दी। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारी बड़ी गहरी तरकीब है। तुम अपने परमात्मा के माध्यम से भी अपने को बचा लेते हो। तुम कहते हो, परमात्मा जो करवा रहा है, हो रहा है। करते तुम्हीं हो, होता वही है जो तुम कर रहे हो, चुनते तुम्हीं हो, बीज तुम्हीं बोते हो, फसल भी तुम्हीं काटते हो, लेकिन बीच में परमात्मा को ले आते हो, हल्के हो जाते हो। अपने हाथ में कुछ न रहा। जिम्मेवारी न रही, अपराध न रहा; पाप न रहा, पुण्य न रहा।
ऐसे असहाय बनकर तुम अपने को ही धोखा देते हो। मन की बड़ी से बड़ी तरकीब है, जिम्मेवारी को कहीं और टाल देना। और यह तरकीब इतनी गहरी है--आस्तिक भगवान पर टाल देता है, नास्तिक प्रकृति पर टाल देता है, कम्युनिस्ट इतिहास पर टाल देता है, फ्रायड अचेतन मन पर टाल देता है। कोई अर्थशास्त्र पर टाल देता है, कोई राजनीति पर टाल देता है, ये सब तुम्हारे एक ही तरकीब के जाल हैं। कोई कर्म के सिद्धांत पर टाल देता है। लेकिन टालने के संबंध में सभी राजी हैं। जिम्मेवारी हमारी नहीं है।
लेकिन तुम थोड़ा सोचो, जैसे ही तुमने जिम्मेवारी छोड़ी, तुमने आत्मा भी
खो दी। तुम्हारे उत्तरदायित्व में ही तुम्हारी आत्मा की संभावना है। अगर

तुम चुनाव कर सकते हो और मालिक हो, तो ही तुम्हारे जीवन में कोई गरिमा का आविर्भाव होगा, कोई प्रकाश जलेगा, कोई दीप जगेगा; अन्यथा तुम अंधकार ही रहोगे।
भाग्य से सावधान! भाग्य धार्मिक आदमी के मन की धारणा नहीं है।
तुम चौंकोगे, क्योंकि तुम धार्मिक आदमी को भाग्यवादी पाते हो। मैं तुम्हें फिर याद दिलाऊं, धार्मिक-अधार्मिक सभी भाग्यवादी हैं। भाग्य की उनकी व्याख्या अलग-अलग होगी। मार्क्स कहता है कि समाज निर्धारक है, व्यक्ति नहीं; धन की व्यवस्था निर्धारक है, व्यक्ति नहीं। व्यक्ति की आत्मा खो गयी। और मार्क्स नास्तिक है, आस्तिक नहीं; धार्मिक नहीं, अधार्मिक है।
अधार्मिक मन का मेरे लिए एक ही लक्षण है, वह अपनी आत्मा को स्वीकार नहीं करता। वह अपने से बचना चाहता है, अपने से छिपना चाहता है, जिम्मेवारी उठाने का साहस नहीं करता, कमजोर है, निर्वीर्य है।
भाग्य पर मत टालो। भाग्य तुम्हीं लिखते हो। भाग्य तुम्हारा ही हस्ताक्षर है। माना कि कल का लिखा तुम भूल गए, तुम्हारा होश कमजोर है। परसों का लिखा स्मरण में नहीं रहा। आज अपने ही अक्षर नहीं पहचान पाते हो।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, गौर से खोजो, तुम अपने हस्ताक्षर पहचान लोगे।
थोड़ी-बहुत बदल भी हो गयी होगी, तो भी बहुत बदल नहीं हुई है। और जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि यह दुख भी मैं ही बना रहा हूं, उस दिन तुम मालिक हुए, उस दिन तुम्हारे जीवन का वास्तविक प्रारंभ हुआ।
अब तुम्हारा चुनाव है। अगर दुखी होना चाहो, तो तुम चुनो। फिर मैं तुमसे कहता हूं, ठीक से ही चुनो। क्या थोड़ा-थोड़ा दुख! क्या बूंद-बूंद दुख! फिर सागर चुनो दुख के। फिर हिमालय रखो छाती पर दुख के। फिर डूबो नर्क में। लेकिन एक बार यह बात तय हो जाए कि तुम्हीं... तो फिर तुम दुख की ही फसल काटो। अगर वही तुमने निर्णय किया, अगर उसमें ही तुमने सुख पाया है, तो सही। लेकिन एक बात समझ लेना, भूलकर भी यह मत कहना कि किसी और ने नियति तय की है।
लेकिन जानकर तो कोई भी दुख चुनेगा नहीं। यही तो मजा है, जब तक तुम दूसरे पर टालते हो, तभी तक दुख को चुनोगे। जिस दिन तुम सोचोगे मेरा ही चुनाव है, कौन दुख को चुनता है? दुख को जानकर कब किसने चुना है? अनजाने भला चुन लो, हीरे-जवाहरात समझकर भला तुम सांप-बिच्छू तिजोड़ी में इकट्ठा कर लो, लेकिन सांप-बिच्छू समझकर कौन इकट्ठा करता है?
एक बार तुम्हें समझ में आ गया कि मैं ही निर्णायक हूं, मैं ही हूं मेरा भाग्य, मेरी नियति मेरा चुनाव है, उसी क्षण से दुख विदा होने लगेगा, उसी क्षण से तुम्हारे जीवन में सुख का प्रभात होगा, सुख का सूरज निकलेगा। और जब अपने ही हाथ में है, तो फिर थोड़ा-थोड़ा सुख क्या चुनना! फिर बरसाओ सुख के मेघ।
और मैं तुमसे कहता हूं, यह तुम्हारे निर्णय पर निर्भर है। और यह बहुत बुनियादी निर्णय है।
पूछा है, "क्या मेरी नियति में सिर्फ विषाद की एक लंबीशृंखला लिखी है?"
कौन लिखेगा विषाद की लंबीशृंखला तुम्हारे जीवन में? किसको पड़ी है? कौन तुम्हें दुख देने को उत्सुक है? अगर परमात्मा कहीं है, तो एक बात निश्चित है कि तुम्हें दुख देने को उत्सुक नहीं है। परमात्मा और दुख देने को उत्सुक हो! तो फिर शैतान और परमात्मा का भेद क्या करोगे? और ध्यान रखना, परमात्मा अगर तुम्हें दुख देने में उत्सुक हो, तो खुद भी दुखवादी होगा और दुख ही पाएगा। जो दुख लिखेगा दूसरों के जीवन में, वह अपने जीवन में भी दुख लिख लेगा। जो चारों तरफ दुख बरसाएगा, उस पर भी दुख के छींटे पड़े बिना न रहेंगे। और जो सबके जीवन में अंधेरा कर देगा, दीए फूंक देगा, उसे खुद भी अमावस में रहना पड़ेगा। यह भूल, अगर परमात्मा कहीं है, तो न करेगा।
यदि परमात्मा है, तो वह तुम्हारे जीवन में सुख चाहेगा, दुख नहीं चाह सकता। क्योंकि तो ही उसके जीवन में भी सुख की संभावना है। परमात्मा शब्द को हटा लो, पूरा अस्तित्व कहो। अस्तित्व भी तुम्हारे जीवन में सुख चाहेगा, क्योंकि तुम अस्तित्व के हिस्से हो। तुम्हारा दुख अंततः अस्तित्व के

कंधों पर ही पड़ेगा। अगर व्यक्ति दुखी हैं, अगर अंश दुखी हैं, खंड दुखी हैं, तो पूर्ण भी दुखी हो जाएगा।
तुम्हारे पैर में दर्द है, तो पैर में ही थोड़े ही दर्द होता है, तुममें दर्द हो जाता है। तुम्हारे सिर में दर्द है, तो सिर में ही थोड़े ही सीमित रहता है, तुम्हारे पूरे तन-प्राण पर फैल जाता है। तुम पूरे के पूरे ही उसके दुख को अनुभव करते हो। हम जुड़े हैं। यहां कोई भी दुखी होगा तो सारा अस्तित्व दुख से भरता है, कंपता है।
अस्तित्व की कोई आकांक्षा तुम्हें दुखी करने की नहीं है। अगर अस्तित्व की कोई आकांक्षा हो, तो तुम्हें महासुखी करने की होगी। फिर भी तुम दुखी हो। इसका एक ही अर्थ हो सकता है, तुम अस्तित्व से लड़ रहे हो, तुम अस्तित्व के विपरीत जा रहे हो, तुम नदी की धार से संघर्ष कर रहे हो। दुख का मेरे लिए एक ही अर्थ है कि तुम समझ नहीं पाए, तुम जीवन के विपरीत चल रहे हो, तुम दीवाल से सिर मार रहे हो, तुम्हें दरवाजा अभी भी सूझा नहीं। तुमने दीवाल को दरवाजा समझा है। तुम कंकड़-पत्थरों को रोटी समझ रहे हो।
नदी में या तो तुम तैर सकते हो नदी के विपरीत, तब तुम्हें नदी लड़ती हुई मालूम पड़ेगी कि तुमसे संघर्ष कर रही है। तब तुम्हें लगेगा कि नदी तुम्हारे विपरीत है, तुम्हारी शत्रु है। तुम नदी के साथ बह सकते हो। रामकृष्ण कहते थे, भक्त नदी में नाव छोड़ता है, तो पतवार नहीं रखता अपने पास, पाल खोल देता है। हवाएं जहां ले जाती हैं, उन्हीं के साथ चल पड़ता है। भक्त पाल खोलता है, पतवार नहीं।
तुमने पतवारें उठा रखी हैं। और तुम कुछ नदी से जद्दो-जहद कर रहे हो। हारोगे। क्योंकि पूर्ण से कौन कब जीता है! हारोगे तो विषाद आएगा। फिर विषाद आएगा, तो और भी जोर से लड़ोगे। जितने हारोगे, उतने जीत की पागल आकांक्षा पैदा होगी। जितनी पागल आकांक्षा होगी, उतने ज्यादा हारोगे। तुम एक दुष्ट-चक्र में पड़ गए।
फिर तुम्हें लगेगा कि विषाद ही विषाद मिल रहा है। और मजा यह है कि तुम्हारा अहंकार इसमें भी रस लेने लगेगा। तुम कहोगे, मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, मेरे जीवन में तो विषाद ही विषाद लिखा है। एक विषाद की लंबी कथा हूं। तुम इसके गीत गुनगुनाने लगोगे। तुम अपने दुख का भीशृंगार करोगे। तुम दुख का भी प्रदर्शन करने लगोगे। तुम दुख के कारण भी लोगों का ध्यान आकर्षित करोगे। तुम रोओगे, तुम चीखोगे-चिल्लाओगे, ताकि लोग तुम्हारे प्रति आकर्षित हों और कहें कि हां, तुम जैसा दुख किसी के पास नहीं देखा। तुम्हारा दुख बड़ा विशिष्ट है। तुम संताप, संत्रास से भरे हुए रहोगे। मैंने सुना है, एक कवि-सम्मेलन में आधुनिक कवि इकट्ठे हुए थे। सब संताप से भरे, संत्रास से भरे, दुखी, विषाद से भरे; जैसे सभी बोझ ढो रहे हैं भारी, जैसे सारा संसार उनके ऊपर टूट पड़ा है--रिरियाते, रोते। कवि-सम्मेलन के संयोजकों ने उनके चित्र उतारने की व्यवस्था की थी। फोटोग्राफर आया, उसने सबको बिठाया। और उसने कहा कि सुनिए, एक क्षण के लिए कृपा करके यह दुख, संताप, संत्रास चेहरे से जरा हटा लीजिए, फिर एक क्षण के बाद आप अपनी स्वाभाविक स्थिति में पुनः आ सकते हैं।
कुछ लोगों ने इसको स्वाभाविक स्थिति बना रखी है। दुख लिखे फिरते हैं। चेहरे पर दुख के साइनबोर्ड लगा रखे हैं। इसमें जरूर उन्हें कुछ लाभ होता है। सहानुभूति मिलती है। लेकिन यह बड़ी सस्ती सहानुभूति हुई।
कुछ और तरह से ध्यान आकर्षित करो। मुस्कुराकर आकर्षित करो। रोकर क्या आकर्षित किया! अगर लोगों की सहानुभूति चाहिए... प्रेम चाहो, सहानुभूति भी कोई मांगने की बात है?
इसे थोड़ा समझें।
सहानुभूति रुग्ण है। प्रेम स्वस्थ है। जब तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं मिलता, तब तुम सहानुभूति मांगने लगते हो। तब तुम सहानुभूति को ही प्रेम समझ लेते हो। तुमने खोटे सिक्के को असली बना लिया। जब तुम अपने सौंदर्य के कारण लोगों को आकर्षित नहीं कर पाते, तो तुम अपनी कुरूपता के कारण ही लोगों का ध्यान आकर्षित करने लगते हो। ध्यान तो आकर्षित करना ही है। अगर तुम्हारे स्वास्थ्य में लोग सम्मिलित नहीं हो पाते, तो तुम बीमार

पड़कर बीच रास्ते पर गिर जाते हो कि भीड़ तो इकट्ठी हो जाए। भीड़ इकट्ठी करने का मजा ऐसा है! किसी कारण से हो जाए, लेकिन तुम चाहते हो लोगों की आंखें तुम्हें देखें, तुम्हें विशिष्ट मानें। कुछ भी करने को आदमी तैयार हो जाता है।
यहां मैं देखता हूं, हजार तरह के लोग आते हैं। उनमें मैंने देखा, जो साधारणतः स्वस्थ हैं, सुंदर हैं, स्वाभाविक हैं, वे भी ध्यान को आकर्षित करते हैं, लेकिन उनकी व्यवस्था में रुग्णता नहीं होती। जो किसी तरह दुखी हो गए हैं, दुखी बना लिया है, कुरूप हो गए हैं, जिन्होंने प्रेम के सारे स्रोत खो दिए हैं, वे भी ध्यान आकर्षित करते हैं, लेकिन उनके ध्यान आकर्षित करने में बड़ा उपद्रव और कुरूपता होती है। हर उत्सव के दिन, दो-चार ऐसी कुरूप स्त्रियां हैं, जो शोरगुल मचाकर गिर ही पड़ेंगी! एक भी सुंदर स्त्री वैसा नहीं करती।
यह थोड़ा मैं सोचकर हैरान हुआ कि कुरूप स्त्रियां यह क्यों करती हैं? उन्हें कहीं और किसी तरह का आकर्षण उपलब्ध नहीं रहा। न वे नाच सकती हैं, न वे गा सकती हैं, न उन्हें प्रेम को पुकारने की और कोई समझ रही, पर कहीं शोरगुल मचाकर, छाती पीटकर रो तो सकती हैं, हाथ-पैर फैलाकर गिर तो सकती हैं। ऐसा भी नहीं कि वे जानकर कर रही होंगी। लेकिन यह हो रहा है। जाने-अनजाने कहीं इसमें भीतर रस है। इस भांति, एक बेहूदे ढंग से लोगों का ध्यान आकर्षित करने की आकांक्षा है।
जिनके जीवन में कुछ कला होगी, वे कला से लोगों का ध्यान आकर्षित कर लेंगे। जिनके जीवन में कुछ भी न होगा, वे अपराध करके ध्यान आकर्षित करेंगे।
मनस्विद कहते हैं कि बड़े कलाकार और अपराधियों में; सृजनात्मक पुरुषों में, राजनीतिज्ञों में, बहुत फर्क नहीं होता। फर्क यही होता है कि कोई बड़ा गीत लिखता है, उससे लोग आकर्षित हो जाते हैं। जो गीत नहीं लिख पाता, वह किसी की हत्या कर देता है, उससे भी अखबारों में नाम आता है, उससे भी प्रथम पृष्ठ पर नाम छपते हैं।
अमरीका के एक हत्यारे ने सात लोगों की हत्याएं कीं एक दिन में। अकारण। ऐसे लोगों को मारा जिनसे कोई परिचय भी न था। ऐसे भी लोगों को मारा जिनको उसने देखा भी नहीं था--न मारने के पहले, न मारने के बाद--पीठ के पीछे से आकर गोली मार दी। अजनबी आदमी, सागर के तट पर बैठा सागर को देख रहा था, पीछे से आकर उसने गोली मार दी। अदालत में पूछा गया, यह तूने क्यों किया? उसने कहा कि मैं अखबार में प्रथम पृष्ठ पर अपना नाम देखना चाहता था।
इसकी आकांक्षा तो सोचो! राजनेता है--न गीत लिख सकता है, न मूर्ति बना सकता है, न गीत गा सकता है, न सितार बजा सकता है, न नाच सकता है--तो हड़ताल करवा देता है, जुलूस निकलवा देता है, अनशन करवा देता है। कुछ तो कर ही सकता है। उपद्रव तो कर ही सकता है। उपद्रव तो सुगम है। उपद्रव की लहर पर चढ़कर प्रमुख हो जाता है, महत्वपूर्ण हो जाता है।
ध्यान रखना, सृजनात्मक ढंग से अगर तुम प्रेम को आकर्षित कर पाओ, तो पुण्य है। अगर विध्वंसात्मक ढंग से तुमने लोगों का ध्यान आकर्षित किया, तो पाप है। किसी को नुकसान पहुंचाकर, किसी कुरूप और भोंडे ढंग से अगर तुमने लोगों की नजरें अपनी तरफ फेर लीं, तो तुमने कुछ अपना हित नहीं किया। तुम इससे और भी दुखी हो जाओगे और रोज-रोज तुम्हें अपने चेहरे पर और भी दुख की कालिमा पोत लेनी पड़ेगी। तुम्हारे दुख में तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ हो जाएगा।
धर्म की यात्रा पर निकले व्यक्ति को इसे एक बुनियादी सूत्र समझ लेना चाहिएः स्वस्थ को मांगना, अस्वस्थ को नहीं। क्योंकि अस्वस्थ को मांगोगे तो और अस्वस्थ हो जाओगे। सुंदर को चाहना, असुंदर को नहीं। असुंदर को एक बार मांगा, तो लिप्त होने लगोगे। उसी में तुम्हारा धंधा जुड़ जाएगा। प्रेम को मांगना, सहानुभूति को नहीं। प्रेम को मांगना हो, तो तुम्हें प्रेम के योग्य बनना पड़ता है।
इस फर्क को समझ लो।

प्रेम मुफ्त नहीं मिलता। प्रेम की योग्यता चाहिए। लेकिन सहानुभूति मुफ्त मिलती है, योग्यता की कोई जरूरत नहीं। तुम्हें अगर एक सुंदर पति चाहिए, तो योग्य होना पड़ेगा। लेकिन विधवा हो जाने के लिए कोई योग्यता की जरूरत है? तलाक पाने के लिए कोई योग्यता की जरूरत है? लेकिन अगर पति तुम्हें तलाक दे दे, तो सभी सहानुभूति देने आ जाएंगे। उनमें से कोई भी यह न पूछेगा कि सहानुभूति देने की जरूरत है? तलाकी गयी पत्नी को तो कोई भी सहानुभूति देता है। अगर तुम बीमार हो, तो कोई भी सहानुभूति दिखा देगा। बीमारी को कोई थोड़े पूछता है कि सहानुभूति दें या न दें? लेकिन अगर तुम स्वस्थ हो, तो ही कोई तुम्हारे स्वास्थ्य की प्रशंसा में दो शब्द कहेगा, कोई गीत गाएगा, तुम्हें देखकर कोई गुनगुनाएगा। परम स्वास्थ्य होगा तुम्हारे भीतर, तो ही किसी के भीतर धुन पैदा होगी।
प्रेम को पाना हो तो योग्यता चाहिए, सृजन चाहिए। सहानुभूति मुफ्त मिल जाती है, सहानुभूति के लिए कुछ भी नहीं करना होता।
तुमने कहानी सुनी होगी, बड़ी पुरानी कहानी है कि एक स्त्री ने कंगन बनवाए सोने के। वह हरेक से बात करती, जोर-जोर से हाथ भी हिलाती, कंगन भी बजाती, लेकिन किसी ने पूछा नहीं कि कहां बनवाए? कितने में खरीदे?
आखिर उसने अपने झोपड़े में आग लगा ली। जब वह छाती पीट-पीटकर रोने लगी
तब एक महिला ने पूछा, अरे, हमने कंगन तो तेरे देखे ही नहीं! उसने कहा कि नासमझ, अगर पहले ही पूछ लेती तो घर में आग लगाने की जरूरत तो न पड़ती। आज झोपड़ा जलता क्यों?
तुम हंसना मत। तुमने भी बहुत झोपड़े इसी तरह जलाए हैं, क्योंकि कंगन को कोई पूछ ही न रहा था। तुमने न-मालूम कितनी बार सिरदर्द पैदा किया है, बीमार हुए हो, रुग्ण हुए हो, उदास-दुखी हुए हो--घर जलाए--क्योंकि तुम्हारे सौंदर्य की कोई चर्चा ही न कर रहा था। तुम्हारी बुद्धिमानी की कोई बात ही न कर रहा था। तुम्हारी योग्यता का कोई गीत ही न गा रहा था। कोई प्रशंसा तुम्हारी तरफ आ ही न रही थी। कोई ध्यान दे ही न रहा था।
ये कहानियां साधारण कहानियां नहीं हैं। ये हजारों साल के मनुष्य के अनुभव का निचोड़ हैं। यह कहानी किसी ने गढ़ी नहीं है। इसका कोई लेखक नहीं है। यह निचुड़ी है। यह हजारों-हजारों साल के मनुष्य के अनुभव का निचोड़ है। इसे ख्याल रखना।
तुम पूछते हो, "क्या विषाद की लंबीशृंखला ही मेरे भाग्य में लिखी है?" ऐसा लगता है, विषाद में भी थोड़ा मजा ले रहे हो। लंबीशृंखला, विषाद, बड़े बहुमूल्य शब्द मालूम होते हैं। जैसे तुम कोई विशेष काम कर रहे हो। इस गंदगी में रस मत लो। अन्यथा यह गंदगी तुमसे चिपट जाएगी। रस से चीजें ज.ुड जाती हैं। फिर तोड़ना मुश्किल हो जाता है।
फिर अगर तुमने विषाद को ही अपना चेहरा बना लिया और इसी के आधार पर लोगों से सहानुभूति मांगी, लोगों का हृदय मांगा, प्रेम मांगा, तो फिर तुम इसे छोड़ कैसे पाओगे? क्योंकि तब डर लगेगा कि अगर विषाद छूटा, तो यह सब प्रेम भी चला जाएगा। यह सब सहानुभूति, यह लोगों का ध्यान, यह सब खो जाएगा। फिर तो तुम इसे पकड़ोगे। फिर तो तुम इसकी अतिशयोक्ति करोगे। फिर तो तुम इसे बढ़ाओगे। फिर तो तुम इसे बढ़ा-चढ़ाकर दिखाओगे। फिर तो तुम इसे गुब्बारे की तरह फैलाओगे और तुम शोरगुल भी खूब मचाओगे कि मैं बड़ा दुखी हूं, मैं बड़ा दुखी हूं।
लेकिन तुम कभी ख्याल करो। जब लोग दुख की चर्चा करते हैं, तुम जरा उनका ख्याल करना। वे क्या कहते हैं, उस पर उतना ध्यान मत देना; कैसे कहते हैं, उस पर ध्यान देना; तुम पाओगे, वे रस ले रहे हैं। उनकी आंखों में तुम चमक पाओगे। तुम पाओगे, उन्हें भीतर एक गर्हित सुख मिल रहा है।
जब लोग अपने दुखों का लोगों से वर्णन करने लगते हैं, तब तुम देखो, उनके जीवन में कैसी चमक आ जाती है। वे बड़े कुशल हो जाते हैं वर्णन करने में।
लुत्फ ले-लेकर कहने लगते हैं। और अगर तुम उनकी बातों में रस न लो, तो वे दुखी होते हैं। अगर तुम उनकी बातों में रस न लो, तो तुम पर नाराज होते हैं।
वे तुम्हें कभी क्षमा न कर पाएंगे।

दूसरों की फिकर छोड़ दो, अपने पर तो ख्याल रखना कि जब तुम अपने दुख की चर्चा करो तो भूलकर भी किसी तरह का स्वाद मत लेना, अन्यथा तुम उसी दुख में बंधे रह जाओगे। फिर तुम चिल्लाओगे बहुत, लेकिन छूटना न चाहोगे। फिर तुम कारागृह में रहोगे, शोरगुल बहुत मचाओगे, लेकिन कारागृह के अगर दरवाजे भी खोल दिए जाएं तो तुम निकलकर भागोगे नहीं। अगर तुम्हें बाहर भी निकाल दिया जाए, तुम लौटकर पीछे के दरवाजे से वापस आ जाओगे। तुम्हारा कारागृह बहुत बहुमूल्य हो गया, अब उसे छोड़ा नहीं जा सकता। दुख में किसी तरह की संपत्ति को नियोजित मत करना। और जीवन में दोनों हैं। यहां कांटे भी हैं, फूल भी हैं। अब तुम्हारे ऊपर है कि तुम क्या चुन लेते हो।
देखूं हिमहीरक हंसते
हिलते नीले कमलों पर
या मुरझायी पलकों से
झरते आंसूकण देखूं?
सौरभ पी-पीकर बहता
देखूं यह मंद समीरण
दुख की घूंटें पीती या
ठंडी सांसों को देखूं?
कल रात एक जर्मन कवि हेनरिक हेन के संबंध में मैं पढ़ रहा था। हेनरिक हेन थोड़े से उन अदभुत सृजनात्मक कवियों में से एक हुआ, जिन्होंने जीवन के सौंदर्य के बड़े अनूठे गीत गाए हैं। वह जर्मनी के बहुत बड़े दार्शनिक--बड़े से बड़े दार्शनिक--हीगल से मिलने गया था। अमावस की अंधेरी रात थी और आकाश में तारे सुंदर फूलों की तरह फैले थे। वे दोनों खिड़की पर खड़े थे। और हेनरिक हेन ने तारों की प्रशंसा में एक गीत गाया भावविभोर होकर। उसके स्वर गूंजने लगे उस सन्नाटे में। और उसने उन तारों की प्रशंसा में बहुत सी बातें कहीं।
हीगल चुपचाप खड़ा सुनता रहा। और जब गीत बंद हो गया तो उसने कहा, बंद करो
यह बकवास। मुझे तो तारों को देखकर हमेशा श्वेत कोढ़ की याद आती है। आकाश का सफेद कोढ़। तुमने कभी सोचा? सफेद कोढ़!
हेनरिक हेन ने लिखा है कि मैं तो एक सकते में आ गया। यह प्रतीक मेरे ख्याल में भी कभी न आया था।
लेकिन सफेद कोढ़ की तरह भी देखे जा सकते हैं तारे। देखने वाले पर निर्भर है। अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए, तो सफेद कोढ़ को भी कोई चांदनी के फूलों की तरह देख सकता है। वह भी देखने वाले पर निर्भर है।
जगत में कोई व्याख्या नहीं है। जगत निर्व्याख्य है। व्याख्या तुम डालते हो। आकाश में तारे फैले हैं। कहो सफेद कोढ़, तो जगत इनकार न करेगा। कोई परमात्मा का हाथ न उठेगा कि गलती हुई तुमसे। कोई तुम्हें सुधारने, ठीक करने न आएगा। लेकिन ध्यान रखना, तारे तुम्हारे उस वक्तव्य के कारण कोढ़ न हो जाएंगे, लेकिन तुम कोढ़ से घिर जाओगे। जिसको आकाश के तारों में कोढ़ दिखायी पड़ेगा, वह चारों तरफ कोढ़ से घिर न जाएगा! उसके देखने का ढंग उसके जीवन को कुरूप न कर जाएगा! जिसको चांद-तारों में भी कोढ़ दिखायी पड़ता हो, फिर उसे सौंदर्य कहां दिखायी पड़ेगा? असंभव। उसके जीवन में कुरूपता ही कुरूपता होगी और वह चिल्ला-चिल्लाकर कहेगा कि जैसे मेरे भाग्य में विषाद लिखा है। यह तुमने ही लिख लिया। यह व्याख्या तुम्हारी है। चांद-तारों ने कहा न था कि हमारी ऐसी व्याख्या करो। चांद-तारों पर कोई भी व्याख्या नहीं लिखी है। निर्व्याख्य, अनिर्वचनीय तुम्हारे द्वार पर खड़े हैं, तुम व्याख्या देते हो।
वहीं हेनरिक हेन भी खड़ा उनकी स्तुति में गीत गा रहा था। उसके गीत ऐसे सुंदर हैं जैसे वेद की ऋचाएं। उसके गीतों में ऐसी महिमा है जैसे कभी-कभी थोड़े से ऋषियों के वक्तव्यों में होती है। मगर उस हेनरिक हेन की मौजूदगी भी हीगल को न डिगा सकी। वह खड़ा सुनता रहा। बड़ी बेचैनी से सुना होगा उसने यह गीत। बड़ी नाखुशी से सुना होगा यह गीत। बड़े विरोध से सुना होगा। बर्दाश्त किया होगा। शिष्टाचार के कारण सुना होगा। क्योंकि जिसको कोढ़ दिखायी पड़ता हो, उसको यह सब गीत झूठे मालूम पड़े होंगे।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम्हें विषाद मालूम पड़े तो थोड़ा सोचना, कहीं तुमने व्याख्या में भूल कर ली।
देखूं हिमहीरक हंसते
हिलते नीले कमलों पर
या मुरझायी पलकों से
झरते आंसूकण देखूं?
सौरभ पी-पीकर बहता
देखूं यह मंद समीरण
दुख की घूंटें पीती या
ठंडी सांसों को देखूं?
और मजा यह है कि तुम जो देखोगे, वह तुम्हें ही नहीं बदलता, वह तुम्हारे भविष्य को बदलता है, तुम्हारे अतीत को बदलता है। वह तुम्हें ही नहीं बदलता, तुम्हारे सारे अस्तित्व को, तुम्हारे सारे जगत को बदलता है। और एक बार तुम्हें देखने की कला आ जाए, तो तुम पाते हो, जहां से तुम्हें दुख मिलता था वहीं से सुख के झरने बहने लगे।
दुख से देखो जगत को, सारा जगत उदास मालूम होगा। सब तरफ मृत्यु लिखी मालूम होगी। सब तरफ मरघट फैला मालूम होगा। फिर चौंकाओ, जगाओ अपने को, फिर से आंखें खोलो, मुस्कुराकर, गीत गाकर, नाचकर जगत को देखो, तुम पाओगे, मरघट खो गया। इधर तुम नाचे क्या, उधर मरघट न रहा! सारा जगत तुम्हारे साथ नाचने लगा। रोओ, सारा जगत तुम्हारे साथ रोता हुआ मालूम होगा। हंसो, सारा जगत तुम्हारे साथ हंसता है। क्योंकि तुम्हारा दृष्टिकोण ही तुम्हारा जगत है। और तुम उसी जगत में रहते हो, जो तुम बनाते हो। तुम्हारे ही बनाए हुए जगत में तुम रहते हो। कोई तुम्हें जगत दे नहीं जाता, तुम प्रतिपल निर्मित करते हो।
चूमकर मृत को जिलाती जिंदगी
फूल मरघट में खिलाती जिंदगी
देखने की बात है। अन्यथा जिंदगी मरघट मालूम होती है! फिर देखने की ही बात है, मरघट भी जिंदगी मालूम होता है।
चूमकर मृत को जिलाती जिंदगी
फूल मरघट में खिलाती जिंदगी
और जब भी तुम्हें लगे कि विषाद आ रहा है, तब समझना कि तुम ला रहे हो, आ नहीं रहा है। तब झिटककर खड़े हो जाना, भाग खड़े होना, स्नान कर लेना, नाच लेना, मगर झड़क देना धूल की तरह विषाद को। तुम ला रहे हो, कोई पुरानी आदत सक्रिय हो रही है। तोड़ लेना अपने को बीच से ही। उस राग को मत दोहराओ बार-बार जो तुम्हें दुख से भर जाता है। कहीं ऐसा न हो कि राग तुम्हारा स्वभाव बन जाए। यहां न तो कोई सफलता है, न कोई विफलता। न कोई सुख, न कोई विषाद। सब तुम्हारे देखने के ढंग हैं। तरकीबें हैं आंखों की। सब तुम्हारे आंखों में बने हुए प्रतिबिंब हैं।
सफलता का एक कोई पंथ नहीं
विफलता की गोद में ही जीत है
हारकर भी जो नहीं हारा कभी
सफलता उसके हृदय का गीत है
तो तुम इसको नियति मत समझो। तुम्हारे प्रश्न से लगता है कि तुम चाहते
हो कि सील-मोहर लग जाए इस पर परमात्मा की--नियति है, भाग्य है। तुम अपने दुख की जिम्मेवारी परमात्मा पर मत छोड़ो। परमात्मा इनकार न करेगा, लेकिन तुम दुख में व्यर्थ दबे हुए सड़ोगे। और उससे मुक्त भी न हो सकोगे, क्योंकि तुम्हारी मान्यता यह है कि यह नियति है, भाग्य है।
मैं तुमसे कहता हूंः इसी क्षण, अभी--कल की भी कोई जरूरत नहीं है--तुम इसके बाहर हो सकते हो। होना चाहते हो, तो हो सकते हो। होना ही न चाहो, तो कोई उपाय नहीं। तुम्हारे विरोध में तुम्हारे जीवन में कुछ भी नहीं किया जा सकता। तुम्हारा सहयोग चाहिए।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम सुखी होना चाहते हैं। आप हमें रास्ता बताएं। मैं उनसे कहता हूं, रास्ता तो सुगम है। तुम होना चाहते हो,

यह पक्का कर लो। अगर तुमने होने का तय ही कर लिया है, तो बिना रास्ते के भी हो जाओगे। कौन किसको रोक पाया सुखी होने से? रास्ता भी बाधा नहीं बनेगा, रास्ते की भी जरूरत न रहेगी।
लेकिन अगर तुम होना ही न चाहो, और यह रास्ते की पूछताछ सिर्फ अपने दुख
की चर्चा करने का ही एक ढंग हो, यह रास्ते की पूछताछ अपने दुख का वर्णन करने का ही उपाय हो, यह रास्ते की पूछताछ मेरी सहानुभूति के लिए हो, तो फिर कोई उपाय नहीं है। तो फिर व्यर्थ रास्ते की चर्चा ही मत करो। तुम्हें जो वर्णन करना है कर दो, मैं सुन लूं। तुम अपने दुख की कथा कह दो। अगर सहानुभूति चाहते हो, तो दुख की कथा कहो, झंझट खतम हो। लेकिन अगर दुख को बदलना है, तो अड़चन नहीं है। मगर तुम्हारे विपरीत मैं कुछ भी न कर सकूंगा। तुम्हारे विपरीत कोई भी कुछ नहीं कर सकता है। तुम अपनी गहराई में अपने मालिक हो। इसलिए मैं तुमसे न कहूंगा कि विषाद तुम्हारे भाग्य में लिखा है। तुम लिख रहे हो। रोक लो हाथ।
और एक आखिरी बात इस संबंध में, कि जीवन कुछ ऐसा है, जैसे जल पर तुम कुछ लिखते हो--लिख भी नहीं पाते कि मिट जाता है। फिर कोई रेत पर कुछ लिखता है-- लिखता है, एकदम नहीं मिट जाता, हवा का झोंका आएगा, समय लगेगा, मिट जाएगा। फिर कोई पत्थर पर लिखता है--हवा के झोंके भी आते रहेंगे, सदियां गुजरेंगी और न मिटेगा। मैं तुमसे कहता हूं, जीवन कुछ पानी जैसा है। तुम लिखते ही रहो, लिखते ही रहो, लिखते ही रहो, तो ही अक्षर बने रहते हैं। तुम जरा रुको कि गए। जैसे कोई साइकिल चलाता है, पैडल मारता ही रहे तो चलती है। जरा पैडल रोक ले, थोड़ा-बहुत चल जाए पुराने आधार पर! बहुत सालों से चल रहे थे साइकिल पर बैठे, तो थोड़ी गति साइकिल में होगी, वह चल जाएगी; थोड़ा ढाल-ढलान होगा, चल जाएगी। मगर कितनी चलेगी? जल्दी ही गिर जाएगी।
प्रतिपल तुम अपने जीवन को बनाते हो, प्रतिपल बनाते हो। यह धंधा हर घड़ी
का है। तुम जिस दिन राजी हो गए रोकने को, अगर मन भर गया है विषाद से, अगर रस चुक गया है विषाद से, अगर विषाद के आधार पर सहानुभूति और ध्यान आकर्षित करने की इच्छा चली गयी है, तो मैं तुमसे कहता हूं, आज ही वह दिन है--घड़ी आ गयी--तुम बाहर हो जाओ।
तुम मत पूछो कि कैसे बाहर हो जाऊं? क्योंकि कैसे का कोई सवाल नहीं है। हंसकर बाहर हो जाओ। गीत गुनगुनाकर बाहर हो जाओ। झाड़ दो इस चेहरे पर पुरानी आदत को, कह दो कि बस हो गया बहुत, अब नहीं। और इस क्षण के बाद विषाद के आधार पर जो भी तुमने मांगा हो जीवन में, वह मत मांगना फिर। है भी नहीं, अपमानजनक है। विषाद के आधार पर सहानुभूति मांगना अपमानजनक है। रोकर आंसुओं के आधार पर किसी का प्रेम मांगना अपमानजनक है। मनुष्य की गरिमा के योग्य नहीं। सुंदर बनो, संगीत बनो, नृत्य बनो, सृजनात्मक बनो, फिर कोई तुम्हारे पास आकर प्रेम के फूल चढ़ा जाए, शुभ है। स्वीकार करना। रोकर, चीखकर, लोट-पोट कर, दुखी होकर, दूसरों को मजबूर मत करो कि सहानुभूति दिखाएं।
ध्यान रखना, जो भी आदमी सहानुभूति मांगता है, लोग उसे देते हैं, लेकिन उसे कभी क्षमा नहीं कर पाते। क्योंकि वह आदमी शोषक मालूम होता है। तो जो आदमी दुख की कहानी कहता है और तुम्हें उसके दुख में सहानुभूति दिखानी पड़ती है, वह रास्ते पर दिख जाता है, तुम गली से बचकर निकल जाते हो। कि आ रहा है फिर! उससे लोग बचते हैं, क्योंकि वह शोषण करता है। और अगर सहानुभूति न दो, तो ऐसा लगता है कि तुम कोई पाप कर रहे हो। सहानुभूति दो, तो ऐसा लगता है जबर्दस्ती तुमसे ली जा रही है, अकारण। न दो, तो लगता है कोई अपराध कर रहे हो।
नहीं, सहानुभूति मांगने वाले को कोई क्षमा नहीं करता। सहानुभूति मांगने वाले से लोग बचते हैं। उबाता है सहानुभूति मांगने वाला। इस तरह के गलत ढंग मत सीखो। इनसे सावधान होना जरूरी है।

दूसरा प्रश्नः भीतरी मसीहा के संबंध में कल आपने बहुत सूक्ष्म और गहरी बातें बतायीं। उसी संदर्भ की मेरी एक समस्या है। मैंने जिस लड़की से शादी की, वह शादी के पहले बहुत उदास रहती थी और मुझसे कहती थी कि वह इसीलिए उदास और दुखी है कि मैं उससे शादी नहीं करता। लेकिन शादी के बाद भी वह

आनंदित नहीं रहती और उदास व्यक्ति के साथ रहना मुझे असह्य मालूम पड़ता है। पत्नी को सुखी करने के लिए मैं क्या करूं?

बहुत सी बातें समझनी होंगी। पहली बात--जो उदास है, जो दुखी है, उसकी उदासी और दुख के कारण झुककर भूलकर भी कभी कुछ मत करना। क्योंकि उस भांति तुम उसकी उदासी और दुख की संभावना को बढ़ा रहे हो, घटा नहीं रहे हो।
जरा सोचो, कोई युवती ने तुमसे कहा कि उदास हूं, अगर तुम मुझसे शादी न करोगे तो मैं दुखी रहूंगी। तुम उसके दुख के कारण झुके, तुमने शादी कर ली। अब जिस दुख के कारण तुम उसे मिले, उसे वह कैसे छोड़ सकती है? थोड़ा सोचो, वह तो पति के त्याग जैसा त्याग हो जाएगा। जिस दुख से उसने तुम्हें पाया, उस दुख को तो वह सम्हालकर रखेगी। और तुमने दुख के लिए झुककर जिस अहंकार का मजा लिया, तुम भी पसंद न करोगे अगर वह सुखी हो जाए। मजा क्या मिला तुम्हें! यह विवाह कोई प्रेम का विवाह तो नहीं है। यह विवाह तो अहंकार का विवाह है। युवती दुखी थी, तुम्हें उसने उद्धारक होने का मौका दिया, समाज-सेवक होने का मौका दिया, महापुरुष होने का मौका दिया कि तुम कोई शरीर-चमड़ी के रूप-रंग के कारण विवाह नहीं कर रहे हो, उद्धार! तुम्हें बड़ा मजा दिया। तुम्हारे अहंकार को पुष्टि दी। प्रेम के कारण यह विवाह हुआ नहीं। तुमने सेवा की। तुम दुख के कारण झुके। तुमने सहानुभूति दिखायी। यह प्रेम नहीं है! और तुमने बड़ा मजा लिया कि देखो, कैसा त्याग कर रहा हूं!
कुछ लोग हैं, वे विधवाओं से विवाह करते हैं। जैसे उनके विवाह होने के लिए किसी का विधवा होना पहले जरूरी है। एक आदमी है, वह आया मेरे पास, वह कहने लगा कि विधवा से विवाह कर रहा हूं। मैंने कहा, विवाह ही काफी झंझट है, तू विधवा के पीछे क्यों पड़ा है? बोला कि नहीं, समाज-सुधारक हूं। और दो-दो पुण्य एक साथ उसने कहे--विवाह भी और विधवा का उद्धार भी! मैंने कहा, तू विवाह तो कर, विधवा वह अपने-आप हो जाएगी, तू फिकर क्यों करता है? एक काम तू कर, दूसरा वह कर लेगी।
विधवा से विवाह करने का रस? हां, कोई किसी विधवा के प्रेम में हो, बात अलग। लेकिन विधवा के प्रेम में कोई वैधव्य से थोड़े ही प्रेम में होता है। एक स्त्री के प्रेम में होता है, वह विधवा है या नहीं है, यह बात गौण है। इससे क्या लेना-देना है? जैसे कोई स्त्री डाक्टर है, या कोई स्त्री नर्स है, या शिक्षक है, इससे क्या लेना-देना है? ऐसे कोई विधवा है, या नहीं है विधवा, इससे क्या लेना-देना है?
लेकिन जो आदमी विधवा से ही विवाह कर रहा है, वह स्त्री से विवाह नहीं
कर रहा है, ख्याल रखना। अब बड़ी कठिनाई होगी, जैसे ही शादी हो जाएगी, विधवा विधवा न रह जाएगी। रस समाप्त। जिससे प्रेम किया था, वह तो बचा ही नहीं। विधवा से प्रेम था, विधवा के उद्धार में रस था, विवाह के बाद तो स्त्री विधवा नहीं रह जाएगी। रस का कारण ही गया।
भूलकर भी समाज-सुधारकों की मूढ़ता में मत पड़ना। समाज-सुधारकों ने जितनी मूढ़ता सिखायी है और जितने अनर्गल-प्रलाप की बातें कही हैं, उसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। उन्होंने कितने जीवन व्यर्थ बर्बाद किए हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कोई हरिजन से विवाह कर रहा है। प्रेम के कारण विवाह हो--हो सकता है प्रेम हरिजन से हो जाए, यह गौण बात है--लेकिन हरिजन से विवाह! कि हम तो शूद्र से ही विवाह करके रहेंगे। तो ऐसा लगता है, जैसे कि उसकी शूद्रता तुम्हारे प्रेम से ज्यादा महत्वपूर्ण है। ऐसा लगता है कि प्रेम से ज्यादा महत्वपूर्ण कोई धारणा है, सामाजिक धारणा--शूद्र के साथ विवाह!
तुमने विवाह किया एक दुखी लड़की से, क्योंकि तुम सोचते थे दुख से उसे उबार लोगे। लेकिन विवाह के साथ ही तुम्हारा भी रस समाप्त हो जाएगा, क्योंकि उबारने का काम खतम हो गया। अब कोई मजा नहीं आएगा, रोज-रोज तो उबार नहीं सकते। विवाह हो गया एक दफे, हो गया। अब तुम किसी दूसरी युवती को उबारना चाहते होओगे दुख से। दुखी तो बहुत हैं।
और स्त्रियों को यह गणित समझ में आ गया है कि यह पुरुषों में बड़ा उद्धारक-भाव है। मूढ़तापूर्ण है, मगर है। क्योंकि पुरुष का मूल स्वभाव

अहंकारी है। तो स्त्रियां उसके सामने रोती हैं, दुखी होती हैं, पैर पड़ती हैं कि हम तो मर जाएंगे तुम्हारे बिना--कोई मरता-करता नहीं--तुम्हारे बिना जी ही न सकेंगे। पुरुष को बड़ा मजा आ जाता है कि देखो, एक स्त्री मेरे बिना जी ही नहीं सकती। मेरे बिना मर जाएगी। इतनी दुखी हो रही है कि जहर खा लेगी। तुम्हारे अहंकार को रस आया। स्त्री ने तुम्हारे अहंकार का शोषण कर लिया। तुमने उसके दुख का शोषण किया, उसने तुम्हारे अहंकार का शोषण किया; यह कोई प्रेम का नाता नहीं है। यह नाता बिल्कुल बाजारू है। इस नाते में कभी फूल खिलने वाले नहीं हैं।
फिर अगर स्त्री अब दुखी न रह जाए, तो खतरा खड़ा होगा। दुखी तो उसे रहना
ही पड़ेगा अब। जिस दुख ने ऐसे आड़े वक्त साथ दिया, वह दुख तो जीवनभर की संपदा हो गयी। और तुम भी प्रसन्न न होओगे, अगर वह प्रसन्न हो जाए, मैं तुमसे यह कहता हूं। तुम्हारी प्रसन्नता भी इसी में है कि वह दुखी बनी रहे और तुम उसका उद्धार करते ही रहो। रोज-रोज चले यह काम।
निश्चित ही, तुम चाहते हो कि वह प्रसन्न हो जाए। तुम्हारी चाह, जरूरी नहीं है कि तुम्हारी आंतरिक चाह हो। तुम उसे प्रसन्न देखना चाहते हो, लेकिन फिर से सोचो, अगर वह प्रसन्न हो जाए, सच में ही प्रसन्न हो जाए, तो शायद तुम उदास हो जाओ। क्योंकि तुम्हारा उद्धारक, तुम्हारा अहं-भाव तृप्त न होगा इस बात से कि वह प्रसन्न हो जाए। चाहना एक बात है, वस्तुतः चाहना बिल्कुल दूसरी बात है।
अब तुम कहते हो, "शादी के बाद भी दुखी रहती है, शादी के बाद भी आनंदित नहीं रहती।"
शादी से आनंद का क्या संबंध है? जो आनंदित रहना जानता है, वह शादी में
भी आनंदित रहता है, शादी के बाद भी आनंदित रहता है। जो आनंदित रहना नहीं जानता, शादी से क्या लेना-देना? शादी से आनंद का संबंध क्या है?
तुम कभी सोचो भी तो कैसी बचकानी आकांक्षा आदमी करता है। सात चक्कर लगा लिए, बैंड-बाजा बजा, मंत्र उच्चार हुए, वेदी सजी, पूजा-पाठ हो गया, इससे आनंदित होने का क्या संबंध है? आनंद से इसका कौन सा कीमिया, कौन सा रासायनिक संबंध जुड़ता है? आनंदित होने का कोई भी तो तर्कगत संबंध नहीं है इन सब बातों से।
लेकिन समाज ऐसा मानकर चलता है कि लोग विवाहित हो गए, बस, फिर आनंद से रहने लगे। ऐसा सिर्फ कहानियों में होता है। इसलिए कहानियां विवाह के आगे नहीं जातीं। राजकुमारी, राजकुमार, और बड़ा चलता है... बड़ा झगड़ा-झांसा, शादी- विवाह। फिल्में भी वहीं खतम हो जाती हैं आकर--शहनाई बजने लगी, भांवर पड़ गए, फिर राजकुमार-राजकुमारी आनंद से रहने लगे। कहानी वहां खतम होती है जहां असली उपद्रव शुरू होता है। उसके आगे कहानी कहना जरा शोभायुक्त नहीं है। उसके बाद बात चुप ही रखनी उचित है।
विवाह से कोई आनंदित नहीं होता। आनंदित लोग विवाह करते हैं, वह बात अलग है। आनंदित लोग विवाह करें तो आनंदित होते हैं, विवाह न करें तो आनंदित होते हैं। आनंदित होना गुणधर्म है। आनंदित होना तुम्हारा जीवन-दृष्टिकोण है। आनंदित आदमी हर घड़ी में आनंद को खोज लेता है। जहां तुम्हें कुछ भी आनंद न दिखायी पड़ता हो, वहां भी खोज लेता है। अंधेरी से अंधेरी रात में भी वह अपने आनंद के छोटे-मोटे दीए को जला लेता है। अगर तुम दुखी हो, तो भरी दोपहरी भी तुम आंख बंद करके अंधेरे में हो जाते हो।
आनंद का कोई संबंध बाहर की परिस्थितियों से नहीं है। विवाह बाहर की परिस्थिति है। सामाजिक व्यवस्था है। इससे तुम्हारे अंतस-चेतना का कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए तुमने अपेक्षा की, वह भूल भरी थी।
और स्त्री ने गांधीवादी ढंग का उपाय किया। स्त्रियां पुरानी गांधीवादी हैं। वे दुखी होकर तुमको सताने की व्यवस्था खोज लेती हैं। गांधी ने कोई नयी बात नहीं खोजी। गांधी की अहिंसा पुराना स्त्रैण रास्ता है। स्त्रियां सदा से अनशन करती रही हैं। जब झगड़ा हो गया पति से, अनशन कर दिया। बीमार होकर पड़ गयीं। पति को झुकना पड़ा है। क्योंकि स्त्री यह कहती है, हम तुम्हें कष्ट न देंगे, अपने को कष्ट देते हैं। अब अपने को कष्ट देना दूसरे को सताने की सबसे सुगम व्यवस्था है। तुम दूसरे को कष्ट दो तो वह

बचाव भी कर ले, भाग खड़ा हो, सुरक्षा कर ले, ढाल-तलवार ले आए--कुछ तो कर ले। लेकिन तुम दूसरे को कष्ट ही नहीं देते, तुम कहते हो, हम भूखे मर जाएंगे, हम अनशन करते हैं, उपवास करते हैं। स्त्रियां पति को मारना चाहें तो खुद को पीट लेती हैं। पति को मारें तो बचाव भी कर ले। लेकिन खुद को मार लेती हैं, बचाव का कोई उपाय नहीं। पति को अपराधी अनुभव करवा देती हैं।
अब पति के मन में एक चोट लगती है कि मैंने काहे को ऐसा किया! ठीक और गलत
की तो बात ही खतम हो गयी। मैंने ठीक किया या गलत किया, यह तो सवाल ही न रहा। अब तो सवाल यह रह गया कि मैंने जो किया वह न करता तो अच्छा था। क्योंकि यह पत्नी नाहक दुखी हुई, अब यह मारेगी--भूखी रहेगी, खाएगी नहीं, बच्चों को पीटेगी, सामान तोड़ेगी--अब इसमें कुछ सार न रहा। और अब यह एकाध दिन का मामला नहीं है। छोटी सी घटना स्त्रियां कई दिन तक खींचती हैं।
तो पति धीरे-धीरे यह समझ लेता है कि आत्मा की शांति के लिए यही उचित है
कि जो पत्नी कहे, मान लो। क्योंकि इतना लंबा खिंच जाता है मामला कि उसमें कोई अनुपात ही नहीं मालूम होता।
अंबेडकर के खिलाफ गांधी ने उपवास किया। अंबेडकर ने माना नहीं कि गांधी जो उपवास कर रहे हैं, वह ठीक है। लेकिन सारे मुल्क का दबाव पड़ा कि गांधी अगर मर जाएं... वह तो बात ही खतम हो गयी कि ठीक और गलत कौन है, वह तो मसला ही बदल गया; यह तो सवाल ही न रहा कि अंबेडकर ठीक हैं कि गांधी ठीक हैं, अब तो सवाल यह हो गया कि गांधी की जिंदगी बचानी है। अंबेडकर बहुत चिल्ला- चिल्लाकर कहता रहा कि यह तो बात ही नहीं है। बात तो यह है कि जो मैं कह रहा हूं वह ठीक है, या गांधी जो कह रहे हैं वह ठीक है। पर लोगों ने कहा, यह पीछे सोच लेंगे, अभी तो जान का सवाल है। अभी तो गांधी की जान बचानी है। आखिर में अंबेडकर को भी नींद हराम होने लगी, उसे भी लगा कि यह बूढ़ा मर जाएगा तो सदा के लिए कलंक मेरे सिर लग जाएगा कि मैं नाहक जिद्द किया, अपराधी-भाव अनुभव होने लगा।
यह बहुत पुरानी तरकीब है स्त्रैण। इसमें कुछ भी गौरवपूर्ण नहीं है।
यह हिंसा से भी बदतर है। क्योंकि हिंसा में कम से कम दूसरे को तुम सुरक्षा का, लड़ने का मौका तो देते हो, इसमें तो तुम मौका ही नहीं देते। इसमें तो तुम दूसरे को बिल्कुल असहाय कर देते हो। दूसरे से सब छीन लेते हो उसकी सामर्थ्य। और तुम अपने को इतना दीन-दुखी करने लगते हो कि दूसरे के मन में अपराध की भावना गहन होने लगती है। अपराध की भावना के कारण वह झुक जाता है। तो जिस स्त्री ने तुम्हें दुख के कारण झुका लिया--कि मैं दुखी रहूंगी अगर तुमने शादी न की--तुम हिंसा के सामने झुक गए। यह हिंसा अहिंसात्मक मालूम होती है, है नहीं। यह हिंसा से भी बदतर हिंसा है। क्योंकि इसमें दूसरे को बड़े सूक्ष्म और चालाक उपायों से दबाने की व्यवस्था है।
अब तुम शादी के बाद सोच रहे हो वह प्रसन्न हो जाए। अब तो वह प्रसन्न नहीं हो सकती। उसने तुम्हें झुकाया, उसका तकनीक काम कर गया, उसका सत्याग्रह काम कर गया। अब तो यह सत्याग्रह छोड़ा नहीं जा सकता। अब तुम लाख कहो, अब तो उसने एक तरकीब सीख ली तुम पर सत्ता चलाने की। विवाह तुम नहीं करना चाहते थे, वह भी करवा लिया। अब तो तुमसे कुछ भी करवाया जा सकता है। जो भी तुम नहीं करना चाहते, वह भी करवाया जा सकता है, क्योंकि नहीं तो वह दुखी रहेगी। दुख में बड़ा नियोजन हो गया, स्वार्थ हो गया, निहित स्वार्थ हो गया। इससे कुछ उसके जीवन में लाभ नहीं होगा। उसका सारा जीवन दुख में बीत जाएगा। और तुमने दुख के लिए झुककर कोई उसका उद्धार नहीं किया, उसके सारे जीवन को नर्क में पड़े रहने के लिए मजबूर कर दिया।
इसलिए मैं कहता हूं, उद्धारक मत बनना। और भूलकर भी किसी भी तरह की हिंसा के सामने मत झुकना, अन्यथा तुम दूसरे आदमी को गलत जीवन की दिशा पकड़ने का सहारा दे रहे हो।
अब तुम पूछते हो, "उदास व्यक्ति के साथ रहना मुझे असह्य मालूम पड़ता है। पत्नी को सुखी करने के लिए मैं क्या करूं?"
तुम्हारा आखिरी सवाल बताता है कि अब भी तुम्हारी बुद्धि में कोई समझ नहीं आयी। अभी भी तुम पूछते हो, पत्नी को सुखी करने के लिए मैं क्या करूं? इसी के लिए तो विवाह किया था। अभी तुम वहीं के वहीं खड़े हो, तुम्हारी

बुद्धि में कोई विकास नहीं हुआ। विवाह भी इसीलिए किया था कि इसको कैसे सुखी करूं, अब भी तुम पूछ रहे हो, इसको सुखी करने के लिए क्या करूं? तब तो तुम इसको दुखी ही करते जाओगे।
तुम खुद सुखी होने की कोशिश करो। इस जगत में कोई किसी को कभी सुखी नहीं कर पाया है। हां, अगर तुम सुखी हो जाओ, तो तुम्हारे पास ऐसी हवा बनती है कि कुछ लोग उस हवा में सुखी होना चाहें तो हो सकते हैं। तुम कर नहीं सकते किसी को सुखी। वहीं तुम्हारे गणित की भूल है। तुमने पहले यह पत्नी दुखी थी--पत्नी न थी--सुखी करने के लिए विवाह किया। अब तुम पूछते हो, अब क्या करूं?
तुम जो भी करोगे इसे सुखी करने के लिए, यह और दुखी होती जाएगी, क्योंकि तुम और इसके गुलाम होते चले जाओगे। तुम कृपा करके सुखी हो जाओ। तुम इससे कह दो कि तू मजा कर तेरे दुख में, अगर तुझे दुख में ही मजा लेना है। हम सुख में मजा लेंगे। जब पत्नी रोए, तब तुम गाओ और नाचो। उसको अकल आने दो खुद ही कि अब कोई सार नहीं है दुखी होने का। यह आदमी तो अब अपने से ही नाचने लगा! यह अपने से खुश होने लगा!
अगर तुम उसके दुख को सच में ही मिटाना चाहते हो, सुखी हो जाओ। तुम्हारे सुखी होने से ही उसे संभावना पैदा होगी कि वह भी सोचे कि अब बहुत हो गया यह दुख का खेल, इससे कुछ पाया नहीं। और जिस पति को मैं समझती थी कब्जे में है दुख के कारण, वह भी अब दुख के कारण कब्जे में नहीं है, वह प्रसन्न होने लगा। अब अगर इस पति के साथ बने रहना है, तो प्रसन्न होने के सिवाय कोई उपाय नहीं।
ध्यान रखो, तुम भी दुखी आदमी होओगे, अन्यथा कौन दुखी स्त्रियों में उत्सुक होता है! दुख दुख की तरफ आकर्षित होता है। अंधेरा अंधेरे के पास आता है। रोशनी रोशनी के पास आती है। गलत आदमी गलत आदमियों के पास इकट्ठे हो जाते हैं। मगर दूसरे की गलती दिखायी पड़ती है, अपनी दिखायी नहीं पड़ती। तुम भी दुखी आदमी हो, अन्यथा कौन दुखी स्त्री में उत्सुक होता है! समान समान को खींचते हैं, बुलाते हैं, तालमेल बन जाता है। तुम सुखी होना शुरू हो जाओ, इतना ही तुम कर सकते हो। कम से कम दो में से एक सुखी हो गया, पचास प्रतिशत क्रांति हुई। पचास का मैं तुमसे कहता हूं, होगी, वह भी अपने आप हो जाएगी।
एक बात तुम तय कर लो कि अब तुम अपने कारण सुखी रहोगे, किसी के कारण दुखी नहीं। और समझ लो कि कोई किसी को कभी सुखी कर नहीं पाया है। जितनी तुम चेष्टा करोगे सुखी करने की, उतने ही तुम गुलाम मालूम पड़ोगे। जितने तुम गुलाम मालूम पड़ोगे, दूसरा मजा लेगा। उसके हाथ में तुम्हारी बागडोर है। तुम पत्नी को कह दो कि अगर तुझे दुख में मजा है, तो मजे से तू दुख की तरफ जा, अब हमने तो तय किया है कि हम सुखी होंगे। अब दुख से हमने नाता तोड़ा, तू साथ आए तो शुभ, तू साथ न आए तो हम अकेले चलेंगे, लेकिन सुखी रहेंगे। तू गीत में कड़ी बन जाए तो ठीक। हम गाएं और तू ढपली बजाए तो ठीक, तू न बजाए तो हम बिना ढपली के ही गाएंगे, मगर अब गाने का तय कर लिया।
इस क्रांति से तुम पाओगे कि तुम्हारी पत्नी आज नहीं कल, फिर से पुनः विचार करेगी। दुख का धंधा व्यर्थ गया। तुमने जड़ें काट दीं। अब दुखी होने का कोई अर्थ नहीं। या तो वह बदलेगी अपने को, या किसी और दुखी पुरुष में उत्सुक हो जाएगी। वह भी सौभाग्य है। कोई और उद्धारक मिल जाएगा। तुम इतने क्यों घबड़ाते हो, उद्धारकों की कोई कमी नहीं है। या तो वह बदल लेगी, अगर उससे तुम्हारा सच में कोई लगाव है, अगर उसके मन में तुम्हारे लिए कोई भी प्रेम है, तो वह अपने को बदलेगी। प्रेमी सदा बदलने को तत्पर होते हैं। अगर कोई भी प्रेम नहीं, तो यह दुख का घृणित और रुग्ण नाता तो छूटेगा।
तो शायद वह किसी और को खोज लेगी, किसी और के साथ दुखी होने का रास्ता बना लेगी। कोई तुमने ही थोड़े ही दुख का ठेका लिया है? और भी बहुत हैं, जो तुमसे भी ज्यादा दुखी हैं। खोज ही लेगी किसी को।
पर मेरी दृष्टि में--बहुत लोगों पर प्रयोग करके मेरा ऐसा अनुभव है-- अगर दो में से एक भी सुखी होने लगे, तो दूसरे को सुखी होने का ख्याल आना शुरू हो जाता है। क्योंकि उसे लगता है, यह क्या पागलपन है?

तुम जड़ें काटो दुख की। दुख की जड़ काटने का पहला उपाय है कि तुम सुखी हो जाओ। अब अगर तुम कहो कि पहले पत्नी सुखी होगी तब हम सुखी होंगे, तो फिर तुम सुख की बात ही मत पूछो। तो पत्नी भी यही सोचती होगी, जब पति सुखी होगा तब हम सुखी होंगे। फिर तो यह कभी भी न होगा।
दूसरा बड़ा रहस्यपूर्ण है। और दूसरे के अंतरतम में प्रवेश का कोई उपाय नहीं है। आखिरी गहराई पर तो दूसरा अलग ही रह जाता है। तुम बाहर ही बाहर घूम सकते हो। दूसरे के सुख का भी पता लगाना कठिन है कि वह कैसे सुखी होगा। दूसरे का ही पता लगाना कठिन है कि वह कौन है?
मैं जीया भी दुनिया में और जान भी दे दी
यह न खुल सका लेकिन आपकी खुशी क्या थी
प्रेमी सोचते ही रहते हैं कि दूसरे की खुशी क्या थी? वह कुछ पता ही नहीं चल पाता। कई बार तो ऐसा होता है कि जो तुम सोचते हो कि अब पकड़ लिया तुमने सूत्र, यही दूसरे की खुशी है; जब तुम करते हो, तुम पाते हो, दूसरा फिर का फिर दुखी है। उसे कोई अंतर नहीं पड़ता। दूसरे को भी शायद ठीक-ठीक पता नहीं है कि कौन सी चीज उसे खुश कर पाएगी।
तुम अपने से ही पूछो, तुम्हें ठीक-ठीक पता है, किस आधार पर तुम प्रसन्न
हो सकोगे? अगर तुम ईमानदारी से सोचोगे, तो तुम खुद भी बिबूचन में पाओगे कि मुझे भी ठीक-ठीक पता नहीं है कि क्या होगा जिससे मैं खुश हो सकता हूं! न तुम्हें पता है, न दूसरे को पता है। लोग तो कोई भी बहाने खोजे चले जाते हैं। कहते हैं, अच्छा मकान होगा तो खुश हो जाएंगे। यह सिर्फ टालना है। यह सिर्फ अपने को समझाना है। फिर अच्छा मकान भी हो जाता है, लेकिन दुख में कोई अंतर नहीं पड़ता। छोटे मकान में दुखी थे, अब बड़े मकान में दुखी हो जाते हैं। धन नहीं था तो दुखी थे, धन होता है तो दुखी हो जाते हैं। ऐसे ही जिंदगी सरकती रहती है।
मेरे देखे, सुख के लिए कोई भी कारण नहीं है। तुम्हें बहुत कठिन होगा
यह समझना। कोई भी किसी कारण से सुखी नहीं होता, जो सुखी होना चाहता है अकारण सुखी होता है। वह कहता है, बस, हमने तय कर लिया अब सुखी होंगे; फिर झोपड़ी में भी सुखी होता है, महल में हो जाए तो महल में भी सुखी होता है। उसने तय कर लिया। सुख एक निर्णय है--कि हमने तय कर लिया कि सुखी होंगे। तुम पूछोगे, लेकिन कारण? कारण कोई भी नहीं है।
सुख हमारा स्वभाव है। निर्णय से ही हल हो जाता है। दुख तुम्हारा निर्णय है। सुख भी तुम्हारा निर्णय है। तुम जरा मेरी बात मानकर भी चलकर देखो।
तुम तय कर लो कि तीन महीने सुखी रहेंगे, फिर देखेंगे, बाद में सोचेंगे। तीन महीने एक प्रयोग कर लें कि निर्णय से सुखी रहेंगे। कुछ भी हो जाए, हम अपने सुख को न खोएंगे, पकड़-पकड़ लेंगे, बार-बार पकड़ लेंगे। छूट-छूट जाएगा हाथ से, फिर-फिर खोज लेंगे, फिर-फिर पकड़कर सम्हाल लेंगे। तीन महीने बिना कारण सुखी होंगे। तुम फिर कभी जिंदगी में दुखी न हो सकोगे। क्योंकि एक बार भी तुम्हें क्षणभर को भी यह पता चल जाए कि अकारण सुखी हुआ जा सकता है... !
सुख स्वभाव है, उसके लिए किसी कारण की कोई भी जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे भीतर बजता हुआ सितार है--बज ही रहा है--तुमने तरकीबों से अपनी आंखें और कान बंद कर लिए हैं। तुमने व्यर्थ की शर्तें बिठा रखी हैं कि ये- ये शर्तें पूरी होंगी, तब मैं सुखी होऊंगा। शर्तें पूरी हो जाएंगी, तुम पाओगे, फिर भी सुखी नहीं हुए। मन नयी शर्तें बना लेगा।
तो एक, वही केवल सुखी होता है इस जगत में, जो अकारण सुखी होता है। दो, दूसरे को सुखी करने की कोई सुविधा नहीं है। कैसे तुम दूसरे को सुखी करोगे? मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में कुछ विवाद हो रहा था। मैं मौजूद था, सुनता रहा। बात लंबी होती चली गयी। पत्नी भीतर गयी तो मैंने मुल्ला से कहा, व्यर्थ समय खराब कर रहे हो, राजी हो जाओ कि ठीक है। उसकी भी अक्ल में आया कि व्यर्थ इतना समय गया। पत्नी बाहर आयी, उसने कहा कि मैं बिल्कुल राजी, तू जो कहती है ठीक। उसने कहा, लेकिन मैंने अपना विचार बदल दिया।

क्या करोगे? जब तक तुम राजी होते हो, तब तक दूसरा विचार बदल देता है। क्या हाथ में, तुम्हारे बस में कहां है! फिर विवाद वहीं का वहीं खड़ा है। दूसरा जब तुमसे विवाद कर रहा है, तो यह मत सोचो कि विवाद में कोई सिद्धांतों की बात है। अहंकारों का संघर्ष है। दूसरा यह बर्दाश्त नहीं करता कि तुम इतने मालिक हो जाओ उसके कि तुम उसे सुखी कर दो। यह कोई बर्दाश्त नहीं करता। अपनी मौज से दुखी रहना भी लोग पसंद करते हैं, दूसरे के हाथ से सुखी होना भी पसंद नहीं करते। अहंकार को चोट लगती है।
तो जब तुम किसी को सुखी करने की कोशिश करोगे, वह तुम्हें हराकर रहेगा।
वह तुम्हें हजार तरह से समझाकर रहेगा कि देखो, कुछ भी नहीं हुआ। तुम्हारे सुखी करने की कोशिश में मैं और दुखी हो गया। तुम यह बात ही छोड़ दो। तुम उस दूसरे को कह दो कि तुम्हारी मौज। अगर तुमने यही तय किया है कि सुखी रहना है, तो सुखी; दुखी रहना है, दुखी। हम तुम्हें स्वीकार करते हैं, तुम जैसे हो, ठीक हो। हमने अपना तय कर लिया है।
और एक व्यक्ति भी अगर तय कर ले कि सुखी रहने का निर्णय मेरा पूरा है,
तो उसके आसपास एक हवा पैदा होती है, जिसमें दूसरे लोगों को भी सुख का संक्रामक रोग लगना शुरू हो जाता है।
तुम कहते हो कि "दुखी व्यक्ति के साथ रहना असह्य मालूम पड़ता है।"
तो सुखी हो जाओ। क्योंकि अंततः तो हम अपने ही साथ हैं, दूसरे के साथ नहीं हैं। अंततः कौन किसके साथ है? सब अकेले-अकेले हैं। तुम अगर दुखी हो, तो ही तुम दुखी व्यक्ति के साथ हो। तुम अगर सुखी हो, तो तुम सुखी व्यक्ति के साथ हो।
अब मेरे पास इतने दुखी लोग आते हैं। इससे मैं दुखी लोगों के साथ हूं, ऐसा मत समझना। इतने दुखी लोग मैं आकर्षित करता हूं, बुलाता हूं, पर इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। दुखी होंगे, वह उनकी मौज है। मेरे और उनके बीच में मेरा सुख है। उसके पार उनका दुख प्रवेश नहीं कर सकता।
मैं तुम्हारे दुख को समझता हूं। लेकिन तुम्हारे दुख के कारण दुखी नहीं हूं। मैं तुम्हारे आंसुओं को समझता हूं, चाहता हूं तुम्हारे आंख से आंसू सूख जाएं, लेकिन तुम्हारे आंसुओं के कारण मैं नहीं रोता हूं। मेरे रोने से क्या हल होगा! आंसू दुगुने हो जाएंगे। तुम्हारे आंख में आंसू न रह जाएं, इसके लिए जो कुछ भी मैं कर सकता हूं, वह करता हूं। लेकिन वह करना मेरे सुख से निकलता है, मेरे दुख से नहीं। मैं तुम्हारे कारण दुखी नहीं हूं, इसे तुम ख्याल रखना। मेरा सुख मेरे कारण है। वह अखंड है। उसमें तुम्हारे होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।
मेरे सुख के कारण ही मैं तुम्हारे दुख को दूर करने की चेष्टा में लगा रहता हूं। लेकिन तुम अगर दुखी बने ही रहो, तुम सुखी न हो सको, तो भी मैं दुखी नहीं होता। क्योंकि यह तुम्हारी स्वतंत्रता है। यह मेरी मौज है, मुझे मजा आता है कि तुम्हारी आंखों से आंसू उड़ जाएं और गीत खिल जाएं। यह मेरी मौज है। यह तुम्हारी मौज है कि तुम आंसुओं में रस लेना चाहते हो। मैं कौन हूं बाधा देने वाला! मैं अपना काम किए चला जाता हूं, तुम अपना काम किए चले जाओ। तुम मुझे हरा न सकोगे, क्योंकि मेरी जीत तुम पर निर्भर नहीं है। और यही दृष्टिकोण तुम्हारा हो सारे संबंधों में, तो ही तुम पाओगे कि जीवन एक नए आयाम में प्रवेश करता है--सुख के, महासुख के।

तीसरा प्रश्नः कहते हैं, जीवन के कुछ मूल्य हैं, जो देश-काल पर आधारित हैं और कुछ मूल्य शाश्वत हैं। क्या उन पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

शाश्वत तो सिर्फ जीवन का ही मूल्य है--स्वयं जीवन का--बाकी सब मूल्य सामयिक हैं। जीवन परम मूल्य है। उससे ऊपर कोई मूल्य नहीं। बाकी सब मूल्य जीवन केशृंगार हैं। सत्य या अहिंसा या करुणा या अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, वे सब जीवन का सौंदर्य हैं, जीवन काशृंगार हैं।
लेकिन जीवन से ऊपर कोई मूल्य नहीं है। जीवन है परमात्मा। जीवन है प्रभु। तो जिससे भी तुम ज्यादा जीवंत हो सको और जिससे भी तुम्हारा जीवन

ज्यादा प्रखरता को उपलब्ध हो, प्रकाश को उपलब्ध हो, वही शाश्वत मूल्य है। इसलिए शाश्वत मूल्य को कोई शब्द नहीं दिए जा सकते। उसको नाम नहीं दिया जा सकता। समय बदलता है, स्थिति बदलती है, मूल्य बदलते जाते हैं। पर एक बात ध्यान में रहे--जीवन जिससे बढ़े, विकसित हो, फैले, ऊंचा उठे।
जीवन की आकांक्षा गहनतम आकांक्षा है। उसी आकांक्षा से मोक्ष पैदा होता है, निर्वाण पैदा होता है। उसी आकांक्षा से परमात्मा की खोज, सत्य की खोज पैदा होती है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जीवन के विपरीत, जीवन के विरोध में बात करने वाले लोग भी--विपरीत भी बात करते हैं तो भी जीवन के लिए ही करते हैं।
यूनान में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ पिरहो। वह कहता था, जीवन में तब तक शांति न होगी जब तक जीवन का अंत न हो। आत्मघात का उपदेश देता था। खुद चौरासी साल तक जीया। कहते हैं, कुछ लोगों ने उसकी मानकर आत्महत्या भी कर ली। मरते वक्त किसी ने उससे पूछा कि पिरहो, तुमने दूसरों को तो सिखाया कि जीवन की परम शांति तभी है जब जीवन का भी त्याग हो जाए, और कई ने आत्महत्या भी कर ली तुम्हारी बातें मानकर, लेकिन तुम तो खूब लंबे जीए। उसने कहा, जीना पड़ा, लोगों को समझाने के लिए।
जर्मनी का बड़ा विचारक हुआ शापेनहार। वह भी आत्महत्या का पक्षपाती था। खुद उसने की नहीं। करने की तो बात दूर रही, प्लेग फैली, तो जब गांव से सब लोग भाग रहे थे, वह भी भाग खड़ा हुआ। राह में लोगों ने पूछा कि अरे, हम तो सोचते थे तुम न भागोगे, क्योंकि तुम तो आत्महत्या में मानते हो। उसने कहा, बातचीत एक है! मुझे याद ही न रहा अपना दर्शनशास्त्र, जब मौत सामने खड़ी हो गयी।
बुद्ध ने निर्वाण की बात की है, जहां सब बुझ जाता है। लेकिन वह भी जीवन
की ही आकांक्षा है। वह परम शुद्ध जीवन की आकांक्षा है, जहां जीवन के कारण भी बाधा नहीं पड़ती, जहां जीवन की भी सीमा न रह जाए जीवन पर, ऐसे शुद्धतम अस्तित्व की।
जीवन का मूल्य परम मूल्य है, शाश्वत मूल्य है। पर कोई नीतिशास्त्र जीवन के उस परम मूल्य के लिए शब्द नहीं दे सकता, सिद्धांत नहीं बना सकता। क्योंकि वह सहज-स्फूर्त है। सब नैतिक मूल्य सामयिक मूल्य हैं। कभी एक मूल्य महत्वपूर्ण हो जाता है परिस्थितिवश, कभी दूसरा मूल्य महत्वपूर्ण हो जाता है। यह मूल्यों का परिवर्तन तो चलता रहेगा। अगर तुम्हें जीवन का मूल्य ख्याल में आ जाए, तो तुम्हारे जीवन में सामयिक मूल्य अपने आप अनुचरित होने लगेंगे। अगर तुम अपने जीवन का मूल्य समझ लो तो दूसरे के जीवन का मूल्य भी तुम्हारे मन में अपने आप प्रतिस्थापित हो जाएगा।
समझो। अहिंसा नैतिक मूल्य है। लेकिन उसके प्राण हैं शाश्वत मूल्य में, जीवन के मूल्य में--न तुम चाहते हो तुम्हारा जीवन कोई नष्ट करे, न तुम चाहो कि तुम किसी का जीवन नष्ट करो, अतएव अहिंसा। अहिंसा उसी दूरगामी बात को कहने का एक उपाय है--जब तुम चाहते हो तुम्हारा जीवन कोई नष्ट न करे, तो तुम भी किसी का जीवन नष्ट न करो। जिसने जीवन का मूल्य समझ लिया, अहिंसा शब्द को छोड़ दे, कोई हर्जा नहीं। व्यर्थ है फिर शब्द। फिर तो उसके भीतर से सहज-स्फूर्त जीवन ही काम करेगा।
जीवन है सत्य। तो जो नहीं है, उसे मत कहो, क्योंकि वह जीवन के प्रतिकूल होगा। इसलिए सत्य का मूल्य है। लेकिन जिसने जीवन के मूल्य को शिरोधार्य कर लिया, सत्य की बात छोड़ दे, कोई जरूरत नहीं, जीवन पर्याप्त है। प्रेम, दया, करुणा, वे मूल्य हैं, लेकिन जिसने जीवन को पहचान लिया, उसके भीतर प्रेम की छाया अपने आप चलने लगती है। जीवन के जिसने रस को जान लिया, उससे प्रेम बहेगा। लेकिन वह सहज-स्फूर्त होगा।
जो मैं कहना चाहता हूं वह यहः शाश्वत मूल्य सहज-स्फूर्त होता है, सामाजिक मूल्य आरोपित होते हैं, समाज उन्हें सिखाता है। ऐसा समझो--
यह नमाजे-सहने-हरम नहीं यह सलाते-कूचा-ए-इश्क है
न दुआ का होश सजूद में न अदब की शर्त नमाज में
जो खड़े हैं आलमे-गौर में वो खड़े हैं आलमे-गौर में
जो झुके हैं नमाज में वो झुके हैं नमाज में

यह नमाजे-सहने-हरम नहीं
यह जो परम जीवन के मूल्य की मैं बात कर रहा हूं, यह मस्जिद में पढ़ी जाने वाली नमाज नहीं, यह मंदिर में की जाने वाली पूजा नहीं।
यह सलाते-कूचा-ए-इश्क है
यह तो प्रेम की गली की नमाज है।
एक तो नमाज है जो मस्जिद में पढ़ी जाती है। उसका सलीका है, उसका ढंग है, व्यवस्था है, रीति-नियम हैं। फिर एक नमाज है जो प्रेम की गली में पढ़ी जाती है। उसका कोई शास्त्र नहीं है। वह स्वतंत्र है। वह सहज-स्फूर्त है।
न दुआ का होश सजूद में न अदब की शर्त नमाज में
वह जो प्रेम की गली में पढ़ा जाता है प्रार्थना का सूत्र, वह जो प्रेम
की गली में की जाती है पूजा और अर्चना, वहां न तो याद रहता कौन सी प्रार्थना कहें, कौन सी न कहें; प्रार्थना कहें भी कि न कहें, यह भी याद नहीं रहता। न कोई शिष्टाचार की शर्त रह जाती है।
न दुआ का होश सजूद में न अदब की शर्त नमाज में
जो खड़े हैं आलमे-गौर में वो खड़े हैं आलमे-गौर में
कोई खड़ा ही रह जाता है उस परमात्मा के रस में डूबा!
जो खड़े हैं आलमे-गौर में वो खड़े हैं आलमे-गौर में
जो झुके हैं नमाज में वो झुके हैं नमाज में
कोई झुकता है तो झुका ही रह जाता है। न कोई अदब है, न कोई शिष्टाचार है,
न कोई रीति-नियम है।
लेकिन वह आखिरी बात है। जब तक वह न हो, तब तक सामयिक रीति-नियम को मानकर आदमी को चलना पड़ता है। जब तक तुम्हारे जीवन में वैसी नमाज न आ जाए कि खड़े हैं तो पता नहीं खड़े हैं, झुके हैं तो पता नहीं झुके हैं; जब तक तुम्हारे जीवन में वैसी प्रार्थना न आ जाए कि जहां गूंज गयी प्रार्थना वहीं मंदिर हो गया प्रभु का, तब तक तो कहीं न कहीं मंदिर तलाशना होगा, कहीं मस्जिद खोजनी होगी। जब तक तुम्हारे जीवन में जीवन का परम शाश्वत मूल्य बरसे न, तब तक अहिंसा, दया, करुणा, प्रेम, इन नियमों को मानकर चलते रहना होगा। ये ऊपरी आवरण हैं। ये तुम्हें तैयार करेंगे उस परम घटना के लिए। जब वह घट जाएगी, तब इस कूड़े-कर्कट को फेंक देना। जब वह घट जाए, तब फिर किसी रीति-नियम की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
न अपने दिल की लगी बुझा यूं
न कर जहन्नुम का तजकिरा यूं
संभाल अपने बयां को वाइज!
कि आंच आने लगी खुदा पर
अगर तुम धर्मगुरु की भाषा सुनो, तो वह कोई धर्म की भाषा नहीं है। वह तो नर्क का ऐसा वर्णन करने लगता है कि उसकी बात सुनकर तुमको लगेगा कि वह रस ले रहा है। ऐसा लगेगा कि भेजने के लिए बड़ा उत्सुक है। चाहता है कि भेज ही दे। उसकी आंखों में चमक, उसके चेहरे पर उत्तेजना मालूम होगी।
न अपने दिल की लगी बुझा यूं
न कर जहन्नुम का तजकिरा यूं
ऐसा लगता है कि दिल की लगी बुझा रहा है। जो खुद करना चाहता था, नहीं कर पाया, जिन्होंने किया है, उनको नर्क में डालने का मजा ले रहा है। आग में सड़ा रहा है।
न कर जहन्नुम का तजकिरा यूं
इस तरह जहन्नुम का वर्णन कर रहा है रस ले-लेकर, चटकारे ले-लेकर कि लगता
है दिल की लगी बुझा रहा है।
सम्हाल अपने बयां को वाइज!
हे धर्मगुरु! अपने वक्तव्य को थोड़ा सम्हाल।
कि आंच आने लगी खुदा पर
कि तेरे इस नर्क की आंच तो अब खुदा तक पहुंचने लगी, आदमियों की तो बात और। यह तेरी नर्क की लपटें तो अब जीवन के परम सत्य को भी कुम्हलाने लगीं। एक बात ख्याल में रखना, नर्क और स्वर्ग, जो नहीं समझते, उनके लिए पुरस्कार और दंड की कल्पनाएं हैं। पाप और पुण्य, जो नहीं समझते, उनके लिए

की गयी व्याख्याएं हैं। जो जागता है, समझता है। न फिर कोई पाप है, न फिर कोई पुण्य है। न कोई स्वर्ग है, न कोई नर्क है। जीवन ही सब है।
और जो समझता है, उसकी समझ काफी है। समझ के ऊपर कोई और शास्त्र नहीं। समझ आखिरी सिद्धांत है। हां, जब तक न समझा हो, तब तक दूसरे जो बताएं उनके आधार पर चलना ही होगा। आंख न खुली हो तो टटोलना ही होगा। आंख बंद हो तो हाथ में छड़ी लेकर रास्ता खोजना होगा।
सारे रीति-नियम अंधे के टटोलने जैसे हैं। आंख खुल जाए, फिर कोई रीति- नियम की जरूरत नहीं है। फिर सब मर्यादाओं से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। अमर्याद है चैतन्य। और उसी अमर्याद चैतन्य में से सारी मर्यादाएं अपने आप निकलती हैं। स्वतंत्रता है परम, लेकिन स्वच्छंदता नहीं है।
ख्याल रहे, रीति-नियम तब तक जरूरी हैं जब तक तुम्हारा ध्यान नहीं जगा। ध्यान जगेगा तो ही तुम्हें शाश्वत मूल्य का पता चलेगा। जीवन कहो, अस्तित्व कहो, परमात्मा कहो, प्रज्ञा कहो, समाधि कहो, नाम हैं। नाम ही अलग हैं। सार की बात इतनी है कि तुम्हारा ध्यान का दीया जल जाए। बस फिर किसी नीति का तुम पर बंधन नहीं, क्योंकि तुम कुछ करके भी अनैतिक न हो पाओगे। तुम चाहोगे भी, तो भी अनैतिक न हो पाओगे। तुम्हारे होने में ही नीति समाविष्ट हो जाएगी।
लेकिन जब तक यह न हो, तब तक बुद्धपुरुषों ने जो कहा है, जाग्रत पुरुष जैसे जीए हैं और जैसे चले हैं, तब तक टटोल-टटोलकर उनके रास्ते को मानकर चलना।
नीति--जागे हुए पुरुषों का अनुसरण है। धर्म--तुम्हारे भीतर जागरण का आगमन है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
छयालीसवां प्रवचन

जीवन-मृत्यु से पार है अमृत

वणिजो" व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो।
विसं जीवितुकामो" व पापानि परिवज्जये।। 109।।

पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो।। 110।।

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
सुद्धस्स पोसस्स अनंगणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं
सुखमो रजो पटिवातं" व खित्तो।। 111।।

गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा।। 112।।

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितो मुंचेय्य पापकम्मा।। 113।।

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितं नप्पसहेय्य मच्चू।। 114।।

आज का पहला सूत्र, "छोटे सार्थ, छोटे काफिले वाला और महाधन वाला वणिक जिस तरह भययुक्त मार्ग को छोड़ देता है, या जिस तरह जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष को छोड़ देता है, उसी तरह पापों को छोड़ दे।"
इसके पहले कि हम सूत्र को समझें, पाप के संबंध में कुछ बातें ध्यान ले लेनी जरूरी हैं। समस्त बुद्धपुरुष कहते हैं, पाप जहर के जैसा है, मृत्यु जैसा है, अग्नि में जलने जैसा है, फिर भी लोग पाप किए जाते हैं। अगर अग्नि में जलने जैसा ही है, तो अग्नि में तो इतने लोग इतनी आतुरता से अपने को जलाते हुए मालूम नहीं पड़ते। अगर विष जैसा ही है, तो विष पीकर तो लोग इतने ज्यादा पीड़ित होते दिखायी नहीं पड़ते। फिर पाप में आकर्षण क्या है? बुद्धपुरुष कहते हैं--ठीक ही कहते होंगे--कि अग्नि जैसा है, विष जैसा है, लेकिन मनुष्य को दिखायी नहीं पड़ता कि अग्नि जैसा है, विष जैसा है। बुद्धपुरुषों की बात सुनकर भी आदमी वही किए चला जाता है। हजार बार अपने अनुभव से भी पाता है कि शायद बुद्धपुरुष ठीक ही कहते हैं, फिर भी अनुभव को झुठलाता है और वही किए चला जाता है। तो समझना होगा।
इतना प्रबल आकर्षण! आग में जलने का ऐसा आकर्षण तो किसी को भी नहीं है। कभी-कभार कोई आग में जलकर मर जाता है। वह भी या तो भूल से, और या आत्मघाती होता है। लेकिन अपवाद रूप। पाप के संबंध में तो हालत उलटी है, कभी-कभार कोई बच पाता है।
अगर सौ में से निन्यानबे लोग आग में जलकर मरते हों, तो उसे फिर अपवाद न
कह सकेंगे। वह तो नियम हो जाएगा। और जो एक बच जाता हो, उसे क्या नियम का उल्लंघन कहोगे? उससे तो सिर्फ नियम सिद्ध ही होगा। वह जो एक बच जाता है, इतना ही बताएगा कि भूल-चूक से बच गया होगा। जब निन्यानबे जल मरते हों और एक बचता हो, तो एक भूल से बच गया होगा। हां, जब एक जलता हो और निन्यानबे बचते हों, तो एक भूल से जल गया होगा।

पाप के संबंध में हालत बड़ी उलटी है। आंकड़े बड़े उलटे हैं। कहीं कोई बुनियादी बात ख्याल से छूटती जाती है। उसे ख्याल में लेना जरूरी है। पहली बात, जब बुद्धपुरुष कहते हैं पाप अग्नि जैसा है, तो वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम्हें भी समझ में आ जाएगा कि पाप अग्नि जैसा है। वे यह कह रहे हैं कि उन्होंने जागकर जाना कि पाप अग्नि जैसा है। सोकर तो उन्हें भी पाप में बड़े फूल खिलते मालूम होते थे। सोकर तो उन्हें भी पाप बड़ा आकर्षक था, बड़ा निमंत्रण था उसमें, बड़ा बुलावा था। बुलावा इतना सघन था कि आग की जलन और आग से पड़े घाव भी फूलों में ढंक जाते थे। बुद्धपुरुष यह कह रहे हैं, जो जागा, उसने जाना कि पाप आग जैसा है। सोए हुए का यह अनुभव नहीं है।
इसलिए तुम बैठकर यह मत दोहराते रहना कि पाप अग्नि जैसा है, विष जैसा है। इसके दोहराने से कुछ भी लाभ न होगा। इसे तो सदियों से आदमी दोहराता है। तोतों की तरह याद भी हो जाता है, लेकिन जब भी जीवन में कोई घड़ी आती है, सब याददाश्त, सब रटंत व्यर्थ हो जाती है। जब भी कोई जीवन में सक्रिय क्षण आता है, पाप पकड़ लेता है। निष्क्रिय क्षणों में हम पुण्य की बातें सोचते हैं। नपुंसक क्षणों में हम पुण्य की योजनाएं बनाते हैं। ऊर्जा के, शक्ति के क्षणों में पाप घटता है। ऐसा लगता है, पुण्य की हमारी योजनाएं व्यर्थ के समय को भर लेने का उपाय हैं। खेल-खिलौने हैं। जब कुछ करने को नहीं होता, तब हम उनसे खेल लेते हैं। जब पाप करने को नहीं होता, तब हम पुण्य की बातें करके अपने को समझा लेते हैं। जब करने की बात उठती है, तब पाप होता है। जब सोचने तक की बात हो, तब तक पुण्य का हम विचार करते हैं। पापी से पापी भी विचार तो पुण्य के ही करता है।
इसलिए विचारों के धोखे में मत आ जाना। अगर बहुत पुण्य का सोचते हो, इससे यह मत सोच लेना कि तुम पुण्यवान हो गए। और बुद्धपुरुषों के वचनों को दोहराकर मत समझ लेना कि तुम समझ गए उन्होंने जो कहा था। उनकी बात तुम्हें समझ में तभी आएगी जब तुम जागोगे।
तो जब वे कहते हैं, पाप अग्नि जैसा है, तुम इस उधार को मान मत लेना। तुम
तो जानना कि पाप अभी मुझे अग्नि जैसा दिखायी नहीं पड़ता। अभी तो मुझे पाप में बड़ा आमंत्रण है, बड़ा रस है। अभी तो पाप मुझे भोग का बुलावा है। जहर नहीं, अमृत है। तुम अपने को मत झुठलाना। तुम बुद्धपुरुषों के वचनों को मत ओढ़ लेना, अन्यथा भटक जाओगे। तुम तो कहे जाना कि मेरा अनुभव तो यही है कि पाप बड़ा प्रीतिकर है। आप कहते हैं, ठीक कहते होंगे, लेकिन मुझे दिखायी नहीं पड़ता।
अगर तुमने यह याद रखी कि तुम्हारे पास आंख नहीं है, तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, तो तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया में बदलाहट होगी। बदलाहट यह होगी कि तुम पाप छोड़ने की फिक्र न करोगे, आंख पैदा करने की फिक्र करोगे। और वहीं सारा... सारी चीज वहीं निर्भर है। अगर तुमने पाप को छोड़ने की फिकर की, तुम भटके। तुम भूले। अगर तुमने आंख को बदलने की कोशिश की, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित होगी।
जब तुम बुद्धों के वचन सुनो, तब तौलते रहना कि तुम्हारे अनुभव से मेल खाते हैं? और तुम अपने ऊपर किसी को भी कभी मत रखना, क्योंकि उधार ज्ञान जीवन में क्रांति नहीं लाता। शास्त्र कितने ही सुंदर हों, सुंदर ही रह जाते हैं, सृजनात्मक नहीं हो पाते। उनके वचन कितने ही प्यारे लगते हों, बस मन का ही भुलावा है, तुम्हारी वस्तुस्थिति को रूपांतरित नहीं कर पाते। तो याद रखना अपनी। बुद्धों के वचन सुनने में बड़े से बड़ा खतरा यही है
कि उनके वचन तर्कयुक्त हैं, उनके वचन सत्ययुक्त हैं, उनके वचन अनुभव से सत्य सिद्ध हुए हैं, उनके वचन कोई सिद्धांत नहीं हैं, उनके जीवन की प्रक्रिया से आविर्भूत हुए हैं, उनका प्रभाव होगा; लेकिन प्रभाव को तुम अपने जीवन का आधार मत बना लेना। उनसे प्रेरणा मिलेगी, लेकिन उस प्रेरणा को मानकर तुम गलत दिशा में मत चले जाना। गलत दिशा है कि तुमने मान लिया कि हां, पाप बुरा है। अब तुम पाप से बचने की चेष्टा शुरू कर दोगे। और अभी तुमने जाना ही न था कि पाप बुरा है। जानने के लिए तो पहले आंख खुलनी चाहिए। पहली बात।

दूसरी बात, जब बुद्धपुरुष कहते हैं, पाप अग्नि जैसा है, जहर जैसा है,
तो तुम यह मत समझना कि वे पाप की निंदा कर रहे हैं। धर्मगुरु करते हैं। दोनों के वचन एक जैसे हैं; इससे बड़ी भ्रांति होती है। धर्मगुरु जब कहता है, पाप जहर है, तो वह निंदा कर रहा है। जब बुद्ध कहते हैं, पाप जहर है, तो केवल तथ्य की सूचना दे रहे हैं। पाप को जहर कहने में उन्हें कुछ मजा नहीं आ रहा है। पाप को जहर कहने में उनकी कोई दबी हुई कामना नहीं है। जब धर्मगुरु कहता है, पाप जहर है, तो वह तथ्य की घोषणा नहीं कर रहा है। वह यह कह रहा है कि मेरे भीतर पाप के प्रति बड़ा आकर्षण है, मैं जहर-जहर कहकर ही उस आकर्षण को किसी तरह रोके हुए हूं।
धर्मगुरु की आंखों में तुम गौर से देखना जब वह पाप को जहर कहता है, तो उसकी आंखों में वही भाव नहीं होता जब वह कहेगा दो और दो चार होते हैं। आंखों में फर्क होगा। जब वह कहता है, दो और दो चार होते हैं, तो आंखों में कोई रौनक नहीं होती, कोई भावावेश नहीं होता। वह उत्तेजित नहीं होता। दो और दो चार होते हैं, इसमें उत्तेजित होने की बात ही क्या है? लेकिन जब वह कहता है, पाप अग्नि है, जहर है, तब तुम पाओगे कि उसकी आंख में उत्तेजना आने लगी। पाप का शब्द ही उसके भीतर किसी चीज को डगमगाने लगा। पाप का शब्द ही उसके भीतर किसी रस को उठाने लगा। जब वह तुमसे कहता है, पाप बुरा है, तो वह अपने से कह रहा है--पाप बुरा है, सम्हलो। जितने जोर से वह पाप की निंदा करता है, उतने ही जोर से वह खबर देता है कि भीतर उसके पाप के प्रति बड़ा आकर्षण है। धर्मगुरु से तुमने अगर पाप के संबंध में समझा, तो तुम गलत रास्ते पर जाओगे। तुम्हें धर्मगुरु की बात ठीक भी लगेगी और तुम उसे कभी पूरा कर भी न पाओगे। यात्रा ही गलत शुरू हो गयी।
मैंने सुना है... चर्चिल ने दूसरे महायुद्ध के संस्मरण लिखे हैं-- हजारों पृष्ठों में, छह भागों में--किसी युद्ध के इतने विस्तीर्ण संस्मरण लिखे नहीं गए। फिर चर्चिल जैसा अधिकारी आदमी था, जो युद्ध के मध्य में खड़ा था। अक्सर युद्ध करने वाले और इतिहास लिखने वाले और होते हैं। इस मामले में इतिहास लिखने वाला और बनाने वाला एक ही आदमी था।
चर्चिल ने अपने हजारों पृष्ठों में रूजवेल्ट, स्टैलिन और अपने संबंध में बहुत सी बातें लिखी हैं। उसमें रूजवेल्ट और चर्चिल दोनों आस्तिक थे, स्टैलिन नास्तिक था। और तीनों ने ही हिटलर के खिलाफ युद्ध लड़ा।
हजारों पृष्ठों में खोजोगे, तुम चकित हो जाओगे, सिर्फ स्टैलिन कभी- कभी भगवान का नाम लेता है। न तो रूजवेल्ट नाम लेता है, न चर्चिल नाम लेता है। स्टैलिन बहुत बार कहता है, अगर भगवान ने चाहा, तो युद्ध में विजय होगी। होना उलटा था। रूजवेल्ट नाम लेता, चर्चिल नाम लेता भगवान का--दोनों आस्तिक थे। स्टैलिन नाम लेता है। रूजवेल्ट, चर्चिल उल्लेख ही नहीं करते भगवान का।
मनोवैज्ञानिक कारण है। स्टैलिन दबाए हुए बैठा है। जिसको दबाए हुए बैठे हो, वह उभर-उभरकर आएगा। उससे छुटकारा नहीं हुआ है, दबाने के कारण तुम और उससे बंध गए हो। संकट की घड़ी में बाहर आ जाएगा।
लेनिन ने तो ईश्वर के खिलाफ बहुत बातें लिखी हैं। उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति में जब एक ऐसी घड़ी आ गयी कि इस तरफ या उस तरफ हो जाएगी स्थिति, क्रांति जीतेगी या हारेगी तय न रहा, तो लेनिन ने जो वक्तव्य दिया उसमें उसने तीन बार कहा कि अगर भगवान की कृपा हुई, तो हम क्रांति में विजयी हो जाएंगे। फिर उसने जिंदगीभर कभी नाम न लिया। न उसके पहले लिया था, न उसके बाद में लिया। लेकिन क्रांति की उस दुर्घटना की घड़ी में जैसे होश खो गया, जो दबा पड़ा था वह बाहर आ गया!
माओ उन्नीस सौ छत्तीस में बीमार पड़ा। इस समय पृथ्वी पर बड़े से बड़े नास्तिकों में एक है। और जब बीमार पड़ा तो घबड़ा गया। जब मौत सामने दिखी तो घबड़ा गया। तत्क्षण कहा कि मैं किसी से दीक्षा लेना चाहता हूं; और एक साध्वी को बुलाकर दीक्षा ली। ठीक हो गया, फिर भूल गया साध्वी को भी, दीक्षा को भी। लेकिन मौत की घड़ी में दीक्षा!
रूस का सबसे बड़ा नास्तिक जो वहां नास्तिकों के समाज का अध्यक्ष था, जब
वह मरा, स्टैलिन उसकी शय्या के पास था। मरते वक्त उसने आंख खोलीं और उसने

कहा कि स्टैलिन, सुनो, वह है! परमात्मा है! सामने खड़ा है, मैं उसे देख रहा हूं। तुम मेरी सारी किताबों में आग लगा देना। याद रखना, यह मेरा आखिरी वचन है कि ईश्वर है। वह मेरे सामने खड़ा है और कहता है कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।
जरूरी नहीं है कि ईश्वर खड़ा रहा हो। ईश्वर बड़े-बड़े आस्तिकों के सामने
भी मरते वक्त इतनी आसानी से खड़ा नहीं हुआ है, तो इस नास्तिक के सामने खड़ा रहा होगा! नहीं, इसके भीतर दबा हुआ भाव। जिंदगीभर लड़ता रहा भीतर की किसी आकांक्षा से। जिससे तुम लड़ते हो, उसे तुम प्रबल करते हो।
तुमने अगर धर्मगुरु से पाप के संबंध में बातें सुनीं, तुम्हारा पाप प्रबल होता चला जाएगा। धर्मगुरु ने पृथ्वी को पापों से मुक्त नहीं किया, पापों से भर दिया है।
यह बात तुम्हें जरा उलटी मालूम पड़ेगी। यह दुनिया कम पापी हो, अगर मंदिर और मस्जिद यहां से उठ जाएं। यह दुनिया कम पापी हो, अगर पंडित और पुरोहित पाप की निंदा न करें। क्योंकि निंदा से दमन होता है। दमन से रस बढ़ता है। जिस चीज के लिए भी तुमसे कह दिया मत करो, उसके करने के लिए एक गहरी आकांक्षा पैदा हो जाती है। लगता है, जरूर करने में कुछ होगा, अन्यथा कौन कहता है मत करो! जरूर करने में कुछ होगा। जब सारी दुनिया कहती है मत करो, सभी मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे कहते हैं मत करो, सभी पंडित-पुरोहित कहते हैं मत करो, जब इतने लोग कहते हैं मत करो, तो करने में जरूर कोई बात होगी, कोई रस होगा। अन्यथा कौन चिंता करता था!
बुद्धपुरुष जब कहते हैं, पाप अग्नि है, जहर है, तो वे सिर्फ केवल तथ्य
की उदघोषणा कर रहे हैं। उनके वक्तव्य में कोई विरोध नहीं है, कोई निंदा नहीं है। जैसे अगर मैं तुमसे कहूं आग जलाती है, तो मैं सिर्फ तथ्य की सूचना दे रहा हूं। तुम्हें जलना हो, हाथ डाल लेना। तुम्हें न जलना हो, मत डालना। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि मत डालो। हाथ मत डालो, यह मैं तुमसे नहीं कहता। मैं तुमसे कहता हूं, यह आग जलाती है। अब तुम्हारे ऊपर निर्भर है, तुम्हें हाथ जलाना हो तो आग में हाथ डाल लेना, न जलाना हो मत डालना।
बुद्धपुरुष केवल तथ्य की उदघोषणा करते हैं। उनकी उदघोषणा में कोई भावावेश नहीं है। तो जब बुद्ध इन वचनों को कह रहे हैं, तो यह ख्याल रखना। तुम यह मत सोच लेना कि वे तुमको डरवाने के लिए कह रहे हैं कि पाप अग्नि है। डराकर कहीं कोई मुक्त हुआ है! भय से कहीं कोई पुण्य को उपलब्ध हुआ है! भय से कभी कोई भगवान को पहुंचा! न वे निंदा कर रहे हैं, पाप के विरोध में भी नहीं हैं। विरोध में होने योग्य भी क्या है पाप में!
वे सिर्फ इतना कह रहे हैं, यहां गड्ढा है। अगर सम्हलकर न चले, गिरोगे। अगर गिरना हो तो गैर-सम्हलकर चलना। अगर न गिरना हो, सम्हलकर चलना। उनकी तरफ से कोई आदेश नहीं है।
जैन शास्त्रों में एक बड़ी मधुर बात है। जैन शास्त्र कहते हैं, तीर्थंकर के वचनों में उपदेश होता है, आदेश नहीं।
यह बात बड़ी प्रीतिकर है। उपदेश का मतलब होता है, वे केवल कह देते हैं, ऐसा है। आदेश नहीं कि ऐसा करो। धर्मगुरु के वचन में आदेश होता है, तीर्थंकर के वचन में मात्र उपदेश होता है। आदेश का मतलब है, धर्मगुरु कह रहा है कि मेरी कुछ योजना है, उसके अनुसार चलो। मेरी मानो। मैं जो कहता हूं, वैसा आचरण करो। भाषा तो एक ही दोनों उपयोग करते हैं, इसलिए बड़ी भूल हो जाती है।
तो धम्मपद के इन वचनों को तुम तथ्य निरूपक मानना। ये उपदेश हैं। इनमें कोई आदेश नहीं। तुम जरा सोचो, जैसे ही मैं कहता हूं, इनमें कोई आदेश नहीं है, तुम्हारे भीतर से कुछ चीज हट जाती है। अगर नहीं करने का जोर नहीं है, तो करने का मजा ही हट जाता है।
"छोटे सार्थ, जिनके पास छोटा सा काफिला है, लेकिन धन बहुत है, ऐसा व्यवसायी भययुक्त मार्ग को छोड़कर चलता है। या, जिस तरह जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष को छोड़ता है, उसी तरह पापों को छोड़ दे।"
ध्यान रखना, इसमें छोड़ने पर जोर नहीं है। इसमें बात कुल इतनी ही है कि अगर तुम चाहते हो कि जीना है, तो फिर विष तुम्हारे काम का नहीं। मरना हो, तो

विष ही काम का है। अगर तुम चाहते हो कि लुटना नहीं है, तो भययुक्त रास्तों को छोड़ देना उचित है। अगर तुम चाहते हो कि लुटने का मजा लेना है, तो भूलकर भी भययुक्त रास्तों को छोड़ना मत।
और बुद्ध केवल इतना कह रहे हैं कि तुम्हारे पास सामर्थ्य तो कम है और
धन बहुत है। समय तो कम है और संपत्ति बहुत है। सुरक्षा का उपाय तो कम है और तुम्हारे भीतर बड़े मणि-माणिक्य हैं।
प्रत्येक बच्चा परमात्मा की संपत्ति को लेकर पैदा होता है। वह संपत्ति इतनी बड़ी है कि उसकी रक्षा करना ही मुश्किल है। और उपाय रक्षा करने का कुछ भी नहीं है। संपत्ति कुछ ऐसी है कि उस पर तुम पहरा भी नहीं बिठा सकते। संपत्ति कुछ ऐसी है कि सैनिक संगीनधारी भी उसे बचा न सकेंगे। संपत्ति कुछ ऐसी है कि तुम्हारा होश ही पहरा बन सकता है, अन्यथा तुम गंवा दोगे।
पाप तुमसे कुछ छीन लेता है जो तुम्हारे पास था। पाप तुम्हें देता कुछ
भी नहीं, तुम्हें रिक्त कर जाता है। पाप के क्षणों के बाद अगर तुम थोड़ा भी विमर्श करोगे, विचार करोगे, तो तुम पाओगे, तुम रिक्त हुए, दरिद्र हुए। कुछ था, जो तुमने गंवाया।
क्रोध के बाद तुम्हें ऐसा नहीं लगा है कि कोई ऊर्जा पास थी जो तुमने
खो दी? कुछ शक्ति पास थी, जो तुमने कचरे में फेंक दी? हीरा हाथ में था, नाराज होकर फेंक दिया? जैसे तुम हीरा लिए चल रहे हो और किसी ने गाली दे दी और तुमने हीरा उठाकर मार दिया। क्रोध के बाद तुम्हें ऐसा नहीं लगा है कि कुछ गंवाया, पाया तो कुछ भी नहीं? घृणा के बाद, वैमनस्य के बाद, हिंसा के बाद, ईर्ष्या के बाद, मत्सर के बाद तुम्हें ऐसा नहीं लगा है कि पाया तो कुछ भी नहीं, हाथ में उलटा कुछ था वह छूट गया?
पाप का इतना ही अर्थ है कि तुम बेहोश हुए और जो संपदा होश में बच सकती थी, वह खो गयी। होश सुरक्षा है।
बुद्ध ने कहा है, जैसे घर में दीया जलता हो तो चोर पास नहीं आते। सोचते हैं, कोई घर में होगा। पहरेदार घर के बाहर बैठा हो, तो चोर जरा दूर से निकल जाते हैं। लेकिन पहरेदार घर पर न हो, घर में दीया न जला हो, अंधकार छाया हो, तो चोर चुपचाप चले आते हैं। इसे छोड़कर जा कैसे सकते हैं! न कोई पहरेदार है, न घर में रोशनी है; मालिक कहीं बाहर है, घर अकेला पड़ा है। यह क्षण लूट लेने का है।
बुद्ध ने कहा है, पाप तुम्हें घेरते हैं बेहोशी के क्षणों में। जब तुम होश भरे होते हो, कोई पाप तुम्हारे पास नहीं आता। पाप चोरों की तरह है। लेकिन ध्यान रखना सदा ही, इन सारे शब्दों के आधार से तुम यह मत सोचना
कि बुद्ध निंदा कर रहे हैं; वे केवल सूचना कर रहे हैं--ऐसा है। यह केवल तथ्य का उदघोषण है, उपदेश है। वे तुमसे यह नहीं कह रहे हैं कि ऐसा तुम करो ही। क्योंकि बुद्ध ने कहा है कि मैं कौन हूं तुमसे कहने वाला कि तुम क्या करो? मैं तुमसे इतना ही कह सकता हूं कि मैंने कैसी-कैसी भूलें की और कैसे-कैसे कष्ट पाए; फिर मैंने कैसे-कैसे भूलों को छोड़ा, और कैसे-कैसे महासुख को उपलब्ध हुआ। मैं वही कह सकता हूं जो मेरे भीतर हुआ है। मैं तुम्हें अपनी कथा कह सकता हूं।
सभी बुद्धपुरुषों ने जो कहा है, वह उनका आत्मकथ्य है। वे वहां से गुजरे जहां तुम हो, और वे वहां भी पहुंच गए जहां तुम कभी पहुंच सकते हो। उनका अनुभव दोहरा है। तुम्हारा अनुभव इकहरा है।
तुमने केवल संसार जाना, उन्होंने संसार के पार भी कुछ है, उसे भी जाना। संसार तो जाना ही; जितना तुमने जाना है, उससे ज्यादा जाना; उससे ज्यादा जाना तभी तो वे संसार के पार उठ सके। तुम्हारे जितना ही जाना होता-- अधकचरा, अधूरा, कुनकुना--तो अभी लटके होते। उन्होंने त्वरा से जाना। उन्होंने संसार की पूरी पीड़ा भोगी। उन्होंने पीड़ा को इस गहनता से भोगा कि उस पीड़ा में फिर कोई भी सुख की संभावना न बची, वह बिल्कुल राख हो गयी। वे पार गए। तुम जहां चल रहे हो, वहां तो वे चले ही; तुम जहां कभी चलोगे सौभाग्य के किसी क्षण में, वहां भी वे चले। उनकी बात तुमसे ज्यादा गहरी है, तुमसे बड़े अनुभव पर आधारित है।

तो बुद्ध ने कहा है, हम इतना कह सकते हैं कि तुम जो भूलें कर रहे हो, ऐसा मत सोचना कि तुम्हीं कर रहे हो, हमने भी की थीं। तुम कुछ नयी भूलें नहीं कर रहे हो--सनातन हैं, सदा से होती रही हैं। तुम इस भूल में मत पड़ना कि तुम कुछ नया पाप कर रहे हो। सब पाप पुराने हैं। पाप पुराना ही होता है। तुम नया पाप खोज सकते हो, जरा सोचो? तुम कल्पना भी कर सकते हो किसी नए पाप की, जो किया न गया हो? सब बासा है। सब हो चुका है बहुत। दुनिया हर काम कर चुकी है, पुनरुक्त कर चुकी है, हर रास्ते पर चल चुकी है।
बुद्धपुरुष इतना ही कहते हैं, हम चले हैं। तुम्हारी आंखों में आंसू हमें पता हैं, क्योंकि तुम्हारे पैरों में कांटे गड़े हैं। हमारे पैरों में भी वे ही कांटे गड़े रहे थे। लेकिन हमने संबंध का पता लगा लिया। तुम अपनी आंखों के आंसू और पैरों के कांटों में संबंध नहीं बना पा रहे हो। तुम सोचते हो, कोई सता रहा है, इसलिए रो रहे हो। तुम यह नहीं सोचते हो कि तुम गलत रास्ते पर चल रहे हो, जहां कांटे चुभ रहे हैं, आंखें आंसुओं से भर रही हैं। तुम सोचते हो, भाग्य की विडंबना है। संसार में दुख पाया जा रहा है। हमारी विधि में गलत लिखा है। हम करते तो सभी ठीक हैं, होता सब गलत है। बुद्धपुरुष इतना ही कहते हैं, ऐसा न कभी हुआ, न होने का नियम है। जब तुम ठीक करते हो, ठीक ही होता है। जब तुम गलत करते हो, तभी गलत होता है। फल से बीज को पहचान लेना।
"छोटे सार्थ और महाधन वाला वणिक जिस तरह भययुक्त मार्ग को छोड़ देता है, या जिस तरह जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष को छोड़ता है, उसी तरह पापों को छोड़ दे।"
लेकिन ध्यान रखना, शर्त साफ है। अगर जीवन के महाधन को पाना हो, बचाना हो; जो तुम्हारे पास है, उसकी अगर सुरक्षा करनी हो, गंवाना न हो; जो अस्तित्व तुम्हें मिला ही है, अगर उसे विकृत न कर लेना हो; जो फूल खिल सकता है, जिसकी सुवास तुम्हारे प्राणों में भरी है और बिखर सकती है लोक-लोकांत में, अगर उसको ऐसे ही सड़ा न डालना हो, तो सुरक्षा करना, गलत रास्तों पर मत जाना।
अब इसमें फर्क समझो।
धर्मगुरु कहता है, अगर पाप करोगे, दुख पाओगे। बुद्धपुरुष कहते हैं, अगर पाप करोगे, सुख से वंचित हो जाओगे। इस फर्क को ख्याल में लेना। यह बहुत गहरा फर्क है। धर्मगुरु कहता है, पाप किया, नर्क में सड़ोगे; वह डरवा रहा है। वह तुम्हारे पाप के आकर्षण से बड़ा भय खड़ा कर रहा है, कि शायद भय के आधार पर तुम रुक जाओ। जैसे छोटा बच्चा आइस्क्रीम खाना चाहता है और मां कहती है कि आइस्क्रीम खाओगे तो बुखार चढ़ेगा, सर्दी-जुकाम होगा--घबड़ाती है उसको। जितना आइस्क्रीम खाने का सुख है, उससे बड़े दुख का भय बताती है। बुद्धपुरुष तुम्हें भयभीत नहीं कर रहे हैं। वे केवल जीवन के गणित का इंगित कर रहे हैं। वे यह नहीं कहते कि तुम दुख पाओगे। वे इतना ही कहते हैं कि सुख तुम्हें मिलना चाहिए था, मिला ही हुआ था, हाथ में ही आया हुआ था, उसे तुम गंवा दोगे। सुख का गंवा देना ही दुख है।

इसे मुझे दोहराने दो। दुख का कोई विधायक रूप नहीं है, वह केवल सुख का अभाव है। जैसे अंधकार का कोई विधायक रूप नहीं है, वह केवल प्रकाश का अभाव है।
धर्मगुरु कहते हैं, अगर पाप किया, अंधेरे में भटक जाओगे। बुद्धपुरुष कहते हैं, अगर पाप किया, उजाले को खो दोगे। तुम कहोगे, दोनों बातें एक हैं। नहीं, बड़ा फर्क है। क्योंकि धर्मगुरु कहता है, कुछ दुख जो तुम्हें नहीं मिला है, मिलेगा। जैसे अस्तित्व तुम्हें दंड देगा। और बुद्धपुरुष कहते हैं, कुछ तुम्हें मिला ही हुआ था, तुम अपनी ही अयोग्यता से उसे खो दोगे। अस्तित्व तुम्हें दंड नहीं दे रहा है। अस्तित्व ने तो तुम्हें धन्यभागी बनाया था। अस्तित्व ने तो तुम्हें बिना मांगे बहुत दिया था। अस्तित्व ने तो हाथ खोलकर दिया था, तुम्हारी झोली पूरी भरी थी। तुमने ही अयोग्यता से खोया।

धर्मगुरु कहता है, सिद्धत्व जीवन के अंत में है। बुद्धपुरुष कहते हैं, सिद्धत्व स्वभाव है। जीवन के प्रारंभ में तुम्हें मिला ही था मोक्ष, तुमने अपने हाथ से ही बागुड़ खड़ी कर ली और सीमाएं बांध लीं। तुम्हारे जीवन में महासंगीत घट सकता था, तुमने खुद ही तार तोड़ लिए सितार के, किसी ने तोड़े नहीं हैं।
यह अस्तित्व की मंगलदायी, यह अस्तित्व की परम मंगलदायी प्रकृति की सूचना है। अस्तित्व तुम्हारे विरोध में नहीं है। तुम अस्तित्व के ही फैलाव हो। अंधेरे में गिरा देगा, ऐसा नहीं; अंधेरे में तुम गिर जाओगे, यह सच है। क्योंकि जब रोशनी खो जाएगी, तो अंधेरे में गिर जाओगे। लेकिन कोई तुम्हें गिराता नहीं।
उमर खय्याम का एक वचन है कि मुझे कुरान पर भरोसा है, इसलिए मैं मानता हूं कि नर्क होगा जरूर। लेकिन मुझे परमात्मा की अनुकंपा पर भी भरोसा है, इसलिए मैं मानता हूं कि नर्क खाली होगा। कुरान पर भरोसा है, इसलिए नर्क होगा जरूर। कुरान कहती है। लेकिन मुझे परमात्मा की अनुकंपा पर भी भरोसा है, इसलिए मैं जानता हूं, नर्क खाली होगा, वहां कोई हो नहीं सकता। अस्तित्व मंगलदायी है, परम कल्याणकारी। अस्तित्व का यह कल्याणकारी रूप ही तो उसका ईश्वरभाव है। तुम्हें कोई दंड देने को नहीं बैठा है। हां, पुरस्कार तुमसे छिन जाएगा, और तुम्हीं छिन जाने के कारण होओगे। सुख तुम खो सकते हो। बस, उस खोने में ही दुख है। जो हो सकता था, उसके न होने में नर्क है। जो हो सकता था, उसके हो जाने में स्वर्ग है। बीज बीज से फूल तक पहुंच जाए, स्वर्ग है। बीज बीज रह जाए, फूल तक न पहुंच पाए, नर्क है। जो होना था न हो पाए, नर्क है। जो होना था वही हो जाए, परम आनंद, परम उत्फुल्लता का क्षण आ गया। पूर्णता हुई, तृप्ति हुई।
"छोटे सार्थ और महाधन वाला वणिक जिस तरह भययुक्त मार्ग को छोड़ देता है, या जिस प्रकार जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष को छोड़ता है, उसी तरह पापों को छोड़ दे।"
जागने की बात कह रहे हैं बुद्ध। जागे, देखे कि कितना मेरे पास है और किस-किस भांति गंवा रहा हूं। जागे और देखे, कितना जल मेरी गगरी में भरा है, कितने-कितने छेदों से गंवा रहा हूं। छेदों को भर ले।
"यदि हाथ में घाव न हो, तो हाथ में विष लिया जा सकता है... "
यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है!
"... क्योंकि घाव न हो तो शरीर में विष नहीं लगता। इसी तरह नहीं करने वाले को पाप नहीं लगता है।"
यदि हाथ में घाव न हो, तो तुम हाथ में विष भी ले लो तो भी कुछ हर्जा नहीं। घाव हो, तो घाव के माध्यम से विष शरीर में प्रवेश कर जाता है। खून की धारा में पहुंच जाता है।
अगर तुम्हारे जीवन में पाप करने की मूर्च्छा न हो, तो तुम मध्य, पाप के बीच भी खड़े हो जाओ, तो भी पाप से तुम छुए न जा सकोगे। तुम अस्पर्शित रहोगे। तुम्हें पाप चारों तरफ से घेर ले, तो भी तुम्हारे जीवन में प्रवेश न कर सकेगा। घाव चाहिए।
किसी ने तुम्हें गाली दी, अगर तुम्हारे भीतर गाली को पकड़ने के लिए घाव
न हो--अहंकार का घाव न हो--तो गाली तुम्हारे चारों तरफ चक्कर लगाकर थक जाएगी। क्या करेगी? आएगी, अपने से चली जाएगी। अक्सर तो ऐसा होगा, उसी के पास लौट जाएगी जिसने भेजी थी। अपने घर वापस लौट जाएगी। अपने स्रोत में वापस लीन हो जाएगी।
तुम कभी इस छोटे से प्रयोग को करके देखो। कोई तुम्हें गाली दे, तुम शांतमनः, अनुद्विग्न, अनुत्तेजित, चुपचाप बने रहो। देखो क्या होता है? तुम पाओगे, गाली तुम्हारा चक्कर लगाएगी, तुम्हारे चारों तरफ से रास्ता खोजेगी--कहीं घाव मिल जाए तो प्रवेश कर जाए। अगर तुम्हारे भीतर कोई घाव होगा, तो घाव सब तरह की उत्तेजना दिखाएगा कि यह क्या कर रहे हो? मेरा भोजन पास आया है, तुम गंवाए दे रहे हो, पकड़ो। लेकिन अगर तुम जागे रहे क्षणभर, तो तुम पाओगे, गाली जा चुकी। और गाली के पीछे तुम ऐसी शांति अनुभव करोगे जो तुम्हारे पास गाली के पहले भी नहीं थी। क्योंकि तूफान के बाद जो शांति

अनुभव होती है, उसका स्वाद ही अनूठा है। और एक बार गाली देने का अवसर था और तुमने गाली न दी; गाली लेने का अवसर था, तुमने गाली न ली; तुम पाओगे, तुम्हारे अपने ऊपर एक तरह की मालकियत हो गयी।
"यदि हाथ में घाव न हो तो हाथ में विष नहीं लगता, लिया जा सकता है।"
इसका यह अर्थ हुआ कि पुण्यात्मा व्यक्ति, सजग, जागरूक व्यक्ति अंधेरे
से अंधेरी रात में भी खड़ा हो जाए तो अंधेरा उसे छूता नहीं। यही कृष्ण ने पूरी बात गीता में अर्जुन को कही है कि तू फिकर मत कर, अगर तेरे हाथ में घाव नहीं है, तो यह विष तू ले ले। अगर तेरे भीतर अहंकार नहीं है, तो इस युद्ध में तू उतर जा। फिर यह कुरुक्षेत्र भी धर्मक्षेत्र है। फिर इससे भी तुझे कोई हानि न होगी। और अगर तेरे भीतर घाव है और तू जंगल भी भाग जाए, संन्यास ले ले, पहाड़ में छिप जाए, तो भी कोई फर्क न होगा। विष तुम्हें खोजता हुआ वहीं पहुंच जाएगा। असली सवाल तुम्हारे भीतर की सजगता का है, तुम्हारे भीतर के स्वास्थ्य का है।
भागने की चेष्टा मत करना। लोग उन स्थानों को छोड़ देते हैं जहां पाप होने का डर है। जैसे तुम उस रास्ते पर जाने में डरोगे जहां वेश्याएं रहती हैं। लेकिन यह डर सिर्फ इतना ही बताता है कि वेश्याओं में तुम्हें रस है। और यह डर इतना ही बताता है कि तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं।
बुद्ध के जीवन में ऐसा उल्लेख है। एक भिक्षु बुद्ध का गांव से गुजरा, गांव की नगरवधू ने, वेश्या ने उस भिक्षु को आते देखा, भिक्षा मांगते देखा। वह थोड़ी चकित हुई, क्योंकि वेश्याओं के मुहल्ले में भिक्षु भिक्षा मांगने आते नहीं थे। यह भिक्षु कैसे यहां आ गया? और यह भिक्षु इतना भोला और निर्दोष लगता था।
इसीलिए आ भी गया था। सोचा ही नहीं कि वेश्याओं का मुहल्ला कहां है! नहीं तो साधु पहले पूछ लेते हैं, वेश्याओं का मुहल्ला कहां है? जहां नहीं जाना, वहां का पहले पक्का कर लेना चाहिए। जाने वाला भी पता कर लेता है, न जाने वाला भी पता कर लेता है। दोनों के मन वहीं अटके हैं।
वह वेश्या नीचे उतरकर आ गयी। उसने इससे ज्यादा सुंदर व्यक्ति कभी देखा नहीं था। संन्यस्त से ज्यादा सौंदर्य हो भी नहीं सकता। संन्यास का सौंदर्य अपरिसीम है। क्योंकि व्यक्ति अपने में थिर होता है। सारी उद्विग्नता खो गयी होती है। सारे ज्वर खो गए होते हैं। एक गहन शांति और शीतलता होती है। ध्यान की गंध होती है। अनासक्ति का रस होता है। विराग की वीणा बजती है।
तो संन्यासी से ज्यादा सुंदर कोई व्यक्ति कभी होता ही नहीं। इसलिए तो बुद्धों के सौंदर्य को, सदियां बीत जाती हैं, भूला नहीं जा सकता। और जितनी स्त्रियां संन्यासियों के सौंदर्य पर मोहित होती हैं, उतनी किसी के सौंदर्य पर मोहित नहीं होतीं। महावीर के भिक्षु थे दस हजार, भिक्षुणियां थीं तीस हजार। वही अनुपात बुद्ध का था। वही अनुपात जीसस का भी था। जहां एक पुरुष आया, वहां तीन स्त्रियां आयीं। इतना, तीन गुना फर्क था। स्वभावतः स्त्रियां निष्कलुष सौंदर्य को जल्दी परख पाती हैं, ज्यादा आंदोलित हो जाती हैं, ज्यादा भावाविष्ट हो जाती हैं।
उस वेश्या ने इस भिक्षु को कहा, इस वर्षाकाल तुम मेरे घर रुक जाओ। चार महीने वर्षा के बौद्ध भिक्षु निवास करते थे एक स्थान पर। तो उसने कहा, इस वर्षाकाल तुम मेरे घर रुक जाओ। मैं सब तरह तुम्हारी सेवा करूंगी। उस भिक्षु ने कहा, मैं जाकर अपने गुरु को पूछ लूं। कहा उन्होंने, कल हाजिर हो जाऊंगा। नहीं कहा, तब मजबूरी है।
भिक्षु ने जाकर बुद्ध को पूछा भरी सभा में, उनके दस हजार भिक्षु मौजूद थे, उसने खड़े होकर कहा कि मैं एक गांव में गया, एक बड़ी सुंदर स्त्री ने निमंत्रण दिया है। दूसरे भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि क्षमा करना, वह सुंदर स्त्री नहीं है, वेश्या है। सारे भिक्षुओं में खबर पहुंच गयी थी। सारे भिक्षु उत्तेजित हो रहे थे। उस भिक्षु ने कहा, मुझे कैसे पता हो कि वह वेश्या है या नहीं है? फिर इससे मुझे प्रयोजन क्या? उसने निमंत्रण दिया है, आपकी आज्ञा हो तो चार महीने उसके घर वर्षाकाल निवास करूं। आपकी आज्ञा न हो तो बात समाप्त हो गयी।

और बुद्ध ने आज्ञा दी कि तू वर्षाकाल उसके घर बिता। आग लग गयी और भिक्षुओं में। उन्होंने कहा, यह अन्याय है। यह भ्रष्ट हो जाएगा। फिर तो हमें भी इसी तरह की आज्ञा चाहिए। बुद्ध ने कहा, इसने आज्ञा मांगी नहीं है, मुझ पर छोड़ी है। इसने कहा नहीं है कि चाहिए। और मैं इसे जानता हूं। चार महीने बाद सोचेंगे। जाने भी दो। अगर वेश्या इसके संन्यास को डुबा ले, तो संन्यास किसी काम का ही न था। अगर यह वेश्या को उबार लाए, तो ही संन्यास का कोई मूल्य है। तुम्हारे संन्यास की नाव में अगर एक वेश्या भी यात्रा न कर सके, तो क्या मूल्य है!
वह भिक्षु वेश्या के घर चार महीने रहा। चार महीने बाद आया तो वेश्या
भी पीछे चली आयी। उसने दीक्षा ली, वह संन्यस्त हुई। बुद्ध ने पूछा, तुझे किस बात ने प्रभावित किया? उस वेश्या ने कहा, आपके भिक्षु के सतत अप्रभावित रहने ने। आपका भिक्षु किसी चीज से प्रभावित होता ही नहीं मालूम पड़ता। जो मैंने कहा, उसने स्वीकार किया। संगीत सुनने को कहा, तो सुनने को राजी। नृत्य देखने को कहा, तो नृत्य देखने को राजी। जैसे कोई चीज उसे छूती नहीं।
भीतर घाव न हो तो कोई चीज छूती नहीं।
अगर तुमने धर्म को स्थान-परिवर्तन समझा--वेश्या का मुहल्ला छोड़ दिया, क्योंकि डर है; बाजार छोड़ दिया, क्योंकि धन में लोभ है; भाग खड़े हुए हिमालय पर--तो माना परिस्थितियों से तो हट जाओगे, घावों का क्या करोगे? चोट तो न लगेगी घाव पर, सच। ठीक। जहर से तो हट जाओगे, लेकिन घाव का क्या करोगे? घाव तो बना ही रहेगा। भीतर ही भीतर रिसता ही रहेगा। प्रतीक्षा करेगा। कभी भी जब भी अवसर आएगा जहर को फिर छूने का, घाव फिर विषाक्त हो जाएगा।
बुद्ध का जोर है, कृष्ण का जोर है, घाव को भर लो। तुम्हारे भीतर घाव न हो, तुम छिद्र मुक्त हो जाओ, फिर जहां भी हो, रहो। फिर नर्क भी तुम्हारे लिए नर्क नहीं, और संसार भी तुम्हारे लिए निर्वाण है।
बिना ध्यान के क्रिया अधूरी
बन पाती अनिमेष नहीं
अंतरमुख होते ही सन्मुख
रह जाता परिवेश नहीं
वही साध्य तक पहुंचा, रहते
जो शरीर, अशरीर हुआ
अंतरमुख होते ही सन्मुख
रह जाता परिवेश नहीं
तुम जैसे ही भीतर मुड़े, संसार गया।
अंतरमुख होते ही सन्मुख
रह जाता परिवेश नहीं
फिर बाहर तो खो गया। तुम भीतर मुड़े, संसार गया।
बिना ध्यान के क्रिया अधूरी
और ध्यान का अर्थ है, अपने भीतर ठहर जाना। करो कुछ भी, ठहरे रहो भीतर। चलने दो झंझावात, आंधियां और तूफान बाहर, तुम भीतर मत कंपो, निष्कंप रहो वहां।
वही साध्य तक पहुंचा, रहते
जो शरीर, अशरीर हुआ
और अगर तुम भीतर डूबे, तो तुम पाओगे, शरीर में रहते ही अशरीर हो गए। जहां तुमने अशरीर-भाव जाना, वहीं तुम घाव से मुक्त हो गए। क्योंकि घाव तो शरीर में ही लग सकते हैं, आत्मा में तो कोई घाव लगते नहीं। शरीर में ही जहर व्याप्त हो सकता है, आत्मा में तो कोई जहर व्याप्त होता नहीं। तो जिसने जाना कि मैं आत्मा हूं, जिसने ध्याना कि मैं आत्मा हूं, अब पापों के मध्य में भी खड़ा रहे तो कमलवत। पानी उसे छुएगा भी नहीं।
"जो शुद्ध है, निर्मल है, ऐसे निर्दोष पुरुष को जो दोष लगाता है, उस मूढ़
का पाप उसको ही लौटकर लगता है, जैसे कि सूक्ष्म धूल हवा के आने के रुख पर फेंकने से फेंकने वाले पर ही पड़ती है।"

तुम चिंता न करो। कोई गाली देगा, यह तुम्हारे परेशान होने की कोई जरूरत नहीं। यह गाली उस पर ही लौट जाएगी। तुम्हारा निर्दोष होना काफी है। यह गाली अपने आप ही वापस लौट जाएगी।
बुद्ध कहते हैं, जैसे सूक्ष्म धूल हवा के आने पर फेंकने वाले के मुख
पर ही वापस लौट जाती है। या जैसे कोई आकाश पर थूकता है, तो थूक अपने ही ऊपर गिर जाता है। लोग गालियां तो देते रहेंगे। तुम्हारे कारण गालियां नहीं देते, उनके भीतर गालियां हैं, वे करें भी क्या? उनके भीतर बड़ा ज्वर है, बड़ा बुखार है, वे बड़े दुख और पीड़ा से भरे हैं, वे अपनी पीड़ा को फेंकते रहते हैं-- थोड़े हल्के हो लेने के ख्याल से।
माहे-नौ पर भी उठी हैं हर तरफ से उंगलियां
जो कोई दुनिया में आया उसकी रुसवाई हुई
नए चांद पर भी, जो अभी-अभी पैदा हुआ है, जिसने अभी कुछ किया ही नहीं! माहे-नौ पर भी उठी हैं हर तरफ से उंगलियां
पहले दिन के चांद पर भी उंगलियां उठ जाती हैं।
जो कोई दुनिया में आया उसकी रुसवाई हुई
और इस दुनिया में जो भी आएगा, लोग उस पर धूल फेंकेंगे। इसलिए नहीं कि उसने कुछ धूल फेंके जाने का कारण पैदा किया था; नहीं, लोगों के हाथ में धूल है। लोगों के हाथ में कुछ और नहीं है। लोगों के हाथ में फूल नहीं हैं, धूल है। वे फेंकेंगे। इससे निर्दोष चित्त व्यक्ति को चिंतित होने का कोई कारण नहीं।
वस्तुतः, निर्दोष चित्त व्यक्ति अत्यंत दया अनुभव करता है, जब कोई उसे गाली देता है, क्योंकि यह गाली इसी पर लौटकर पड़ेगी। उसके मन में बड़ी करुणा उठती है, जब किसी को वह आकाश पर थूकते देखता है, क्योंकि यह थूक इसी पर वापस आ जाएगा।
जब तुम तुम्हारी की गयी निंदा से आंदोलित हो जाते हो, तो तुम स्वीकार
कर लेते हो कि निंदा ठीक थी। सोचो, झूठ से कोई परेशान नहीं होता। सच से ही लोग परेशान होते हैं। अगर किसी ने कहा कि तुम बेईमान हो, तो तुम परेशान तभी होते हो जब तुम पाते हो कि तुम बेईमान हो। अगर तुम्हें अपनी ईमानदारी पर सहज भरोसा है, तो तुम हंसकर गुजर जाते हो। या तो इस आदमी के समझने में कोई भूल हो गयी, या यह आदमी जानकर ही कुछ जाल फेंक रहा होगा, लेकिन इससे तुम्हारा क्या लेना-देना? तुम उन्हीं चीजों से पीड़ित होते हो जिनको तुमने छिपा रखा है। तुम बेईमान हो और तुमने ईमानदारी का पाखंड बना रखा है। तो कोई अगर बेईमान कह दे, तो घाव को छू देता है। ऐसे घाव को छू देता है जिसे तुम छिपा रहे थे।
मैंने सुना है कि एक चर्च में एक पादरी लोगों को उपदेश दे रहा था। दस महाआज्ञाओं के संबंध में बोल रहा था। एक मजाकिए ने मजाक किया। उसने एक चिट्ठी लिखकर भेज दी। चिट्ठी पर लिखा था कि सब पता चल गया है, अब तुम जल्दी भाग खड़े होओ। वह पादरी को एक चिट्ठी लिखकर भेज दी कि सब पता चल गया है, अब तुम जल्दी भाग खड़े होओ। उस पादरी ने चिट्ठी पढ़ी, जल्दी से उसने बाइबिल बंद की और उसने कहा कि मुझे जरूरी काम आ गया है, मैं घर जा रहा हूं; वह नदारद ही हो गया। लोगों ने पूछा कि मामला क्या है? उसके घर गए, वह तो घर से भी सामान लेकर भाग खड़ा हुआ था।
उस मजाकिए से पूछा कि तुमने लिखकर क्या भेजा था? उसने कहा कि मैं खुद
ही चकित हूं। मैंने तो सिर्फ मजाक किया था। यह इतनी बड़ी ज्ञान की बातें कर रहा है--महाआज्ञाएं, दस आज्ञाएं, और यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो--मैंने तो सिर्फ मजाक किया था। वह तो भाग ही गया। मुझे भी पता नहीं कि इसने किया क्या है?
तुम कभी कोशिश करना, दस मित्रों को--कोई भी दस मित्रों को--कार्ड लिख
दो दस कि सब पता चल गया है, अब तुम भाग खड़े होओ।
सभी कुछ न कुछ कर रहे हैं। किसी तरह छिपाए हुए हैं। तुम अंधेरे में भी टटोलो तो भी उनके घाव पर हाथ पड़ जाएगा। घाव तो हैं ही।
इसीलिए तो कभी-कभी तुम्हारे बिल्कुल निर्दोष से दिए गए वक्तव्य लोगों को भारी चोट पहुंचा देते हैं। तुम चौंकते हो कि मैंने ऐसी कुछ खास

बात तो न कही थी, यह आदमी इतना उत्तेजित क्यों हो गया? तुमने न कही हो खास बात, लेकिन उसने कुछ खास बात छिपा रखी थी। तुम्हें पता न हो, उसे तो पता है।
तुमने अनजाने ही कोई नाजुक स्थान छू दिया।
इसे आत्म-निरीक्षण बनाओ। जब भी कोई बात किसी की तुम्हें छू जाए, तो उसकी फिकर छोड़ो, तुम अपने भीतर का घाव खोजो। उस घाव को ही भर लेना साधना है।
लाग हो तो हम उसे समझें लगाव
जब न हो कुछ भी तो धोखा खाएं क्या
लाग हो तो हम उसे समझें लगाव--दुश्मनी हो तो भी समझ लें कि दोस्ती है। किसी से घृणा हो तो भी मान लें कि प्रेम है।
लाग हो तो हम उसे समझें लगाव
इतने से भी मान लेने के लिए सुविधा है।
जब न हो कुछ भी तो धोखा खाएं क्या
जब घृणा भी न हो, प्रेम की तो बात ही छोड़ो, घृणा भी न हो; लगाव तो छोड़ो, लाग भी न हो; मित्रता तो दूर, शत्रुता भी न हो; तो धोखा खाने का उपाय क्या है?
जैसे-जैसे तुम भीतर जागकर अपने घावों को देखोगे और अपने घावों को छिपाओगे न, वरन उघाड़ोगे धूप में, हवाओं में, क्योंकि धूप और हवाओं में उघाड़े घाव भर जाते हैं, छिपाए घाव अंततः नासूर बन जाते हैं। लेकिन हमारी सारी प्रक्रिया यह है कि हम अपनी भूलों को छिपाते हैं। और छिपाने के कारण ही हम उनके नासूर बना लेते हैं। उघाड़ो। प्रगट करो। दबाओ मत। किसका भय है? और जिनसे तुम भयभीत हो रहे हो, उनसे कुछ भी छिपा नहीं है।
यह बड़े आश्चर्य की बात है, चमत्कार की, कि हर आदमी सोचता है उसने सब छिपा लिया है, हालांकि किसी से कुछ छिपा नहीं है। खुद ही सोचता रहता है कि मैंने छिपा लिया है, किसी को पता नहीं; लेकिन सभी को पता है। तुम अपने को ही धोखा दे लेते हो, किसी और को धोखा नहीं दे पाते। तुमने जो भी छिपाया है, वह तुम्हारे रग-रग से उदघोषित होता रहता है।
प्रत्येक व्यक्ति बड़ी सूक्ष्म तरंगों से अपने भीतर की अंतर्निहित स्थितियों की घोषणा करता रहता है। तुम एक ब्राडकास्ट हो। तुम छिपा नहीं सकते। तुम दुखी हो, तुम कितना ही मुस्कुराओ, तुम्हारी मुस्कुराहट से दुख जाहिर होगा। तुम क्रोधी हो, तुम कितना ही शांत भाव बनाओ, तुम्हारे शांत भाव के नीचे क्रोध की छाया होगी। तुम जितना बचाने की कोशिश करोगे, उतने ही उलझोगे। बचाने से कोई कभी नहीं बचा है।
जीवन का शास्त्र कहता है, उघाड़ो! ताकि घाव भर जाएं। तुम अपनी तरफ से ही
कह दो। समस्त धर्मों ने उघाड़ने पर जोर दिया है। जिसके पास भी तुम उघाड़ सको। ईसाइयों में कन्फेशन की व्यवस्था है। जाओ, जिसके प्रति तुम्हें भरोसा हो, अपने हृदय को उघाड़ दो। उघाड़ने से हृदय भरता है। जैसे ही तुम कह देते हो अपने घाव, तुम हल्के हो जाते हो। छिपाने को कुछ न बचा--बोझ न रहा। सदगुरु का यही मूल्य था कि उसके पास तुम्हारी इतनी निष्ठा थी कि तुम
सब कुछ खोलकर रख सकते थे। तुम सदगुरु के सामने अपने हृदय को नग्न कर सकते थे, निर्वस्त्र कर सकते थे। कोई चिंता न थी कि वह तुम्हारी निंदा करेगा। कोई चिंता न थी कि तुम कहोगे कि मैं पापी हूं, तो वह कहेगा कि तुम बुरे हो। कोई चिंता न थी कि तुम कहो कि मैंने चोरी की है, तो उसकी आंखों में तुम्हें नरक में डालने का भाव उठेगा। कोई चिंता न थी।
सदगुरु का अर्थ ही यह था--जिसकी अनुकंपा अपार है। तुम कुछ भी कहो, वह क्षमा कर सकेगा। तुम कुछ भी कहो, वह समझेगा कि मनुष्य दुर्बल है। वह समझेगा कि ऐसी भूलें मुझसे हुई हैं। वह समझेगा कि जो भूल कोई भी मनुष्य कर सकता है, वह मुझसे भी हुई हैं। उसने अपने को जानकर मनुष्यता की पूरी कमजोरी पहचान ली। और जिसने मनुष्य की कमजोरी पहचान ली, उसने मनुष्य की गरिमा भी पहचान ली। क्योंकि एक छोर कमजोरी है, दूसरी छोर गरिमा है। इधर मनुष्य पापी से पापी हो सकता है, उधर मनुष्य पुण्यात्मा से पुण्यात्मा हो सकता है। गिरे, तो अंधकार से अंधकार, अमावस से अमावस में उतर जाए; उठे, तो पूर्णिमा का चांद उसका ही है।

"मरणोपरांत कोई गर्भ में उत्पन्न होते हैं, कोई पापकर्म करने वाले नर्क में जाते हैं, कोई सुगति करने वाले स्वर्ग और कोई अनाश्रव पुरुष परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।"
मृत्यु के बाद! मृत्यु तो सभी की घटती है। मरना तो सभी को पड़ता है। मृत्यु तो सभी को एक ही चौराहे पर ले आती है। लेकिन मृत्यु से रास्ते अलग होते हैं। कुछ वापस उन्हीं गर्भों में आ जाते हैं जहां पिछले जन्मों में थे। उनका जीवन एक पुनरुक्ति है। उनके जीवन में कुछ नए का आविर्भाव न हुआ। उन्होंने कुछ नया न सीखा। उन्होंने जीवन से कोई नया पाठ न लिया। उन्हें फिर वापस उसी क्लास में भेज दिया गया। कुछ हैं, जो जीवन से बड़ी सुख की संभावनाएं लेकर आए। जिन्होंने अपने को बचाया, सुरक्षा की। संपदा को खोया नहीं। उनके लिए स्वर्ग है। स्वर्ग का अर्थ है, उनके लिए सुख के द्वार खुले हैं। कुछ हैं, जिन्होंने सब गंवाया, दीए बुझा दिए सब, अंधेरी अमावस ही लेकर आए। उनके लिए नर्क है।
यहां ध्यान रखना, बुद्ध का जोर इस बात पर है कि नर्क-स्वर्ग कोई तुम्हें देता नहीं, तुम्हीं अर्जित करते हो। तुम्हीं मालिक हो। तुम्हारी मर्जी है, तुम्हारा चुनाव है। कोई परमात्मा नहीं है जो तुम्हें नर्कों में डाल दे। इसलिए प्रार्थनाओं से कुछ भी न होगा। यह मत सोचना कि पाप करते रहेंंगे और प्रार्थना कर लेंगे। यह मत सोच लेना कि पाप कर लेंगे, फिर क्षमा मांग लेंगे। यह मत सोचना कि खुदा तो गफूर है। यह मत सोचना कि वह बड़ा करुणावान है, तो वह क्षमा कर देगा। वहां कोई भी नहीं है, जो तुम्हारे कृत्य को बदल दे; तुम्हारे अतिरिक्त।
तो पाप किया है, तो प्रार्थना से तुम उसे काट न सकोगे। पाप किया है, तो होश से काटना पड़ेगा। इसलिए बुद्ध धर्म में प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। ध्यान की जगह है। ध्यान का अर्थ है--होश। प्रार्थना का अर्थ है--परमात्मा की करुणा को पुकारना। कहीं अस्तित्व से तुम कुछ सहारा न पा सकोगे। कोई रिश्वत देने का उपाय नहीं है। कोई स्तुति काम न आएगी, कोई खुशामद काम न पड़ेगी।
बुद्ध यह कह रहे हैं कि तुम अपने कृत्य को बहुत सोचकर करना, क्योंकि तुम्हारा कृत्य ही अंतिम रूप से निर्णायक है। तुम्हारे कृत्य को काटने वाला कोई भी नहीं है। तुम्हीं काटोगे, कटेगा। तुम्हीं बनाओगे, बनेगा।
इस पथ के हर राही का विश्वास अलग है
सबका अपना प्याला अपनी प्यास अलग है
जीवन के चौराहे खंडहर पर मिलते हैं
पतझड़ सबका एक, महज मधुमास अलग है
मौत तो सबकी एक है, लेकिन जीवन सबका अलग है।
पतझड़ सबका एक, महज मधुमास अलग है
लेकिन वसंत सबका अलग है।
सभी लोग एक से मरते दिखायी पड़ते हैं। श्वास रुक जाती है। अगर चिकित्सक से पूछो, तो संत के मरने में और पापी के मरने में कोई फर्क न कर सकेगा। लेकिन बुद्धपुरुषों से पूछो, तो बड़ा फर्क है। पापी के लिए उपाय है कि या तो वह पुनरुक्त करेगा--जो किया वही फिर दोहराएगा--या और भी नीचे उतर जाएगा। जो किया उससे भी नीचे गिर जाएगा। जिस कक्षा में बैठा था उससे भी नीचे उतार दिया जाएगा। फिर पुण्यात्मा है, जिसने जीवन में संपदा को गंवाया नहीं, बचाया, सुरक्षित किया। उसके लिए महासुख का द्वार है। उसके जीवन में वसंत आएगा, मधुमास आएगा। और सबसे पार बुद्धपुरुष हैं। उनके लिए न स्वर्ग है, न नर्क है।
पश्चिम में यह बात समझनी बड़ी मुश्किल होती है। पश्चिम के धर्म स्वर्ग
और नर्क के ऊपर कोई श्रेणी नहीं जानते। लेकिन पूरब के सभी धर्म स्वर्ग और नर्क को अंतिम नहीं मानते, स्वर्ग और नर्क को भी संसार का ही हिस्सा मानते हैं। फिर एक आखिरी श्रेणी है, जहां आदमी दुख के तो पार हो ही जाता है, सुख के भी पार हो जाता है। क्योंकि जब तक सुख है तब तक दुख की संभावना है। जब तक संपदा है तब तक खोने का डर है। एक ऐसी घड़ी चाहिए जहां कोई सुख भी न हो। दुख

तो गया दूर, सुख भी दूर जा चुका। एक ऐसी परम विश्रांति, एक परम उपशांत दशा चाहिए, जहां सुख भी अड़चन न डाले।
हम तो अभी दुख से भी परेशान नहीं हैं। बुद्धपुरुष सुख से भी परेशान हो जाते हैं। हम तो अभी दुख से भी राजी हैं, बुद्धपुरुष सुख को भी उत्तेजना मानने लगते हैं, क्योंकि उसमें भी है तो उत्तेजना ही। तरंगें तो उठती हैं, व्याघात तो होता है। आंधी नहीं आती तो भी हवा तो चलती है, हल्के झकोरे तो आते हैं, कंपन तो होता है।
निष्कंप दशा।
तो बुद्ध कहते हैं उस दशा को, अनाश्रव पुरुष; ऐसे व्यक्ति जो परम रूप
से जागरूक हुए। जिनके न तो भीतर अब कुछ जाता है और न जिनके बाहर कुछ जाता है। जो परम स्थिरता को उपलब्ध हुए, स्थितिप्रज्ञ हुए, वे परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं। उनका फिर कोई आगमन नहीं। न नर्क में, न स्वर्ग में, न संसार में।
यहां एक बात बड़ी महत्वपूर्ण समझ लेने जैसी है। पुण्य का तुम्हें पता नहीं। सुख का तुम्हें पता नहीं। दुख का पता है, पाप का पता है। यह भी समझ में आ जाता है कि पाप से दुख मिलता है। तो भी एक बात मन में बड़ी गहरी बैठी है और वह यह कि तुम खाली न होना चाहोगे। अगर खाली होने और दुखी होने में चुनाव करना हो, तो तुम दुख को चुन लोगे। खाली होना दुख से भी बुरा लगता है। दुखी आदमी कहता है कि कम से कम दुख तो रहने दो, कुछ तो है। कोई तो बहाना है जीए जाने का। दर्द ही सही, कोई तो सहारा है। कुछ तो है जिसके आसपास उछल-कूद कर लेते हैं, आपाधापी कर लेते हैं। दुख भी न रहेगा, फिर क्या करेंगे?
तुम थोड़ा सोचो, तुम्हारी जिंदगी में जितने दुख हैं, जरा कल्पना करो, अगर वे गिर जाएं आज अचानक, तुम कल क्या करोगे? तुम बड़े खाली-खाली अनुभव करोगे। तुम वापस प्रार्थना करने लगोगे कि दुख दे दो, लौटा दो, कुछ तो था। उलझे थे, व्यस्त थे, करने को तो था। यह खालीपन तो काटेगा।
अधिक लोग इसीलिए पाप किए चले जाते हैं कि खाली होने के लिए तैयार नहीं
हो पाते। अधिक लोग इसीलिए दुख को भी पकड़े रहते हैं--चिल्लाते रहते हैं कि दुख न हो, दुख न हो--एक हाथ से हटाते हैं, दूसरे हाथ से खींचते रहते हैं; एक हाथ से काटते हैं, दूसरे हाथ से बोते रहते हैं, बीज फेंकते रहते हैं।
उनकी तकलीफ मैं समझता हूं। तकलीफ यह है कि खाली होना तो दुख से भी बदतर हो जाएगा। नरक ही सही, कुछ तो होगा। काम तो होगा। उलझे तो रहेंगे। व्यस्त तो रहेंगे। खालीपन तो बहुत घबड़ा देता है, वीराना मालूम होता है। बहुत बार ऐसी घड़ी आ जाती है जब तुम खाली होते हो, तब तुम कुछ भी करने को तैयार हो जाते हो। चलो ताश ही खेलो, जुआ ही खेलो, शराब ही पी लो, शराब पीकर लड़ाई-झगड़ा कर आओ, शोरगुल मचा दो, कुछ कर गुजरो।
तुमने कभी देखा कि जब तुम खाली होते हो, तो तुम कैसे बेचैन होने लगते हो! खाली होने की तैयारी करनी होगी, नहीं तो तुम दुख से कभी मुक्त न हो सकोगे। सुख का तुम्हें पता नहीं, पुण्य का तुम्हें पता नहीं। दुख का पता है, और कभी-कभी दो दुखों के बीच में खालीपन का पता है। खालीपन पर राजी होओ। कठिन है बहुत। मैं कल एक गीत पढ़ रहा था--
अब कभी शाम बुझेगी न अंधेरा होगा
अब कभी रात ढलेगी न सवेरा होगा
आस्मां आस लिए है कि यह जादू टूटे
चुप की जंजीर कटे, वक्त का दामन छूटे
दे कोई शंख दुहाई, कोई पायल बोले
कोई बुत जागे, कोई सांवली घूंघट खोले
एक ऐसी घड़ी आ जाती है खामोशी की, जब ऐसा डर लगने लगता है कि अब क्या होगा? ध्यान में न उतरने का कारण यही है कि ऐसा लगता है कि अब कहीं यह चुप्पी न टूटी तो क्या होगा? अब यह रात कैसे कटेगी? अब सुबह कैसे होगी? क्योंकि खामोशी में और शून्य में और रिक्तता में सब ठहर जाता है, समय रुक जाता है, घड़ी बंद हो जाती है।
अब कभी शाम बुझेगी न अंधेरा होगा
अब कभी रात ढलेगी न सवेरा होगा

आस्मां आस लिए है कि यह जादू टूटे
और घबड़ाहट होने लगती है कि यह क्या हुआ? यह कैसा तिलिस्म? यह कैसा जादू? यह किसने रोक दी सब सांसें?
आस्मां आस लिए है कि यह जादू टूटे
चुप की जंजीर कटे...
मौन भी जंजीर की तरह मालूम होता है कि कोई काट दे।
चुप की जंजीर कटे, वक्त का दामन छूटे
और किसी तरह समय फिर से चल पड़े।
दे कोई शंख दुहाई...
कुछ भी हो।
दे कोई शंख दुहाई, कोई पायल बोले
कोई बुत जागे, कोई सांवली घूंघट खोले
कुछ भी हो जाए, लेकिन कुछ हो। मनुष्य के जीवन में पाप और दुख की इतनी गहनता इसलिए है कि तुम खाली होने को जरा भी राजी नहीं। और जो खाली होने को राजी नहीं, वह कभी ध्यान को न पा सकेगा। और जिसने ध्यान न पाया, उसके जीवन में पुण्य की कोई संभावना नहीं। और जिसने पुण्य को ही न पाया, अनाश्रव तो बहुत दूर है! जो स्वर्ग को भी न पा सका, वह निर्वाण को कैसे पा सकेगा! दौड़ते रहते हैं हम जिंदगी में, पुनरुक्ति की भांति। पुरानी कथा वही- वही दोहरती रहती है। कुछ बातें ख्याल में लेना।
एक, जीवन को पुनरुक्ति से बचाने की कोशिश करो। अन्यथा मरते वक्त तुम इतनी पुनरुक्ति की आकांक्षा लेकर मरोगे कि फिर दोहर जाओगे। फिर यही रास्ते, फिर यही दुकानें, फिर यही बाजार, फिर यही घर, धन-दौलत, पत्नी, बच्चे, फिर यही खाते बही, फिर यही रोग, फिर यही दुख, सब पूरा का पूरा दोहर जाएगा। बुद्ध और महावीर दोनों ने बहुत जोर दिया है अपने साधकों के लिए कि वे पिछले जन्मों का स्मरण करें। सिर्फ एक कारण से, कि अगर पिछले जन्मों का स्मरण आ जाए, तो तुम्हें एक बात पता चलती है कि तुम पुनरुक्ति कर रहे हो। यही-यही तुम बहुत बार कर चुके हो। जैसे उसी फिल्म को फिर देखने चले गए। मैं एक आदमी को जानता हूं, मेरे एक मित्र के पिता हैं। जिस गांव में रहते हैं, वहां एक ही टाकीज है। और उनके पास कोई काम नहीं। दिन में तीन शो होते हैं, वे तीनों शो देखते हैं। एक फिल्म पांच-सात दिन चलती है, वे पांच-सात दिन देखते हैं। एक दफा उनके घर मेहमान था। मैंने पूछा कि गजब कर रहे हैं आप! एक ही फिल्म को दिन में तीन बार देख आते हैं। वे कहते हैं, कुछ करने को नहीं, घर में बैठे घबड़ा जाता हूं। चलो चल पड़े, टाकीज हो आए, देख आए। रोज उसी को देखते हैं पांच-सात दिन तक।
उनको देख कर, उनके चेहरे को देखकर मुझे लगा, यह आदमी की हालत है! यही फिल्म तुम बहुत बार देख चुके हो। यही यश तुम बहुत बार मांग चुके हो। यही काम, यही क्रोध तुम बहुत बार कर चुके हो, नया कुछ भी नहीं है।
तो बुद्ध और महावीर दोनों ने ऐसी प्रक्रियाएं खोजीं, जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने पिछले जन्मों के स्मरण में चला जाए। स्मरण आते ही भयंकर घबड़ाहट पकड़ लेती है कि यह मैं क्या कर रहा हूं वही-वही? वह तो हम भूल जाते हैं, तो सब लगता है फिर नया। फिर पड़े प्रेम में, फिर कोई पायल बोली, फिर तुमने समझा कि ऐसा प्रेम तो कभी हुआ ही नहीं। हुए होंगे मजनू, फरिहाद, हीर-रांझा, मगर मैं तो कभी नहीं हुआ। ऐसा प्रेम कभी नहीं हुआ। यह अनूठी घटना घट रही है।
तुम यह गोरखधंधा बहुत बार कर चुके हो। यह कुछ भी नया नहीं है। संसार बड़ा पुराना है। संसार सदा से प्राचीन है। इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो नया है। सूरज के तले कुछ भी नया नहीं। सब दोहर रहा है।
इस दोहरने की प्रतीति के ही कारण, इस देश में आवागमन से कैसे मुक्ति
हो इसका भाव उठा। संसार में कहीं भी नहीं उठा। क्योंकि संसार में कहीं भी पिछले जन्मों को स्मरण करने की प्रक्रिया और मनोविज्ञान नहीं खोजा गया।
इसलिए इस्लाम कहता है, एक ही जन्म है। ईसाइयत कहती है, एक ही जन्म है।
यहूदी कहते हैं, एक ही जन्म है। ये तीन धर्म हैं जो भारत के बाहर पैदा हुए।
बाकी सब धर्म भारत में पैदा हुए।

जो धर्म भारत में पैदा हुए, वे कहते हैं, पुनर्जन्म है। अनंतशृंखला है। अनंतशृंखला के कारण भारत को एक बात समझ में आनी शुरू हुई कि यह तो पुनरुक्ति है, यह तो चाक का घूमना है। फिर वही आरे ऊपर आ जाते हैं, फिर नीचे चले जाते हैं, फिर ऊपर आ जाते हैं। बड़ी ऊब पैदा हो गयी। और जिस व्यक्ति को जीवन से ऊब पैदा हो जाए, वही जीवन से मुक्त होता है।
तो पुनरुक्ति मत करो। कल जो क्रोध किया था, काफी कर लिया, अब दुबारा मत करो। कल यश मांगा था, खूब मांग लिया, क्या पाया? अब मत मांगो। कल तक धन के लिए दौड़े, अब रुको। धीरे-धीरे पुनरुक्ति से अपने हाथों को छुड़ाओ। मरने के पहले पुनरुक्ति से अपने को छुड़ा लेना, अन्यथा मरकर तुम फिर पुनरुक्त हो जाओगे। क्योंकि मरते क्षण जो आकांक्षा होगी, वही तुम्हारे नए जन्म की शुरुआत हो जाती है।
"मरणोपरांत कोई गर्भ में उत्पन्न हो जाता है, कोई पाप कर्म करने वाले नरक में चले जाते हैं, कोई सुगति वाले स्वर्ग को जाते हैं।"
स्वर्ग और नर्क भावदशाएं हैं। मरने के बाद जिस व्यक्ति ने जीवन में कष्ट ही कष्ट, दुख ही दुख का अभ्यास किया है, वह एक महान दुखांत नाटक में पड़ जाता है मन के। भयंकर दुख और पीड़ा में पड़ जाता है। उसका मन, जिसको दुख-स्वप्न कहते हैं, उससे गुजरता है। वह दुख-स्वप्न अंतहीन मालूम होता है। नर्क कहीं है नहीं। नर्क केवल तुम्हारा एक दुख-स्वप्न है। तुम्हारे जीवनभर के दुखों की तुमने जो अनुभूति इकट्ठी कर ली है, उसमें से पुनः गुजर जाने का नाम है।
जिस व्यक्ति ने जीवनभर अहोभाव से जीया, बुरा न किया, बुरा न सोचा, बुरा
न हुआ, और जिसने घाव न बनाए, जिसने अपने को सावधान रखा, सावचेत रखा, वह मरने के बाद एक बड़े मधुर स्वप्न से गुजरता है। वह मधुर स्वप्न ही स्वर्ग है। वह भी अंतहीन मालूम होता है।
लेकिन चाहे नर्क से गुजरो, चाहे स्वर्ग से गुजरो, वह स्वप्न ही है। अंततः फिर तुम्हें वापस लौट आना पड़ता है। कितना ही लंबे सुख में रहो, संसार में फिर वापस लौट आते हो। चुक जाता है पुण्य भी, पाप भी।
इसलिए एक नया अनुभव भारत में पैदा हुआ, और वह यह था कि सुख के पार जाना है, जो कभी न चुके। एक ऐसी अवस्था खोजनी है चैतन्य की, जिससे कोई गिरना न हो। एक ऐसा अतिक्रमण, एक ऐसी परात्पर चैतन्य की दशा, जिससे फिर कोई नीचे उतरना न हो। उसे हम ब्रह्मभाव कहें--बुद्ध ने निर्वाण कहा, महावीर ने कैवल्य कहा--या जो भी नाम हमें प्रीतिकर हो।
"न अंतरिक्ष में, न समुद्र के गर्भ में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर--संसार में कोई स्थान नहीं है, जहां रहकर प्राणी पापकर्मों के फल से बच सके।"
पाप किया है, तो फल से बच न सकोगे। कोई प्रार्थना न बचाएगी। कोई पूजागृह न बचाएगा।
बुद्ध कहते हैं, "न अंतरिक्ष में, न समुद्र के गर्भ में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर--संसार में कोई स्थान नहीं है, जहां रहकर प्राणी पापकर्मों के फल से बच सके।"
न अंतरिक्ष में, न समुद्र के गर्भ में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर--संसार में कोई स्थान नहीं है, जहां घुसकर मृत्यु से मनुष्य बच सके। पाप का फल आएगा। पाप में आ ही गया है। तुम्हें थोड़ी देर लगेगी पहचानने में। फिर करना क्या है?
बुद्ध कहते हैं, पाप के फल से बचो मत। उसके, पाप के फल को निष्पक्ष भाव
से भोग लो। यह बड़ा कीमती सूत्र है। तुमने कुछ किया, अब उसका दुख आया, इस दुख को तटस्थ भाव से भोग लो! अब आनाकानी मत करो। अब बचने का उपाय मत खोजो। क्योंकि बच तुम न सकोगे। बचने की कोशिश में तुम और लंबा दोगे प्रक्रिया को। तुम इसे भोग लो जानकर कि मैंने किया था, अब फल आ गया। फसल बो दी थी, अब काटनी है; काट लो। लहूलुहान हों हाथ, पीड़ा हो, होने दो। लेकिन तुम तटस्थ भाव से--इसे ख्याल में रखना--तटस्थ भाव!
अगर तुमने इस फल के प्रति कोई भाव न बनाया, तुमने यह न कहा कि मैं नहीं भोगना चाहता, यह कैसे आ गया मेरे ऊपर, यह तो जबर्दस्ती है, अन्याय है--

क्योंकि ऐसी तुमने कोई भी प्रतिक्रिया की तो तुमने आगे के लिए फिर नया कर्म बो दिया। तुम कुछ मत कहो। तुम इतना ही कहो कि मैंने किया था, उसका फल मुझे मिल गया, निपटारा हुआ। सौभाग्यशाली हूं! बात खतम हुई।
बुद्ध के ऊपर एक आदमी थूक गया। उन्होंने पोंछ लिया। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया। बुद्ध ने कहा, तू फिक्र मत कर। मैं तो खुश हुआ था कि चलो निपटारा हुआ। किसी जन्म में तेरे ऊपर थूका था, राह देखता था कि तू जब तक न थूक जाए, छुटकारा नहीं है। तेरी प्रतीक्षा कर रहा था। तू आ गया, तेरी बड़ी कृपा! बात खतम हो गयी। अब मुझे इस सिलसिले को आगे नहीं ले जाना है। अब तू यह बात ही मत उठा। हिसाब-किताब पूरा हो गया। तेरी बड़ी कृपा है!
जो भी आए, उसे शांत भाव से स्वीकार कर लो। उसे गुजर जाने दो। अब कोई नया संबंध मत बनाओ, कोई नयी प्रतिक्रिया मत करो, ताकि छुटकारा हो, ताकि तुम वापस बाहर निकल आओ। धीरे-धीरे ऐसे एक-एक कर्म से व्यक्ति बाहर आता जाता है। और एक ऐसी घड़ी आती है कि सब हिसाब पूरा हो जाता है। तुम पार उठ जाते हो, तुम्हें पंख लग जाते हैं। तुम उस परम दशा की तरफ उड़ने लगते हो। जब तक कर्मों का जाल होगा, तुम्हारे पंख बंधे रहेंगे जमीन से। तुम आकाश की तरफ यात्रा न कर सकोगे।
मृत्यु से भी बचने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए बचने की चेष्टा छोड़ो। जिससे बचा न जा सके, उससे बचने की कोशिश मत करो। उसे स्वीकार करो। स्वीकार बड़ी क्रांतिकारी घटना है। बुद्ध ने इसके लिए खास शब्द उपयोग किया है-- तथाता। तथाता का अर्थ हैः जो है, मैं उसे स्वीकार करता हूं। मेरी तरफ से कोई इनकार नहीं। मौत है, मौत सही। मेरी तरफ रत्तीभर भी इनकार नहीं कि ऐसा न हो, या अन्यथा होता। जैसा हो रहा है, वैसा ही होना था, वैसा ही होगा। मुझे स्वीकार है। मेरी तरफ से कोई विरोध नहीं, कोई प्रतिरोध नहीं। मेरी तरफ से कोई निर्णय नहीं। मेरी तरफ से कोई निंदा, प्रशंसा नहीं।
ऐसी शांत दशा में जो जीवन के सुख-दुखों को स्वीकार कर लेता है, जीवन-मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, वह जीवन-मृत्यु के पार हो जाता है। आवागमन उसे वापस नहीं खींच पाता। वह आकाश का हो जाता है।
इस परम वीतराग दशा को हमने लक्ष्य माना था। जीवन का लक्ष्य है, जीवन
और मृत्यु के पार हो जाना। वही सुख सुख है, जो दुख और सुख दोनों के पार है। ऐसी दशा ही अमृत है, जहां न तो मृत्यु आती अब, और न जीवन आता।
भारत की इस खोज को अनूठी कहा जा सकता है। क्योंकि पश्चिम में, और मुल्कों में, और संस्कृतियों-सभ्यताओं ने हजार-हजार लक्ष्य खोजे हैं मनुष्य के जीवन के, लेकिन जीवन के पार हो जाने का लक्ष्य सिर्फ भारत का अनुदान है। और थोड़ा ध्यान करोगे इस पर, तो समझ में आएगा कि जीवन का जिसने उपयोग इस तरह कर लिया कि सीढ़ी बना ली और जीवन के भी पार हो गया। मृत्यु पर भी पैर रखा, जीवन पर भी पैर रखा, द्वंद्व के पार हो गया--निर्द्वंद्व हो गया।
एक तरफ से लगेगा कि यह तो शून्य की दशा होगी--है। और जब इसका अनुभव करोगे, तो पता चलेगा कि यही ब्रह्म की भी दशा है। शून्य और पूर्ण एक के ही नाम हैं। तुम्हारी तरफ से देखो, तो ब्रह्म शून्य जैसा मालूम होता है। बुद्धों की तरफ से देखो, तो शून्य ब्रह्म जैसा मालूम होता है। क्योंकि शून्य इस जगत में सबसे बड़ा सत्य है।
और इस शून्य की तरफ जाना हो, तो शांति को साधना। शांति धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर शून्य को सघन करेगी। तुम्हारे भीतर अनंत आकाश उतर आएगा।
तुम खोते जाओगे। सीमाएं विलीन होती जाएंगी। कोरे दर्पण रह जाओगे। उस कोरे दर्पण का नाम बुद्धत्व है। और उस बुद्धत्व को पा लेने का जो उपाय है, उसको एस धम्मो सनंतनो कहा है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
सैंतालीसवां प्रवचन

अकेलेपन की गहन प्रतीति है मुक्ति

पहला प्रश्नः हम तो जीते-जी और सोते-जागते भय और अपराध-भाव के द्वारा अशेष नारकीय पीड़ा से गुजर चुकते हैं। क्या यह काफी नहीं है? कि मरने के बाद फिर हमें नर्क भेजा जाए!

पहली बात, कोई भेजने वाला नहीं है। कोई भेजता नहीं। तुम जाते हो।
इसे बहुत ठीक से समझ लो। अन्यथा बुद्ध के दृष्टिकोण को पकड़ न पाओगे। बुद्ध के दृष्टिकोण में जो अत्यंत आधारभूत बात है, वह यह है--धर्म, ईश्वर से शून्य। अगर तुम किसी भांति ईश्वर को पकड़े रहे, तो बुद्ध के धर्म को समझ न पाओगे। ईश्वर के बहाने तुमने किसी दूसरे पर दायित्व छोड़ा है। तुम कहते हो, दुख तो हम भोग चुके बहुत, अब हमें नर्क न भेजा जाए--जैसे तुम्हें कोई भेजने वाला है! कि प्रार्थना और पूजा हमने इतनी की, अब हमें स्वर्ग भेजा जाए--जैसे कि कोई पुरस्कार बांट रहा है। वहां कोई भी नहीं है। बुद्ध कहते हैं, तुम अकेले हो। और तुम्हें इस अपने अकेलेपन को इसकी समग्रता में स्वीकार कर लेना है। इस अकेलेपन की गहरी प्रतीति से ही मुक्ति होगी। क्योंकि जब तक दूसरा है और दूसरे पर टालने की सुविधा है, तब तक तुम बंधे ही रहोगे। कभी संसार तुम्हें बांधेगा और कभी धर्म तुम्हें बांध लेगा। लेकिन बांधने का सूत्र है कि कोई दूसरे पर तुम जिम्मेवारी टालते हो। भगवान है। वही करवा रहा है तो तुम कर रहे हो। वही जहां भेजेगा, वहीं तुम जाओगे। वह सुख देगा तो सुख, दुख देगा तो दुख। तुम अपने ऊपर दायित्व नहीं लेना चाहते। तुम उस जिम्मेदारी से घबड़ाते हो, जो स्वतंत्रता लाती है।
बुद्ध मनुष्य को अंतिम महिमा मानते हैं। उसके ऊपर कोई महिमा नहीं है।
और मनुष्य की स्वतंत्रता ही उसके परमात्मा होने का उपाय है।
इसे ऐसा समझो, बहुत विरोधाभासी लगेगा, बुद्ध यह कह रहे हैं कि अगर परमात्मा को माना तो कभी परमात्मा न हो सकोगे। तुम्हारी मान्यता ही बाधा बन जाएगी।
हटाओ दूसरे को। अकेले होने को राजी हो जाओ। अगर दुख है, तो जानो कि तुम्हीं कारण हो। कोई और कारण नहीं। अगर सुख चाहते हो, तो प्रार्थना से न मिलेगा, पूजा से न मिलेगा, सृजन करना होगा। फसल काटनी है, बीज बोने होंगे। स्वादिष्ट आमों की अपेक्षा है, तो आम के बीज बोने होंगे। तुम नीम के बीज बोए चले जाओ और आम पाने की आकांक्षा किए जाओ और बीच में परमात्मा का बहाना बनाए रखो, यह न चलेगा।
तो पहली तो बात यह समझ लो कि कोई है नहीं जो तुम्हें भेजता है। शायद यह किसी की धारणा के कारण ही तुम अब तक सम्हल न पाए और तुमने अपने पैरों पर ध्यान न दिया और न अपनी दिशा का चिंतन किया, न अपने को जगाया। तुम गाफिल से रहे, मूर्च्छित से चले। तुमने सदा यह सोचा कि जो करवा रहा है, हो रहा है। और प्रार्थना कर लेंगे, समझा लेंगे, बुझा लेंगे, रो लेंगे, मना लेंगे, परमात्मा करुणावान है। यह करुणा की धारणा भी तुम्हारी धारणा है। परमात्मा महा-उद्धारक है, यह भी तुम्हारी धारणा है। तुमने पाप किया है, वह पतित पावन है, ऐसे तुम किसको धोखा दे रहे हो? ऐसे तुम अपने ही कल्पनाओं के जाल बुनते चले जाते हो। फिर उन्हीं में तुम उलझते चले जाते हो।
बुद्ध कहते हैं, कल्पना के जालों को तोड़ो। तुम अकेले हो। तुम्हारे संसार में, तुम्हारे मनोजगत में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं। संसार में भी तुम दूसरे को खोजते हो और धर्म में भी दूसरे को खोजते हो। संसार में खोजते हो पत्नी को, पति को, बेटे को, भाई को, बहन को--कोई दूसरा। अकेले होने की वहां भी तुम्हारी तैयारी नहीं है। अकेले होने में डर लगता है। अकेले घर में छूट जाते हो, भय पकड़ लेता है, कंपने लगते हो। कोई चाहिए।
अगर बिल्कुल अकेले छोड़ दिए जाओ और कोई न तुम खोज सको, तो तुम कल्पना करने लगते हो। एकांत में बैठकर भी तुम दूसरे का ही सपना देखते हो। तुम्हें

गुहा में, गुफा में बंद कर दिया जाए तो भी तुम बैठकर भीड़ को मौजूद कर लोगे। पत्नी से बातें करोगे, पति से बातें करोगे, मित्रों से बातें करोगे, झगड़े करोगे। अकेले तुम रह नहीं सकते।
किसी तरह संसार से घबड़ा जाते हो एक दिन, तो फिर तुम दूसरा संसार बना लेते हो, जिसको तुम धर्म कहते। फिर तुम मंदिर चले जाते हो, तुम पत्थर की मूर्ति से बातें करते हो। हद्द का धोखा है!
पहले भी तुमने मूर्तियां चुनी थीं। कम से कम जीवित थीं। कम से कम धोखे में भी थोड़ी सचाई थी। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे परमात्मा से कम से कम ज्यादा जीवित थी। उसके जीवित होने के कारण ही अड़चन पड़ी। तुमने जो चाहा, उसने न किया। तुमने जैसा चाहा, वैसी वह सिद्ध न हुई। उसके यथार्थ ने तुम्हारी कल्पना को ठहरने न दिया, तोड़-तोड़ डाला।
तुमने तो सीता-सावित्री चाही थी। वे सब तुम्हारी कल्पनाएं हैं सीता
और सावित्रियां। वे तुम्हारी पुराण-कथाएं हैं। पुरुष ने जैसी पत्नियां चाही हैं, उनके केवल सपने हैं। सीता साबित न हो सकी, क्योंकि उस तरफ भी एक जीवित स्त्री थी, किसी कथा का पात्र नहीं। तुमने तो सब तरह से अपने को भुलाने की कोशिश की, लेकिन उसके यथार्थ ने तुम्हारी कल्पना को तोड़-तोड़ दिया, झकझोर-झकझोर दिया।
आखिर तुम घबड़ा गए। अब तुम मंदिर आ गए। अब तुमने एक पत्थर की मूर्ति से अपना संबंध जोड़ा। यह मूर्ति तुम्हारी कल्पना को तोड़ भी न सकेगी। यह मूर्ति बिल्कुल ही नहीं है। तुम इस पर बांसुरी रख दोगे इसके ओंठों पर, तो यह उतारकर नीचे न रख सकेगी। तुम इसे नचाओगे तो मूर्ति नाचेगी। तुम बिठाओगे तो बैठेगी। तुम राम बनाओगे तो राम बनेगी, तुम कृष्ण बनाओगे तो कृष्ण बनेगी। यह केवल तुम्हारा ही जाल है। अब यह मूर्ति तुमने खोज ली, यह तुम्हारा ही, जैसा मदारी का बंदर होता है, ऐसे तुम्हारा यह बंदर है। तुम जैसा नचाओ यह नचेगी।
और मजा यह है कि तुम इस बंदर से प्रार्थना करोगे और तुम कहोगे कि मुझे ठीक से नचा। यह बंदर तुम्हारा, यह कल्पना तुम्हारी, यह सपना तुम्हारा, अब तुमने बड़ा गहरा धोखा देने की आयोजना की। तुमने पाप किया तो तुम इसको कहते हो, तुम पतितपावन हो। तुमने अपराध किया, तो तुम महा करुणावान हो। तुम अंधेरे में भटक रहे हो, तो परमात्मा प्रकाश है। तुम जो हो, ठीक तुम उससे विपरीत परमात्मा बनाते हो। तुम जो चाहते हो, वह तुम परमात्मा में आरोपित कर लेते हो। यह परमात्मा तुम्हारी कल्पना का विस्तार, प्रक्षेपण है। बुद्ध कहते हैं, संसार में भी तुम दूसरे को पकड़े रहे, अब फिर तुमने दूसरे को पकड़ लिया। तुम स्व कब होओगे? तुम स्वयं कब बनोगे? अप्प दीपो भव! तुम अपने दीए खुद कब बनोगे? तुम कब कहोगे कि दूसरा नहीं है, मैं ही हूं; और मुझे जो भी करना है इस मैं से ही करना है--नर्क बनाना है तो भी स्व से ही बनाना है, स्वर्ग बनाना है तो भी स्व से ही बनाना है। दुख पाना है तो भी मुझे ही नियंता होना पड़ेगा, आनंद पाना है तो भी मुझे ही यात्रा करनी होगी। मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है।
इसलिए तो बुद्ध का धर्म भारत में बहुत दिन टिक न सका। क्योंकि यह सत्य
पर इतना जोर देते हैं और हम कल्पनाशील लोग सत्य पर इतने जोर के लिए राजी नहीं। यह सत्य तो हमें खतरनाक मालूम होता है। हम बिना स्वप्न के जी ही नहीं सकते।
सिग्मंड फ्रायड ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में कहा है कि जीवनभर हजारों लोगों का मनोविश्लेषण करके एक नतीजे पर मैं पहुंचा हूं कि मनुष्य सत्य के साथ जी नहीं सकता। असत्य जरूरी है, झूठ जरूरी है, धोखा जरूरी है। यह वक्तव्य दूसरे महान जर्मन विचारक नीत्से के वक्तव्य से बड़ा मेल खाता है। नीत्से ने फ्रायड के पहले भी कहा था कि लोग सोचते हैं, सत्य और जीवन एक है। गलत सोचते हैं। सत्य जीवन-विरोधी है। झूठ जीवन का सहारा है। लोग भ्रम के सहारे जीते हैं। सत्य तो सब सहारे छीन लेता है। सत्य तो तुम्हें निपट नग्न कर जाता है। सत्य तो तुम्हें बचने की जगह ही नहीं छोड़ता। सत्य तो तुम्हें भरी बाजार की भीड़ में नग्न खड़ा कर देता है।
तुम्हें बहाने चाहिए। परमात्मा तुम्हारा सबसे बड़ा बहाना है।

बुद्ध यह नहीं कह रहे हैं कि परमात्मा नहीं है, इसे तुम ख्याल रखना। बुद्ध इतना ही कह रहे हैं कि तुम जो भी परमात्मा गढ़ोगे, वह नहीं है। तुम जो भी गढ़ सकते हो, वह नहीं है। तुम्हारा गढ़ा हुआ परमात्मा नहीं है। तुम अपनी सब मूर्तियां खंडित कर डालो।
बुद्ध से बड़ा मूर्तिभंजक कोई भी नहीं हुआ। मुसलमानों ने बहुत मूर्तियां तोड़ी हैं, लेकिन फिर भी मोहम्मद इतने बड़े मूर्तिभंजक नहीं हैं, जितने बुद्ध। क्योंकि परमात्मा को स्वीकार तो किया! मत बनाओ मूर्ति, मत ढांचा रखो, लेकिन हाथ किसी दिशा में तो जोड़ोगे। मुसलमान भी काबे की तरफ हाथ जोड़कर झुकता है। जो निराकार है, उसकी भी दिशा तो बना ही लोगे। आकार निर्मित हो जाएगा। मत बनाओ चित्र, इससे क्या होता है? मन में तो चित्र बनेगा ही। बुद्ध से बड़ा कोई मूर्तिभंजक नहीं हुआ।
अब मैं तुम्हें याद दिला दूं कि बुद्ध परमात्मा-विरोधी नहीं हैं, परमात्मा के पक्ष में हैं इसीलिए विरोध है। वे चाहते यह हैं कि तुम्हारी सब कल्पनाएं टूट जाएं। तुम इतने नितांत अकेले छूट जाओ कि कुछ उपाय भागने का न रहे, कहीं और जाने का न रहे; कोई रास्ता न रह जाए अपने से दूर जाने का, तो तुम अपनी ही गहनता में, अपने ही स्वभाव में पाओगे उसे जिसे तुम अभी परमात्मा कहकर कल्पित करते हो। परमात्मा कल्पना नहीं है, आत्म-अनुभव है। इसलिए पहली बात, यह तो पूछो ही मत कि हमें नर्क क्यों भेजा जाए! तुम जाना चाहते हो तो जाओगे। तुम नहीं जाना चाहते, तुम्हें कोई भेज नहीं सकता। यह तुम ईश्वर को दोष देने की बात ही छोड़ दो।
अब यह बड़े मजे की बात है। अगर तुम धन्यवाद दोगे, तो दोष भी दोगे। अगर पूजा करोगे, तो निंदा भी करोगे। अगर प्रार्थना पर तुम्हारा भरोसा है, तो कहीं शिकायत भी मौजूद रहेगी। ऐसे तुम कहोगे, हे परमात्मा! तू महान कृपाशाली है, अनुकंपावान है, लेकिन नजर के किनारे से तुम देखते रहोगेः अनुकंपा हो रही है कि नहीं? कि हम कहे चले जा रहे हों और तुम--कुछ हो रहा ही नहीं है! सिर्फ हमीं दोहराए जा रहे हैं, तुम हमारे अनुसार चल भी रहे कि नहीं? शिकायत भी भीतर खड़ी होती रहेगी। जहां धन्यवाद है, वहां शिकायत रहेगी। शिकायत धन्यवाद का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। या धन्यवाद शिकायत का शीर्षासन करता हुआ रूप है। वे एक ही चीज के दो नाम हैं, दो पहलू हैं।
बुद्ध कहते हैं, न शिकायत, न कोई धन्यवाद। वहां कोई है ही नहीं जिसे धन्यवाद दो। और कोई है नहीं जिसकी शिकायत करो। बुद्ध तुम्हें अपने पर फेंक देते हैं। बुद्ध तुम्हें इस बुरी तरह से अपने पर फेंक देते हैं; रत्तीभर तुम्हें सहारा नहीं देते, हाथ नहीं बढ़ाते। वे कहते हैं, सब हाथ खतरनाक हैं, सब सहारे खतरनाक हैं। उन्हीं सहारों के आसरे तो तुम भटक गए हो। आलंबन मत मांगो। तुम अकेले हो, तुम्हारी नियति अकेली है। इससे तुम राजी हो जाओ।
दरिया को अपनी मौज की तुगयानियों से काम
कश्ती किसी की पार हो या दरमियां रहे
सागर को अपनी लहरों का मजा है। तुम्हारी कश्ती पार हो या न हो, इससे सागर का कोई प्रयोजन नहीं। सागर को अपनी बाढ़ में मौज है। तुम डूबो कि बचो, तुम जानो।
बुद्ध तुम्हें अपना पूरा-पूरा मालिक बना देते हैं। यद्यपि यह मालकियत बड़ा महंगा सौदा है। यह मालकियत बड़ी कठिन है। क्योंकि तुम इतने अकेले छूट जाते हो कि बहाना भी नहीं बचता। फिर तुम यह नहीं कह सकते कि मैं दुखी हूं तो कोई और जिम्मेवार है। तुम ही जिम्मेवार हो।
इसे थोड़ा समझें।
मनुष्य का मन सदा यह चाहता है कि जिम्मेवारी किसी पर टल जाए। यह मनुष्य की गहरी से गहरी चाल है। तुम जब दुखी होते हो, तुम तत्क्षण खोजने लगते हो--कौन मुझे दुखी कर रहा है? तुम कभी यह तो सोचते ही नहीं कि दुख मेरा दृष्टिकोण हो सकता है। पत्नी ने कुछ कहा, पति कुछ बोल गया, बेटे ने कुछ दुर्व्यवहार किया, समाज ने ठीक से साथ न दिया, राज्य दुश्मन है, परिस्थिति

प्रतिकूल है, तुम कहीं न कहीं तत्क्षण बहाना खोजते हो। क्योंकि एक बात तुम मान ही नहीं सकते कि तुम अपने कारण दुखी हो।
तुम यह मानो कैसे! क्योंकि तुम सदा यह कहते हो, दुखी मैं होना नहीं चाहता। जब तुम दुखी होना नहीं चाहते, तो तुम अपने कारण क्यों दुखी होओगे? स्वभावतः, तुम्हारा तर्क कहता है, कोई और दुखी कर रहा है। कोई और कांटे बो रहा है, कोई और जीवन में शूल बो रहा है। मैं तो फूल ही मांगता हूं। मैंने तो कभी फूल के अतिरिक्त कुछ चाहा नहीं। इसलिए अगर शूल मिल रहे हैं, तो कोई और जिम्मेवार है।
लेकिन किसको पड़ी है कि तुम्हारे लिए कांटे बोए? किसको फुरसत है? कौन तुम्हें इतना मूल्य देता है कि तुम्हारे रास्ते पर कांटे बोने आए? दूसरे लोग भी अपने जीवन में फूल बोने की बातों में लगे हैं। उनको भी फुरसत नहीं है, जैसे तुमको फुरसत नहीं है। लेकिन वे भी दुखी हो रहे हैं, तुम भी दुखी हो रहे हो। कुछ ऐसा लगता है, तुम आंख पर पट्टी बांधकर बीज बोए चले जाते हो। बुद्धों का अनुभव है कि दुख है, तो कारण तुम हो। इसमें कोई अपवाद का उपाय नहीं है। तुमने ही बोया होगा। देर हो गयी होगी बीज बोए, फसल आने में समय लगा होगा, तुम शायद भूल भी गए होओ कब बोए थे ये कड़वे बीज। शायद तुम्हें, तुम्हारे तर्क में संबंध भी न रह गया हो बीजों का और फलों का। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दुख तुम्हारे ही बोए हुए बीजों का फल है।
मगर तुम कहते हो, दुखी मैं होना नहीं चाहता। यह बात भी सच नहीं है। हजारों लोगों से मैं भी संबंधित हुआ हूं, ऐसे आदमी को मैं अभी खोज नहीं पाया जो दुखी न होना चाहता हो। कहते सभी हैं, सुख चाहते हैं। सुख चाहते ही आते हैं। लेकिन जब मैं उनको गौर से देखता हूं, तो उनको दुख को इतना पकड़े देखता हूं कि यह भरोसा नहीं आता कि इनका सुख चाहने का मतलब क्या है? फिर यह भी गौर से देखने पर पता चलता है कि जिसको ये सुख कहते हैं, वह दुख का ही नाम है। इनकी समझ में कहीं भूल है।
समझो। एक आदमी सम्मान चाहता है। अब सम्मान तो सुख है। लेकिन जिसने सम्मान चाहा, अपमान का क्या करेगा? सम्मान के चाहने में ही अपमान का दुख पैदा होता है। इधर तुमने सम्मान मांगा, उधर अपमान की संभावना बनी। तुम सम्मान चाहते हो। जितना तुम सम्मान चाहोगे, उतना ही दूसरे तुम्हारा अपमान करना चाहेंगे। तुम अपने को बड़ा करके दिखाना चाहते हो, दूसरे तुम्हें छोटा करके दिखाना चाहेंगे। क्योंकि तुम अगर बड़े हो, तो दूसरे छोटे हो जाते हैं। वे भी सम्मान चाहते हैं। तुम अगर छोटे हो, तो ही वे बड़े हो सकते हैं। इसलिए संघर्ष चलता है कि मैं बड़ा हूं, तुम छोटे हो। तुम भी यही कर रहे हो। दूसरे भी सम्मान चाहते हैं, तुम भी सम्मान चाहते हो। उनको भी अपमान मिलता है, तुम्हें भी अपमान मिलता है।
थोड़ा सोचो, जमीन पर कोई चार अरब आदमी हैं। एक-एक आदमी चार अरब आदमियों
के खिलाफ लड़ रहा है। एक-एक आदमी सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है, मैं बड़ा हूं! और चार अरब आदमी उसके खिलाफ सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं कि हम बड़े! कैसे तुम जीतोगे? तुम्हारे जीतने की कोई संभावना नहीं। तुम पागल हो जाओगे।
थोड़ा सोचो। अपमान से दुख पाओगे और तुम कहोगे, दूसरे दुख दे रहे हैं। क्योंकि फलां आदमी ने अपमान कर दिया। गहरे जाओ, तुमने अगर सम्मान न मांगा होता, तो कोई तुम्हारा अपमान कर सकता था? करता रहे। तुम्हें छूता भी न। रामकृष्ण कहा करते थे, एक चील एक मरे चूहे को लेकर उड़ रही थी। कोई पच्चीस चीलें उसका पीछा कर रही थीं, झपट्टे मार रही थीं। वह चील बड़ी परेशान थी कि ये मेरे पीछे क्यों पड़ी हैं! इसी झगड़े-झांसे में उसके मुंह से मरा चूहा छूट गया। छूटते ही पच्चीसों चीलें उसे छोड़कर मरे चूहे के पीछे चली गयीं। उसे अकेला छोड़ गयीं। वह एक वृक्ष पर बैठ गयी। वह सोचने लगी, इनमें से कोई भी मेरे खिलाफ न था। चूहे को मैंने पकड़ा था और ये भी चूहे को ही पकड़ना चाहती थीं। चूहे के छूटते ही बात खतम हो गयी। कोई दुश्मन न रहा। अगर सारे लोग तुम्हारे दुश्मन हैं, तो तुमने कोई चूहा मुंह में पकड़ा होगा। उसी चूहे को वे भी पकड़ना चाहते हैं। तुम उन्हें दोष मत दो। जो तुम भूल कर रहे हो, कम से कम उतना अधिकार वही भूल करने का उन्हें भी दो। चूहे कम

हैं, चीलें ज्यादा हैं। और चूहे कम होंगे ही, अन्यथा उनमें कोई अर्थ न रह जाएगा।
अगर सम्मान मिलने की सभी को सुविधा हो, चार अरब आदमी सभी सम्मानित हो सकें, सभी को राष्ट्रपतियों के पुरस्कार मिल जाएं, भारत-भूषण हो जाएं, भारत-रत्न हो जाएं, महावीर चक्र बांट दिए जाएं--सभी को--तो महावीर चक्र का मतलब क्या रह जाएगा?
सम्मान का मूल्य है न्यूनता में। जितना न्यून हो उतना ही मूल्यवान है। अगर चालीस करोड़ के मुल्क में एक आदमी को सम्मान मिले तो मूल्य है। चालीस करोड़ को ही बांट दिया जाए--मुक्तहस्त--सभी भारत-रत्न, मूल्य समाप्त हो गया। फिर तो यह भी हो सकता है कि कोई आदमी जिद्द करे कि मुझे भारत-रत्न नहीं होना है। मैं अकेला, जो भारत-रत्न नहीं। तो उसमें सम्मान हो जाएगा। तो जीवन का संघर्ष ऐसा है, न्यून का मूल्य होगा। अगर कोहिनूर हीरे सभी
के पास हों, तो उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता है। कोहिनूर चूंकि एक है, सभी के पास होने का उपाय नहीं है, वही उसका मूल्य है। रासायनिक-दृष्टि से तो हीरे में और कोयले में फर्क नहीं है। दोनों का रासायनिक संगठन एक जैसा है। कोयला ही दबा-दबा सदियों में हीरा बन जाता है। समय का फासला है। लेकिन कोयले की कौन पूजा करेगा? कोयले का कौन सम्मान करेगा? कोयला बहुतायत से है। न्यून होना चाहिए, तो सम्मान मिल सकता है। सम्मान का अर्थ यह हुआ कि जिसके लिए बहुत लोग संघर्ष कर रहे हों।
परसों रात एक संन्यासिनी ने मुझे आकर कहा--प्यारी संन्यासिनी है-- उसने कहा कि मुझे एक बड़ा अजीब सा ख्याल चढ़ता है मन में कि मैं रानी हूं और रानी की तरह चलूं। मैंने कहा, तू मजे से चल। इसमें कोई अड़चन नहीं है। इस आश्रम में कोई अड़चन नहीं है। तू फूल-पत्ती का ताज भी बना ले, तो भी चलेगा। मगर एक ही ख्याल रखना, और भी लोग यहां राजा-रानी हैं। उसने कहा, वह तो सब मजा ही खराब हो जाता है। अकेली मैं, तो ही मजा है। मैंने कहा, यह जरा मुश्किल बात है। क्योंकि जो सुविधा मैं तुझे देता हूं, वही सबको देता हूं। दूसरों के साथ भी राजा-रानियों जैसा व्यवहार करना, फिर कोई अड़चन नहीं है, रहो, रानी रहो, बनो राजा! बात उसकी समझ में आ गयी।
बड़े होने का मजा दूसरे को छोटा दिखाने में है। तो जहां तुमने सम्मान मांगा, वहां तुमने अपमान की शुरुआत कर दी। अब जद्दोजहद होगी। अपमान से तुम दुखी होओगे।
और मजा यह है, सम्मान से तुम सुखी न हो पाओगे, अपमान से तुम दुखी होओगे। क्यों? क्योंकि सम्मान कितना ही मिल जाए, अंत तो नहीं आता। आगे सदा कुछ शेष तो रह ही जाता है। तृप्ति तो नहीं होती। ऐसा तो हो ही नहीं सकता है कि तुम्हें ऐसी घड़ी आ जाए सम्मान की कि अब इसके आगे कुछ भी नहीं। कुछ न कुछ बाकी रह जाएगा। सिकंदरों को भी बाकी रह जाता है। तुम कहीं भी पहुंच जाओ, किसी भी जगह पहुंच जाओ, वहां से भी तुम्हें आगे मंजिल रहेगी। तो सम्मान तुम्हें तृप्त न करेगा और सम्मान की मांग में जो अपमान की बौछार होगी सब तरफ से, वह तुम्हें बड़े कांटों से बींध जाएगी। और तुम कहोगे, दूसरे अपमान कर रहे हैं।
तुमने सम्मान की चाह में ही अपमान को निमंत्रण दिया। तुमने सफलता चाही, विफलता मिलेगी। तुमने चाहा, लोग तुम्हें भला कहें, बस भूल हो गयी। तुमने अपने अहंकार को सजाना चाहा कि लोग तुम्हारे अहंकार को नग्न करने पर उतारू हो जाएंगे।
लाओत्से ने कहा है, अगर तुम्हें हार से बचना हो तो जीत की आकांक्षा मत करना। और अगर तुम्हें अपमान से बचना हो तो सम्मान मत मांगना। लाओत्से ने कहा है, मेरा कोई अपमान नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने सम्मान नहीं मांगा। और मैं वहां बैठता हूं जहां लोग जूते उतारते हैं। वहां से मुझे कोई कभी नहीं भगाता। मैंने सिंहासन पर बैठने की कोई चेष्टा नहीं की। इसलिए मुझे कोई हरा नहीं सकता। कैसे हराओगे? लाओत्से यह कहता है, मैं हारा ही हुआ हूं, तुम मुझे हराओगे कैसे? मैंने जीत की योजना ही नहीं बनायी, तुम मुझे हराओगे कैसे?

इस बात को ख्याल में रखो, कोई तुम्हें दूसरा न तो दुख देता है, न दे सकता है, न देने का कोई उपाय है। हां, तुम अगर अपने को दुख देना चाहो, मजे से दो।
ऐसा मेरा अनुभव है कि लोग दुख को पकड़े हुए हैं, दुख को संपत्ति समझा है। दुख को छोड़ने की हिम्मत नहीं होती। क्योंकि दुख के कारण लगता है, कुछ है तो।
अब मैं क्या तुमसे अपना हाल कहूं
बाखुदा याद भी नहीं मुझको
जिंदगानी का आसरा है यही
दर्द मिट जाएगा तो क्या होगा
लोग बीमारियों के सहारे जीने लगते हैं। लोग दुखों की संपदा बना लेते हैं। लोग अपनी पीड़ाओं को तिजोरियों में सम्हालकर रख लेते हैं। निकाल-निकालकर बार-बार अपने घावों को देख लेते हैं। उघाड़-उघाड़कर फिर-फिर सहला लेते हैं। फिर-फिर हरे कर लेते हैं। कुछ है तो। खाली हाथ तो नहीं। रिक्त तो नहीं। सूने तो नहीं। कुछ भराव तो है।
तुम इस पर थोड़ा सोचना। कहीं तुमने अपने दुखों के साथ बहुत ज्यादा रिश्ता तो नहीं बना लिया? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम रुग्ण-रस लेने लगे? अगर तुम विचार करोगे, थोड़ा ध्यान करोगे, तुम पाओगे कि तुमने अपनी बीमारी में भी नियोजन कर दिया संपत्ति का। अब तुम बीमारी के कारण भी महत्वपूर्ण हो गए हो।
मैं एक विश्वविद्यालय में शिक्षक था। एक महिला मेरे साथ शिक्षक थी। उनके पति ने एक दिन मुझे फोन किया और कहा कि मैंने सुना है कि मेरी पत्नी आपका सत्संग करती है। आप जरा ख्याल रखना, वह बीमारी बढ़ा-चढ़ाकर बताती है। जरा सा फोड़ा हो, तो वह कैंसर बताती है। तो आप फिजूल उसके पीछे परेशान मत होना। क्योंकि मैं बीस साल के अनुभव से कह रहा हूं।
शक तो मुझे भी होता था उस महिला की बातों से। लेकिन वह न केवल दूसरे को
ही धोखा देती थी, जैसे खुद भी धोखा खाती थी। छोटी-मोटी बात को, दुख को, खूब बड़ा करके बताती। क्या कारण रहा होगा? उसने जीवन में कभी प्रेम नहीं जाना। तो दुख को बड़ा करके जो थोड़ी सी सहानुभूति मिल जाती, उसी से तृप्ति कर रही थी। पहले पति के साथ यही संबंध रहा होगा--दुख बढ़ा-बढ़ाकर बताया। फिर पति समझ गया। कितने देर चलेगा यह? तो पति से नाता ढीला हो गया। फिर वह इधर-उधर सत्संग करने लगी। जहां भी कोई मिल जाए सहानुभूति देने वाला, वहीं वह अपने दुख!
गौर से देखा तो पता चला कि वह अपने दुख को बड़े सम्हाल-सम्हालकर रखती है। और एक-एक दुख को लुत्फ ले-लेकर कहती। जैसे दुख कोई कविता हो, कि कोई नृत्य हो। अगर उसके दुख को गौर से न सुनो, तो वह नाराज हो जाती। अगर दुख में सहानुभूति न बताओ, तो वह तुम्हारे विपरीत हो जाती। अगर दुख में सहानुभूति बताओ, वह जितना दुख कहे उससे भी बढ़ा-चढ़ाकर मान लो, तो वह चरणों पर झुकने को राजी।
तुम जरा अपने भीतर भी इस महिला को खोजना। सभी के भीतर है।
दुख में रस मत लेना, क्योंकि रस अगर तुम लोगे, तो कौन तुम्हें दुख की तरफ जाने से रोक सकता है फिर? और दुख का तुम शोरगुल मत मचाना। और दुख को छाती पीटकर दिखलाना मत। दुख का प्रदर्शन मत करना।
तुमने कभी ख्याल किया, लोग अपने दुखों की चर्चा करते हैं, सुखों की नहीं करते। लोगों की बातें सुनो, दुख की कथाएं। सुख की तो कोई बात ही नहीं होती। कारण है। क्योंकि अगर तुम सुख की किसी से चर्चा करो, तो सहानुभूति थोड़े ही पा सकोगे, उलटी ईर्ष्या। अगर तुम किसी से कहो, मैं बहुत सुखी हूं, तो वह आदमी नाराज हो जाएगा। वह कहेगा, अच्छा! तो मेरे रहते तुम सुखी हो गए। उसकी आंख में तुम विरोध देखोगे। तुमने एक दुश्मन बना लिया।
तुम कहो कि मैं बहुत दुखी हूं, कंधे झुके जा रहे हैं बोझ से, वह तुम्हारा सिर सहलाएगा। वह कहेगा कि बिल्कुल ठीक। तुमने उसे एक मौका दिया अपनी तुलना में ज्यादा सुख अनुभव करने का। वह कहेगा कि बिल्कुल ठीक।

मैं एक घर में रहता था। मकान मालिक की जो पत्नी थी, किसी के घर कोई मर जाए--पास-पड़ोस में, दूर, संबंध हो न हो, पहचान हो न हो--वह जरूर जाती। मैंने उससे पूछा कि जब भी कोई मरता है तो मैं तुम्हें बड़ा प्रसन्नता से जाते देखता हूं, मामला क्या है? उसकी खुशी जाहिर हुई जाती थी। वह जहां भी दुखी लोगों को देखती, वहां जाने का लोभ संवरण न कर पाती। क्योंकि उनके दुख की तुलना में अपने को थोड़ा सुखी अनुभव करती। चलो, पति किसी और का मरा, अपना तो नहीं मरा। बेटा किसी और का मरा, अपना तो नहीं मरा।
और लोग दूसरे के प्रति सहानुभूति दिखाने में बड़ा मजा लेते हैं। मुफ्त! कुछ खर्च भी नहीं होता और सहानुभूति दिखाने का मजा आ जाता है।
तुम ख्याल करो। तुम्हारे घर कोई मर जाए और लोग आएं... शरतचंद्र के प्रसिद्ध उपन्यास देवदास में वैसी घटना है। देवदास के पिता मर गए और वह दरवाजे पर बैठा है। और लोग आते हैं, बड़ी सहानुभूति करते हैं। वह कहता है कि अंदर जाएं, मेरे बड़े भाई को कहें, उनको काफी मजा आएगा। तो लोगों को बड़ा सदमा लगता है। यह किस तरह का लड़का है! कहता है, अंदर जाएं। आगे बढ़ा देता है, कोई रस नहीं लेता उनकी बातों में। वे बड़ी तैयारी करके आए हैं। लोग जब किसी के घर जाते हैं मरण के अवसर पर तो सब सोचकर जाते हैं, क्या-क्या कहेंगे, कैसे-कैसे कहेंगे। पच्चीस दफे रिहर्सल कर लेते हैं मन में कि इस-इस तरह कहेंगे बात, बात को जमा देंगे। वह सुनता ही नहीं। वह, कोई बात शुरू करता है, वह कहता है कि रुको, अंदर चले जाओ, बड़े भाई बैठे हैं, उनको। लोग नाराज हो गए हैं उस पर। यह बर्दाश्त के बाहर है।
तुम सहानुभूति देना चाहो और कोई न ले, तुम बहुत नाराज हो जाओगे। लोग सहानुभूति मुक्तहस्त बांटते हैं। क्योंकि यही तो थोड़े से क्षण हैं जब उन्हें सुखी होने का अवसर मिलता है। किसी को दुखी देखकर लोग सुखी होते हैं।
तुमने ख्याल किया, किसी को सुखी देखकर तुम कभी सुखी हुए? कोई बड़ा मकान बना लेता है, तब तुम्हें कोई सुख नहीं होता। लेकिन किसी के मकान में आग लग जाती है, तब तुम बड़े दुखी होते हो।
यह थोड़ा विचारने जैसा है कि जिसको दूसरे का बड़ा मकान देखकर सुख न हुआ
था, उसे उसके मकान में आग लगी देखकर दुख होगा क्यों? दुख हो कैसे सकता है? यह तो सारी सरणी गलत हो गयी।
हां, अगर उसके बड़े मकान को बनते देखकर सुख हुआ था, तो आग लगी देखकर दुख होगा। लेकिन बड़ा मकान जब बना था, तब तो तुम दुखी हुए थे। सुख नहीं हुआ था। तुम जार-जार हो गए थे, तार-तार हो गए थे। तुम्हारी छाती में गोली लग गयी थी। तुम्हारी कमर झुक गयी थी उस दिन, तुम बूढ़े हो गए थे उस बड़े मकान को देखकर। एक पराजय साफ लिख गयी थी खुले आकाश में--यह मकान तुम्हारा होना था और नहीं हो पाया और कोई और बना ले गया। बाजी कोई और ले गया। वह पराजय की स्पष्ट कथा थी। फिर जब इस घर में आग लग जाती है तब तुम दुखी कैसे हो सकते हो?
नहीं, तुम दुख दिखाते हो। होते तुम सुखी हो। भीतर बड़ा रस आता है। मन तो यही कहता है कि पाप का फल है। किया था, भोगा! अब कोई ब्लैक-मार्केट करे, चोरी-रिश्वत करे और बड़ा मकान बना ले! देर है, अंधेर थोड़े ही है! अब देख लिया! यह तो भीतर होता है। बाहर से जाकर तुम जार-जार आंसू बहाते हो। यह मौका तुम नहीं छोड़ सकते। बड़ा मकान न बना पाए, लेकिन बड़े मकान बनाने वाले आदमी को नीचा दिखाने का अवसर तो मिला--मकान में आग लग गयी।
ध्यान रखना, धार्मिक आदमी वह नहीं है जो दूसरे के दुख में सहानुभूति बताता है। धार्मिक आदमी वह है जो दूसरे के सुख में सुख अनुभव करता है।
और जिसने दूसरे के सुख में सुख अनुभव किया, उसकी सहानुभूति हीरे जैसी है। उसकी दुख में सहानुभूति अर्थ रखती है। और जिसने सुख में ईर्ष्या अनुभव की, उसकी सहानुभूति तो ऊपर-ऊपर मलहम-पट्टी है। भीतर-भीतर आग है। सहानुभूति के धोखे में मत पड़ना।
तुमसे लोगों ने कहा है, दूसरों के दुख में दुखी होओ। मैं तुमसे कहता हूं, दूसरों के सुख में सुखी होओ। दूसरों के दुख में दुखी होना! तुम वैसे ही दुखी काफी हो, अब और दुखी होना! तुम दूसरों के सुख में सुखी होओ। सुख

सीखो। अपने सुख में तो सुखी होओ ही, दूसरे के सुख में भी सुखी होओ। सुख की आदत बनाओ। और जैसे-जैसे आदत घनी होगी, और बड़ा-बड़ा सुख आएगा।
कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था कि एक आदमी अपने मनोवैज्ञानिक के पास गया।
वह बड़ा घबड़ाया हुआ, बड़ा बेचैन था। और मनोवैज्ञानिक ने पूछा, क्या परेशानी है, इतने क्यों पसीने से तरबतर, इतने क्यों बेचैन, इतने क्यों हांफ रहे हो? क्या तकलीफ आ गयी है, शांति से बैठकर कहो। उसने कहा, बड़ा बुरा हुआ। रात मैं सोया था, मेरे पेट पर से एक चूहा निकल गया। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, हद्द हो गयी, चूहा ही निकला है, कोई हाथी तो नहीं निकला! उसने कहा, वह तो मुझे भी पता है, लेकिन चूहा निकल गया, रास्ता तो बन गया। अब हाथी भी किसी दिन निकल जाएगा। रास्ता बन गया, असली तकलीफ यह है।
यह कहानी मुझे जंची। चूहे को भी मत निकलने देना, रास्ता तो बन गया। हाथी के आने में कितनी देर लगेगी! एक दफा पता हो जाए कि यहां से निकला जाता है। न, वह आदमी ठीक कह रहा था, उसकी घबड़ाहट ठीक थी--सच।
तुम सुख के लिए थोड़ा रास्ता तो बनाओ। पहले चूहे की तरह सही, फिर हाथी
की तरह भी निकलेगा। तुम सुख का कोई अवसर मत खोजो। तुम सुख का जो भी अवसर मिल सके, चूको ही मत। और अगर तुम ध्यान रखो, तो ऐसी कोई भी घड़ी नहीं है जहां तुम सुख का अवसर न पा सको। गहन से गहन दुख के क्षण में भी सुख की कोई किरण होती है। अंधेरी से अंधेरी रात में भी सुबह बहुत दूर नहीं होती, पास ही होती है। और फिर अंधेरी से अंधेरी रात में भी चमकते तारों का फैलाव होता है। थोड़ी नजर सुख की खोजने वाली चाहिए।
अपने में भी सुख खोजो, दूसरे में भी सुख खोजो, ताकि सुख में तुम्हारी आदत रम जाए। ताकि सुख तुम्हारा सहज स्वभाव बन जाए। सुख पर तुम्हारी अनायास आंख पड़ने लगे। यह तुम्हारा ऐसा अभ्यास हो जाए कि इसके लिए कुछ करने की जरूरत न रहे, यह सहज होने लगे।
अभी तुमने उलटा किया है। अभी तुमने दुख की आदत बनायी है।
एक मनोवैज्ञानिक छोटा सा प्रयोग कर रहा था। उसने अपनी कक्षा में आकर बड़े ब्लैकबोर्ड पर एक छोटा सा सफेद बिंदु रखा--जरा सा--कि मुश्किल से दिखायी पड़े। फिर उसने पूछा विद्यार्थियों को कि क्या दिखायी पड़ता है? किसी को भी उतना बड़ा ब्लैकबोर्ड दिखायी न पड़ा, सभी को वह छोटा सा बिंदु दिखायी पड़ा--जो कि मुश्किल से दिखायी पड़ता था। उसने कहा, यह चकित करने वाली बात है। इतना बड़ा तख्ता कोई नहीं कहता कि दिखायी पड़ रहा है; सभी यह कहते हैं, वह छोटा सा बिंदु दिखायी पड़ रहा है।
तुम जो देखना चाहते हो, वह छोटा हो तो भी दिखायी पड़ता है। तुम जो देखना नहीं चाहते, वह बड़ा हो तो भी दिखायी नहीं पड़ता। तुम्हारी चाह पर सब कुछ निर्भर है। तुम्हारा चुनाव निर्णायक है।
तो मैं तुमसे कहता हूं--इस जीवन में तुम कहते हो दुख पाया बहुत, अब अगले जन्म में और हमें नर्क न भेजा जाए--कोई भेजने वाला नहीं है। लेकिन इस जीवन में अगर तुमने दुख की आदत बनायी, तो तुम नर्क चले जाओगे।
अब तुम्हें लगता है, इसमें बड़ा अन्याय हो रहा है कि हमने जीवनभर दुख भोगा, फिर नरक भेजा! मैं तुमसे कहता हूं, जीवनभर दुख का अभ्यास किया, तुम नरक के अतिरिक्त जाओगे भी कहां! तुम्हारा अभ्यास तुम्हें ले जाएगा। रास्ता बना लिया, अब तुम उसी रास्ते से चलोगे। तुम्हें अगर कोई स्वर्ग भेजना भी चाहे तो कोई उपाय नहीं है। तुम स्वर्ग में भी नर्क खोज लोगे। नर्क तुम्हारा जीवन कोण है। यह कोई स्थान नहीं है कहीं। यह तुम्हारे देखने का ढंग है। तुम जहां जाओगे, नर्क खोज लोगे। तुम्हारा नर्क तुम्हारे साथ चलता है। तुम्हारा स्वर्ग भी तुम्हारे साथ चलता है। तुम अभ्यास करना यहीं से शुरू करो। तुम कल की प्रतीक्षा मत करो कि मरने के बाद स्वर्ग जाएंगे। अधिक लोग यही भूल कर रहे हैं--कि मरे, फिर स्वर्गीय हुए!
अगर जन्म में, जीते-जी नरक में रहे, तो अचानक तुम स्वर्ग में नहीं पहुंच सकते। कोई छलांग थोड़े ही है कि तुमने एकदम से तय कर लिया और तुम स्वर्ग में चले गए। तुम्हारे जिंदगीभर का अभ्यास तुम्हारी दिशा बनेगा।

यही सारा अर्थ है कर्म के सिद्धांत का। और बुद्ध ने कर्म के सिद्धांत
को अपरिसीम महत्ता दी है। और ईश्वर को हटा लिया। क्योंकि बुद्ध को लगा, ईश्वर की मौजूदगी कर्म के सिद्धांत को पूरा न होने देगी।
ऐसा समझो कि अगर अदालत में कहीं ऐसी व्यवस्था हो जाए कि हम न्यायाधीश
को अलग कर लें, और कानून हो सके, तो कानून ज्यादा पूर्ण होगा। न्यायाधीश की मौजूदगी कानून को गड़बड़ करती है। क्योंकि न्यायाधीश के भी अपने दृष्टिकोण हैं। किसी पर दया खा जाएगा, किसी पर क्रोध से भर जाएगा। न्यायाधीश हिंदू होगा तो हिंदू पर दया कर लेगा, मुसलमान होगा तो मुसलमान पर दया कर लेगा। न्यायाधीश खुद शराबी होगा तो शराबी को थोड़ा कम दंड देगा, अगर शराब के खिलाफ होगा तो शराबी को थोड़ा ज्यादा दंड दे देगा।
आज नहीं कल, भविष्य में कभी न कभी न्यायाधीश की जगह कंप्यूटर होगा। होना चाहिए। क्योंकि कंप्यूटर पक्षपात न करेगा। वह तो सीधा-सीधा हिसाब न्याय का कर देगा। वहां कोई बीच में मनुष्य नहीं है, जो न्याय में किसी तरह की गड़बड़ कर सके।
बुद्ध ने, महावीर ने परमात्मा को अलग कर लिया, वह एक बहुत वैज्ञानिक आधार पर। वह आधार यह है कि परमात्मा की मौजूदगी न तो तुम्हें स्वतंत्र होने देगी, और परमात्मा की मौजूदगी कर्म के सिद्धांत को भी पूर्ण न होने देगी।
एडमंड बर्क यूरोप का एक बड़ा विचारक हुआ। वह एक चर्च में सुनने गया था। चर्च के पादरी के बोलने के बाद प्रश्न पूछे गए, तो उसने चर्च के पादरी से पूछा कि मुझे एक प्रश्न पूछना हैः आपने कहा कि मरने के बाद, जो लोग सदाचारी थे और जिनका भगवान में भरोसा था, वे स्वर्ग जाएंगे। मेरे मन में एक सवाल है। वह सवाल यह है कि जो लोग सदाचारी थे लेकिन भगवान में भरोसा नहीं था, वे कहां जाएंगे? या, जो लोग सदाचारी नहीं थे लेकिन भगवान में भरोसा था, वे कहां जाएंगे?
वह पादरी ईमानदार आदमी रहा होगा। पादरी आमतौर से इतने ईमानदार होते नहीं। धर्मगुरु और ईमानदार, जरा मुश्किल बात है! वह धंधा ही जरा बेईमानी का है। शायद एडमंड बर्क की मौजूदगी ने भी उसे ईमानदार बनने में सहायता दी, क्योंकि यह आदमी बड़ा सदाचारी था, लेकिन इसका ईश्वर पर भरोसा नहीं था। इसका प्रश्न वास्तविक था, किताबी नहीं था। पूछ रहा था अपने बाबत कि ऐसा तो मैंने कोई आचरण नहीं किया है कि नर्क भेजा जाऊं। लेकिन ईश्वर पर मुझे भरोसा नहीं, मजबूरी है, मैं क्या करूं! तो मेरा क्या होगा?
पादरी ने कहा कि मुझे थोड़ा सोचने का मौका दें। उसने सात दिन सोचा। सोचा, कुछ समझ में न आया। क्योंकि मामला बड़ा उलझन का हो गया। कठिनाई यह हो गयी, अगर वह यह कहे कि सदाचारी परमात्मा को न मानने के कारण नर्क भेजा जाएगा, तो सदाचार का सारा मूल्य समाप्त हो गया। अगर वह यह कहे कि परमात्मा को मानने वाला असदाचारी हो तो भी स्वर्ग जाएगा, तो सिर्फ परमात्मा को मान लेना, खुशामद कर लेना, स्तुति कर देना काफी हो गया। सदाचार का क्या मूल्य रहा? और अगर वह यह कहे कि सदाचारी स्वर्ग जाएगा, परमात्मा को माने या न माने, तो भी सवाल उठता है फिर परमात्मा को मानने की जरूरत क्या? सदाचार ही निर्णायक है। तो फिर परमात्मा को बीच में क्यों लेना?
विज्ञान का एक नियम है, जितने कम सिद्धांतों से काम चल सके उतना उचित। क्योंकि ज्यादा सिद्धांत उलझाव खड़ा करते हैं। तो अगर सदाचार से ही स्वर्ग जाया जाता है और असद-आचार से नर्क जाया जाता है, तो बात खतम हो गयी, फिर परमात्मा को बीच में क्यों लेना? अगर परमात्मा को मानने से स्वर्ग जाया जाता है और परमात्मा को न मानने से नर्क जाया जाता है, तो सदाचार की बात समाप्त हो गयी, फिर सदाचार की बात को, बकवास को बीच में मत लाओ। न्यूनतम सिद्धांत विज्ञान का आधार है।
इसी आधार पर बुद्ध और महावीर ने परमात्मा को इनकार किया। बड़े वैज्ञानिक चिंतक थे। कर्म का सिद्धांत पर्याप्त है। परमात्मा को बीच में लाने से अड़चन होगी। दो सिद्धांत हो जाएंगे। विभाजन होगा। निर्णय करना मुश्किल हो जाएगा। एक ही सिद्धांत को रहने दो और उसकी सत्ता को सार्वभौम रहने दो।

सात दिन सोचा पादरी ने, कुछ सोच न पाया। जल्दी सातवें दिन चर्च आ गया
कि अब क्या करें! लोग अभी आए न थे, जाकर छत पर बैठ गया। रातभर सोचता रहा था, नींद न लगी थी, झपकी लग गयी। उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न देखा, सात दिन का जो ऊहापोह था, वही स्वप्न बन गया। स्वप्न देखा कि एक ट्रेन में बैठा है, स्वर्ग पहुंच रहा है। उसने कहा, यह अच्छा हुआ! देख ही लें कि मामला क्या है? पता लगा लें वहीं।
स्वर्ग जाकर उसने पूछा कि सुकरात यहां है? क्योंकि सुकरात ईश्वर को नहीं मानता था, लेकिन सदाचारी था। लोगों ने कहा कि नहीं, सुकरात का तो यहां कुछ पता नहीं है। खबर नहीं सुनी कभी सुकरात की यहां, कौन सुकरात? कैसा सुकरात? सदमा लगा उसे। फिर उसने चारों तरफ स्वर्ग में खोजकर देखा और भी खबर पूछी--गौतम बुद्ध यहां हैं? तीर्थंकर महावीर यहां हैं? कोई पता नहीं। लेकिन एक बात और उसे हैरानी की हुई कि स्वर्ग बड़ा बेरौनक मालूम पड़ता है। उदास-उदास है। उसने तो सोचा था उत्सव होगा वहां, लेकिन धूल-धूल सी जमी है। संसार से भी ज्यादा उदास मालूम पड़ता है। थका-हारा सा है। फूल खिले से नहीं लगते। सब तरफ गमगीनी है। बड़ा हैरान हुआ कि स्वर्ग भी स्वर्ग जैसा नहीं मालूम पड़ता। सुकरात भी नहीं, महावीर भी नहीं, बुद्ध भी नहीं, ये गए कहां? नर्क! यह बात ही सोचकर उसके मन को घबड़ाने लगी।
भागा स्टेशन आया। दूसरी ट्रेन तैयार थी, जा रही थी नर्क की तरफ, चढ़ गया। उसने कहा, यह अच्छा हुआ कि वक्त पर आ गए। नर्क पहुंचा, बड़ा चकित हुआ। वहां रौनक कुछ ज्यादा मालूम पड़ती थी। गीत गाए जा रहे थे, संगीत था हवा में, फूल खिले थे, ताजा-ताजा था। उसने कहा, यह कुछ मामला क्या है? कहीं तख्तियां तो गलत नहीं लगी हैं? यह तो स्वर्ग जैसा मालूम पड़ता है।
वह अंदर गया, उसने लोगों से पूछा कि सुकरात? तो उसने बताया कि सुकरात
वह सामने खेत में काम कर रहा है। सुकरात वहां हल-बक्खर चला रहा था। उसने पूछा, आप नर्क में? आप यहां नर्क में क्या कर रहे हो? इतने सदाचारी व्यक्ति को नर्क में? सुकरात ने कहा, किसने तुमसे कहा यह नर्क है? जहां सदाचारी है वहां स्वर्ग है। हम तो जब से आए, स्वर्ग में ही हैं। उसने लोगों से पूछताछ की।
उन्होंने कहा, यह बात सच है। जब से ये कुछ लोग आए हैं--बुद्ध, महावीर, सुकरात--तब से नर्क का नक्शा बदल गया है। इन्होंने स्वर्ग बना दिया है। उसकी नींद खुली गयी। घबड़ा गया। उसने उत्तर दिया अपने सुबह के प्रवचन में; उसने कहा कि संत स्वर्ग जाते हैं ऐसा नहीं, जहां संत जाते हैं वहां स्वर्ग है। पापी नर्क जाते हैं ऐसा नहीं, पापी जहां जाते हैं वहां नर्क है।
निर्णायक तुम हो। स्वर्ग और नर्क तुम्हारी हवा है, तुम्हारा वातावरण है। हर आदमी अपने स्वर्ग और नर्क को अपने साथ लेकर चलता है।
इसे स्मरण रखना, तो ही बुद्ध को ठीक से समझ पाओगे। दुख की आदत छोड़ो, नहीं तो दुख की आदत तुम्हें नर्क ले जाएगी। नर्क और स्वर्ग तो कहने की बातें हैं, कहने के ढंग हैं। दुख की आदत नर्क है।
उम्र तो सारी कटी इश्के-बुतां में मोमिन
आखिरी वक्त में क्या खाक मुसलमां होंगे
जिंदगीभर अगर तुम मूर्तियों की पूजा करते रहे, तो मरते वक्त मुसलमान कैसे हो जाओगे! वही मूर्तियां तुम्हें घेरे रहेंगी मरते वक्त भी। मरने के बाद मृत्यु तुम्हें वही देगी तो तुमने जीवन में अर्जित किया हो। मृत्यु तुम्हें वही सौंप देगी जो तुमने जीवनभर में कमाया हो। मौत तुम्हें नया कुछ नहीं दे सकती। मौत तो जीवनभर का निचोड़ है।
फिर से प्रश्न को हम समझ लें, "हम तो जीते-जी और सोते-जागते भय और अपराध-भाव के द्वारा अशेष नारकीय पीड़ा से गुजर चुकते हैं, क्या वह काफी नहीं है... ?"
किससे पूछते हो कि वह काफी नहीं? अगर काफी है, तो बाहर निकलो। अगर काफी
हो चुका है, तो क्यों खड़े हो भीतर?
नहीं, अभी काफी नहीं है। तुम्हारे अनुभव से अभी काफी नहीं है। अभी दिल कहता है, थोड़ा और भोग लें। अभी दिल कहता है, पता नहीं कहीं कोई सुख छिपा हो

इस दुख में! अभी दिल कहता है, आज तक नहीं हुआ, कल हो जाए, किसे मालूम! अभी मन भरा नहीं दुख से। अन्यथा कौन तुम्हें रोक रहा है? द्वार-दरवाजे पर किसी ने भी सांकल नहीं चढ़ायी है। दरवाजे खुले हैं। तुम्हीं अटक रहे हो। काफी अभी हुआ नहीं। और अगर तुम्हीं नहीं जानते कि काफी हुआ है, तो अस्तित्व कैसे जानेगा कि काफी हुआ है? अस्तित्व ने तुम्हें मालिक बनाया है, तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता दी है। जब तक तुम्हीं अपने नर्क से मुक्त न हो जाओ तब तक कोई तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता।
थोड़ा सोचो, दुख से भी मुक्त होना कितना कठिन मालूम हो रहा है। और बुद्धपुरुष कहते हैं, सुख से भी मुक्त हो जाना है। और तुम दुख से भी मुक्त नहीं हो पा रहे हो। क्योंकि तुम्हें दुख में सुख छिपा हुआ मालूम पड़ता है। और बुद्धपुरुष कहते हैं, सुख से भी मुक्त हो जाना है, क्योंकि उन्होंने सुख में भी दुख को ही छिपा पाया है।
दोनों की दृष्टि अगर ठीक से समझो तो अलग-अलग दृष्टिकोणों से है, लेकिन
एक ही है। तुमने दुख में सुख को छिपा सोचा है। बुद्धपुरुषों ने सुख में दुख को छिपा पाया। बहुत फर्क नहीं है। जरा सा। लेकिन बहुत भी। क्योंकि अगर तुम दुख में सुख को छिपा पा रहे हो, तो तुम दुख को पकड़े रहोगे। और अगर तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए कि तुम्हारे सारे सुख दुख का ही आवरण हैं, तो तुम दुख से तो मुक्त होओगे ही, तुम सुख से भी मुक्त हो जाओगे। तुम दोनों को छोड़कर बाहर आ जाओगे।
उस घड़ी का नाम निष्कलुष निर्वाण की घड़ी है; जब तुम सुख और दुख को पीछे छोड़कर आ जाते हो। जब तुम सोने की, लोहे की, सब जंजीरें छोड़कर बाहर आ जाते हो। और बाहर आने का एक ही आधार है--काफी का पता चल जाना, पर्याप्त हो चुका! मैंने सुना है, एक आदमी ने नब्बे साल की उम्र में अदालत में तलाक के लिए निवेदन किया। खुद नब्बे साल का, पत्नी कोई पचासी साल की। मजिस्ट्रेट भी थोड़ा चौंका। उसने पूछा कि तुम कब से विवाहित हो? उस नब्बे साल के आदमी ने कहा, कोई सत्तर साल हो चुके विवाहित हुए। तो उस मजिस्ट्रेट ने कहा कि अब सत्तर साल के बाद, मरने की घड़ी करीब आ रही है, अब तुम्हें तलाक की सूझी? उसने कहा, आखिर काफी काफी है। इनफ इज इनफ। किसी भी दृष्टिकोण से लें, उस आदमी ने कहा, काफी काफी है। सत्तर साल अब बहुत हो गया, अब छुटकारा चाहिए। और फिर अब ज्यादा समय भी नहीं बचा है, उस आदमी ने कहा, मौत करीब आ रही है, अब न छूटे तो फिर कब छूटेंगे?
मैं तुमसे कहता हूं, दुख को तलाक दो, काफी काफी है।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि किए हुए पापों को शांति और तटस्थता के साथ भोग लो। किंतु अनंत जन्मों के पाप क्या अनंत जन्मों तक भोगने पड़ेंगे? फिर ज्ञानाग्नि का आयोजन क्या है? कृपापूर्वक इस पर प्रकाश डालें।

पहली तो बात, पाप करते समय जब अनंत काल की फिकर न की, करते समय जब अनंत काल की फिकर न की, तो अब भोगते समय क्यों फिकर करते हो? और जब करने वाला अनंत काल बीत गया, तो भोगने वाला भी बीत ही जाएगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिसे तुम अनंत काल कहते हो, वह अनंत है नहीं। अगर अनंत काल तुमने पाप किए, तो इसका अर्थ यह हुआ कि अब तक जो बीत गया वह अनंत हो कैसे सकता है? उसकी सीमा तो आ गयी। अब तो तुम जागने लगे और तुमने लौटकर देखा कि यह तो बहुत समय से... कहो, बहुत समय तक पाप किया, अनंत मत कहो।
पाप तुमने किया, पाप का फल कौन भोगेगा? तुम कोई तरकीब चाहते हो कि पाप
तो कर लिए, पाप के फल से बच जाओ। कोई मंत्र, कोई चमत्कार, कोई तुम्हें छुटकारा दिला दे।
यहीं बुद्ध के वचन बहुत कठोर हो जाते हैं। क्योंकि बुद्ध कहते हैं, कौन तुम्हें छुटकारा दिलाएगा? और ऐसा भी नहीं है कि जागे हुए पुरुषों ने तुमसे बीच-बीच में हजारों बार न कहा हो कि रोको, बाहर आ जाओ। और ऐसा भी नहीं है कि मैं तुमसे आज कह रहा हूं कि तुम बाहर आ जाओ, तो तुम आज बाहर आ जाओगे। तुम करते ही रहोगे। अगले जन्म में फिर तुम किसी के सामने यही कहोगे कि

अनंत जन्मों तक किया हुआ पाप, अब क्या अनंत जन्मों तक फल भोगने पड़ेंगे? करते तुम चले जाते हो।
तुम असंभव की आकांक्षा करते हो। पाप तो तुम करो और फल तुम्हें न मिले।
फल किसको मिलेगा फिर? दुख तो तुम बोओ, फसल कौन काटेगा? और यह तो अन्याय होगा कि फसल किसी और को काटनी पड़े। फसल तुम्हें ही काटनी पड़ेगी।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, फिकर छोड़ो इसकी कि कितना समय बीत चुका,
जब जागे तब जागे, तभी सुबह! और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुमने जितने समय दुख बोया है, उतने ही समय तुम्हें भोगना पड़ेगा। मगर तुम्हें राजी तो होना चाहिए भोगने के लिए। भोगना न पड़ेगा। मगर तुम्हें राजी होना चाहिए भोगने के लिए। उस राजीपन में ही छुटकारा है।
तुम्हें कहना तो यही चाहिए कि चाहे कितना ही समय लगे, जो मैंने किया है, उसे भोगने के लिए मैं राजी हूं। चाहे अनंत काल लगे। तुम्हें अपनी तरफ से तैयारी तो यह दिखानी ही चाहिए। वह तुम्हारा सौमनस्य होगा। वह तुम्हारा सदभाव होगा। वह तुम्हारी ईमानदारी होगी, प्रामाणिकता होगी। तुम्हें यह तो कहना ही चाहिए कि जब मैंने फसल बोयी है, तो मैं काटूंगा। और जितने समय बोयी है उतने समय काटूंगा। इसमें मैं किसी और पर जिम्मेवारी नहीं देता। और न कोई ऐसा सूक्ष्म रास्ता खोजना चाहता हूं कि किसी तरह बचाव हो जाए-- किसी रिश्वत से, किसी खुशामद से, किसी प्रार्थना से--नहीं, कोई बचाव नहीं चाहता। मेरे किए का फल मुझे मिलना ही चाहिए।
तुम तैयारी दिखाओ। तुम्हारी तैयारी अगर साफ हो, तो एक बात समझ लेने जैसी है, दुख का संबंध विस्तार से कम होता है, गहराई से ज्यादा होता है।
दुख के दो आयाम हैं। एक तो लंबाई है और एक गहराई है। तुम्हारे पास एक कटोरी भर जल है। तुम उसे एक छोटी सी शीशी में डाल दो, तो जल की गहराई बढ़ जाती है।
तुम उसे फर्श पर फैला दो, जल उतना ही है, लेकिन गहराई समाप्त हो जाती है। उथला-उथला फैल जाता है। सतह पर पर्त फैल जाती है।
तुमने जो पाप किए हैं, वह तो समय की बड़ी लंबाई पर किए हैं। लेकिन अगर तुम राजी हो झेलने को, तो तुम समय की गहराई में उनको झेल लोगे। एक सालभर का सिरदर्द एक क्षण में भी झेला जा सकता है, गहराई का सवाल है। पीड़ा इतनी सघन हो सकती है, इतनी प्राणांतक हो सकती है कि तुम्हारे पूरे अस्तित्व को तीर की तरह भेद जाए।
यहां तुम्हें मैं एक बात समझा देना चाहूं, जो कई दफे पूछी जाती है, लेकिन ठीक समय न होने से मैंने कभी उसका उत्तर नहीं दिया। बहुत बार पूछा जाता है कि रामकृष्ण कैंसर से मरे, रमण भी कैंसर से मरे, महावीर बड़ी गहन उदर की बीमारी से मरे, बुद्ध शरीर के विषाक्त होने से मरे! ऐसे महापुरुष, ऐसे पूर्णज्ञान को उपलब्ध लोग, ऐसी संघातक बीमारियों से मरे! कैंसर! शोभा नहीं देता, जंचता नहीं। रमण और कैंसर से मरें! और यहां करोड़ों हैं, महापापी, जो बिना कैंसर के मरेंगे। तो रमण के भाग्य में ऐसा क्या लिखा है? मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि अक्सर ऐसा हुआ है कि जिस व्यक्ति का आखिरी क्षण आ गया, इसके बाद जिसका जन्म न होगा--रमण या रामकृष्ण, यह उनका आखिरी, यह उनका शरीर से आखिरी संबंध है--उनकी पीड़ा सघन हो जाती है। तो जो तुम वर्षों-वर्षों और जन्मों-जन्मों तक भोगोगे, वे क्षण में भोग लेते हैं। कैंसर बड़ी सघन पीड़ा है। रामकृष्ण ने तो इलाज के लिए भी तैयारी नहीं दिखायी। क्योंकि उन्होंने कहा, अगर इलाज होगा, तो पीड़ा कौन झेलेगा? कंठ का कैंसर था उन्हें। अवरुद्ध हो गया था कंठ बिल्कुल। न पानी पी सकते थे, न भोजन ले सकते थे। शरीर सूखता जाता था। और भयंकर पीड़ा थी, न सो सकते थे, न बैठ सकते थे, न लेट सकते थे। कोई स्थिति में चैन न था।
विवेकानंद ने रामकृष्ण को जाकर कहा कि परमहंसदेव! हमें पता है कि अगर
आप जरा भी मां को कह दें, काली को कह दें, तो यह दुख ऐसे ही विलीन हो जाएगा जैसे स्वप्न विलीन हो जाता है। कितने दिन हो गए आपने जल नहीं पीया! कितने दिन हुए अपने भोजन नहीं किया! आप कहें।
रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा, मेरे बिना ही कहे कल रात मैंने काली को देखा और वह कहने लगी, रामकृष्ण! इस कंठ से तो बहुत भोजन कर लिया, अब दूसरे कंठों से भोजन करो। तो रामकृष्ण ने कहा, अब तुम्हारे सब कंठों से

भोजन करूंगा। अब यह कंठ थक गया। अब इसके आने का समय भी समाप्त हो गया। अब यह जाने की घड़ी है। इलाज भी नहीं किया। क्योंकि पीड़ा को उसकी पूरी त्वरा में झेल लेना मुक्त हो जाना है।
तो मैं तुमसे यह दूसरी बात कहना चाहता हूं कि जरूरी नहीं है कि तुमने बहुत-बहुत जन्मों तक पाप किए हैं, इसलिए उतने ही जन्मों तक तुम्हें पाप का फल भोगना पड़े। लेकिन अगर तुम्हारी तैयारी हो, तो एक क्षण में भी जन्मों के पाप सघन हो सकते हैं। उनकी पीड़ा बड़ी गहन होगी। और अगर तुम तटस्थ-भाव से देख सको, तो एक क्षण में जन्मों-जन्मों की कथा समाप्त हो जाती है। इसलिए अक्सर बुद्धपुरुष बड़ी संघातक बीमारियों से मरे हैं।
जीसस का सूली पर लटकाया जाना, सोचने जैसा है। क्योंकि कर्म का सिद्धांत तो यही कहेगा कि यह सूली पर लटकाया जाना, किसी महापाप का फल है। जन्मों-जन्मों के पाप का फल है। ठीक है। एक क्षण में सूली पर जीसस ने वह सारी पीड़ा भोग ली, जो हम जन्मों-जन्मों में भी न भोग सकेंगे।
हम छोटी-छोटी मात्रा में भोगते हैं। होमियोपैथी की मात्रा की तरह चलती है हमारी पीड़ा। छोटी-छोटी पुड़िया--दो-दो शक्कर की गोलियां--ले रहे हैं। एलोपैथिक डोज भी लिया जा सकता है। और जो व्यक्ति राजी है, राजी का अर्थ है, जिसने यह कहा कि मैंने ही दुख कमाए, मैंने ही दुख दिए, अब उनके भोगने के लिए मैं पूरी तरह तैयार हूं। उसी घड़ी एक क्रांति घटित होती है। समय नया रूप लेता है। लंबाई हट जाती है, गहराई बढ़ती है। उस स्वीकार-भाव में ही दुख का तीर प्राणों तक छिद जाता है। एक क्षण में भी सारे जन्मों के पापों से छुटकारा है।
लेकिन तुमसे मैं कहूंगा, इसकी तुम आकांक्षा मत करो। नहीं तो तुम न्याय के विपरीत जा रहे हो, तुम नियम के विपरीत जा रहे हो।
और भी आसान होंगी राह की दुश्वारियां
हर अमीरे-कारवां को राहजन होने भी दे
जिसने एक बार ठीक से समझ लिया कि मैंने जन्मों-जन्मों तक दुख बोए हैं,
अब वह कहेगा कि जितने दुख मुझ पर आएं, उतना भला। अगर यात्री-दल के नेता लुटेरे हो जाएं और मुझे सब तरह लूट लें, तो और भी भला।
और भी आसान होंगी राह की दुश्वारियां
राह की कठिनाइयां कम हो जाएंगी।
हर अमीरे-कारवां को राहजन होने भी दे
अगर यात्री-दल का नेता लुटेरा हो जाए, तो और भी अच्छा। अगर यह सारा संसार तुम्हें लूट ही ले, तो और भी अच्छा। उतने ही तुम हल्के हो जाओगे।
यह मुद्दत हस्ती की आखिर यूं भी तो गुजर ही जाएगी
दो दिन के लिए मैं किससे कहूं आसान मेरी मुश्किल कर दे
प्रार्थना मत करना। क्योंकि प्रार्थना में तुम बेईमान आकांक्षा कर रहे हो। तुम यह कह रहे हो कि दुख तो मैंने बनाए, तू क्षमा कर दे। करते वक्त तुमने उसे बुलाया न, भोगते वक्त बुलाते हो! करते वक्त वह अपने तईं से भी आए, तो तुमने सुना न। भोगते वक्त तुम चिल्लाते हो!
दो दिन के लिए मैं किससे कहूं आसान मेरी मुश्किल कर दे
ठीक है, ये दो दिन भी गुजर ही जाएंगे। जैसे और दिन गुजर गए, ये दिन भी गुजर जाएंगे।
राह में बैठा हूं मैं तुम संगे-रह समझो मुझे
आदमी बन जाऊंगा कुछ ठोकरें खा जाने के बाद
जैसे राह पर पड़ा एक पत्थर हूं मैं।
राह में बैठा हूं मैं तुम संगे-रह समझो मुझे
आदमी बन जाऊंगा कुछ ठोकरें खा जाने के बाद
मारो ठोकरें, चिंता न करो। ये ठोकरें ही मुझे जगाएंगी।
दुख जगाता है। दुख निखारता है। दुख सतेज करता है। और अगर तुम्हारा दुख तुम्हें अभी तक सतेज नहीं कर पाया, तो तुमने दुख को दुख की तरह देखा ही नहीं, पहचाना नहीं। तुम अभी भी दुख को अफीम की तरह लिए जा रहे हो। तुम उससे सो रहे हो।
तुझसे भी कुछ बढ़के थीं तेरी तमन्नाएं हसीन

सैकड़ों परियों के झुरमुट में तेरा दीवाना था
छीन ली क्यों आपने मुझसे मताए-सब्रो-होश
क्या सजाए-कैदे-गम के साथ कुछ जुर्माना था
आदमी सोचता है ऐसा, कि एक तो संसार के कारागृह में डाल दिया, दुख में डाल दिया, और फिर सब्र और होश भी छीन लिया, तो यह क्या सजा के साथ-साथ जुर्माना है?
तुझसे भी कुछ ब.ढ़के थीं तेरी तमन्नाएं हसीन
सैकड़ों परियों के झुरमुट में तेरा दीवाना था
छीन ली क्यों आपने मुझसे मताए-सब्रो-होश
क्या सजाए-कैदे-गम के साथ कुछ जुर्माना था
लेकिन कोई न तो तुम्हें कारागृह में डाल रहा है, न कोई तुमसे होश छीन रहा है। होश तुम खुद ही खो रहे हो। होश तुम्हें मिला है--जन्म के साथ मिला है--तुम उसे बेच-बेचकर कूड़ा-कचरा खरीद रहे हो। तुम होश को काट-काटकर तिजोड़ी भर रहे हो। तुम होश को काट-काटकर व्यर्थ की संपत्ति इकट्ठी कर रहे हो। होश तुम्हारा स्वभाव है। और जितना होश कम हो जाएगा, उतने तुम कारागृह में गिर रहे हो। कोई तुम्हें गिराता नहीं। बेहोशी कारागृह है। होश मोक्ष है।
बुद्ध से किसी ने पूछा, मोक्ष की परिभाषा क्या है आपकी? तो उन्होंने कहा, अप्रमाद। बेहोशी न हो। तो मोक्ष को कहीं आकाश में न बताया, भीतर बताया तुम्हारे। बेहोशी न हो, मूर्च्छा न हो, जागरण हो।
फिर से प्रश्न को सुन लें, "कल आपने कहा कि किए हुए पापों को शांति और तटस्थता के साथ भोग लो।"
अगर तुमने शांति और तटस्थता के साथ दुख को भोग लिया, तो उसी शांति और तटस्थता में तुम दुख के पार हो गए। अगर तुमने दुख को गौर से देखा और भोग लिया, तो तुम साक्षी हो गए, द्रष्टा हो गए। दुख दूर हो गया--विषय हो गया। तुम देखने वाले हो गए, दुख दृश्य हो गया। तुम्हारा दुख से तादात्म्य छूट गया।
इसे कभी प्रयोग करके देखो। साधारण दुखों में प्रयोग करो पहले। सिर में दर्द है, द्वार-दरवाजे बंद करके शांत बैठ जाओ और भीतर सिर के दर्द को देखने की कोशिश करो। साधारणतः, हम दर्द के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं। लगता है कि मुझे दर्द है, मैं दर्द हो गया। हम दर्द में डूब जाते हैं। थोड़ा अपने को निकालो बाहर। थोड़े सिर को दर्द के बाहर उठाओ, ऊपर उठाओ, दर्द को देखो--यह रहा सिरदर्द।
देख सकोगे, क्योंकि सिरदर्द एक घटना है, पीड़ा है। तुम पीछे से खड़े होकर देख सकोगे। और जैसे-जैसे तुम देखने लगोगे, तुम चकित होओगे। जैसे-जैसे तुम देखते हो, फासला बढ़ता है। यहां दृष्टि गहरी होती है, दर्द से फासला बढ़ता है, दर्द दूर होने लगा। नहीं कि मिट जाएगा, दूर होगा, दोनों के बीच बड़ा अंतराल आ जाएगा। जैसे बीच का सेतु टूट गया। वहां दर्द है, यहां तुम हो।
और तब तुम और भी चकित होओगे कि जैसे-जैसे दर्द दूर होगा, दर्द का फैलाव
कम होने लगेगा, सिकुड़ेगा। जैसे छोटे स्थान को घेरने लगा। ज्यादा एकाग्र होने लगेगा। एक ऐसी घड़ी आएगी सिरदर्द की कि जैसे एक सुई की नोक पर टिका रह गया--बड़ा गहन हो जाएगा, तीव्र हो जाएगा, लेकिन सूक्ष्म हो जाएगा, सुई की नोक जैसा हो जाएगा। तुम वहीं गौर से देखते रहना।
तब तुम एक नए अनुभव को उपलब्ध होओगे। कभी-कभी क्षणभर को नोक दिखायी पड़ेगी, क्षणभर को खो जाएगी। क्षणभर को तुम पाओगे दर्द है, क्षणभर को तुम पाओगे कहां गया? ऐसी झलकें आनी शुरू होंगी। और अगर तुम देखते ही गए, तो तुम पाओगे कि तुम्हारा जैसा दर्शन स्पष्ट हो जाता है, वैसे ही दर्द शून्य हो जाता है। द्रष्टा जितना जागता है, दर्द उतना ही शून्य हो जाता है। द्रष्टा जब परिपूर्ण जागता है, दर्द परिपूर्ण शून्य हो जाता है।
जानने वालों का अनुभव यही है कि मूर्च्छा में ही दुख है। होश में दुख
खो जाता है। अगर तुम चिकित्सक से पूछो, सर्जन से पूछो, उसका भी एक अनुभव है। वह कहता है, जब तुम्हें बेहोश कर देते हैं, तब भी दर्द खो जाता है। इसीलिए तो आपरेशन करना हो तो बेहोश करना पड़ता है। बेहोशी का मतलब क्या है?

बेहोशी का कुल इतना मतलब है कि तुम्हारे होश और दर्द का संबंध तोड़ देते हैं। तुम्हारा होश अलग पड़ जाता है, तुम्हारा दर्द अलग पड़ जाता है। दोनों के बीच में जो संबंध जोड़ने वाले स्नायु हैं, उन्हें बेहोश कर देते हैं। फिर आपरेशन होता रहता है--तुम्हारा पेट कटता रहे, हाथ कटता रहे--तुम्हें पता भी नहीं चलता।
ठीक यही घटना परम होश में भी घटती है, बुद्धत्व में भी घटती है। तुम इतने होश से भर जाते हो कि होश से भर जाने के कारण सेतु टूट जाता है। या तो सेतु तोड़ दो, तो होश खो जाता है। या होश पूरा ले आओ, तो सेतु टूट जाता है। जो सर्जन करता है एक तरफ से, वही आत्मसाधकों ने किया है दूसरी तरफ से।
तटस्थता और शांति से भोग लो, तो तुम मुक्त हो जाओगे।
पूछा है, "फिर ज्ञानाग्नि का प्रयोजन क्या है?"
ज्ञानाग्नि का प्रयोजन यही है कि वह तुम्हें तटस्थ बनाए, शांत बनाए।
ज्ञानाग्नि का अर्थ ही है, वह तुम्हें ज्ञाता बनाए, द्रष्टा बनाए।

आखिरी प्रश्नः अनाश्रव-पुरुष से क्या अर्थ है?

अनाश्रव जैनों और बौद्धों का विशेष शब्द है। बड़ा बहुमूल्य शब्द है। पारिभाषिक है।
उसका अर्थ होता है, चैतन्य की ऐसी दशा, जहां बाहर से कुछ भीतर नहीं आता। आश्रव का अर्थ होता है, आना। अनाश्रव का अर्थ होता है, जहां बाहर से भीतर कुछ भी नहीं आता। जैसे तुमने द्वार खोला, धूल उड़ी, भीतर आयी, यह आश्रव है। तुमने द्वार खोला, कुछ भी भीतर न आया--धूल न उड़ी, हवा भी न कंपी, कुछ भी भीतर न आया--यह अनाश्रव है।
साधारण आदमी आश्रव की अवस्था में है। कुछ भी करे, चीजें भीतर आ रही हैं। तुम राह से चले जा रहे हो, कोई कार गुजरी, एक क्षण को कार की झलक मिली, गयी, लेकिन आश्रव हो गया। तुम्हारे भीतर एक वासना जग गयी, ऐसी कार मेरे पास होनी चाहिए। कार तो गयी, लेकिन तुमने आश्रव कर लिया, धूल भीतर आ गयी। एक सुंदर स्त्री निकली, धीमा सा मन में एक सपना उठा कि ऐसी पत्नी मेरी होती। तुमने आश्रव कर लिया। तुम इस तरह आश्रव इकट्ठा कर रहे हो। और इस तरह की धूल इकट्ठी होती जाती है भीतर। यही धूल तुम्हारा बोझ है।
अनाश्रव का अर्थ है, कुछ भी भीतर नहीं आता। तुम देखते हो कोरी आंख से।
देखते हो, लेकिन भीतर कुछ भी नहीं आता। कार गुजर जाती है, स्त्री गुजर जाती है।
ऐसा हुआ। पूर्णिमा की रात थी और बुद्ध एक जंगल में ध्यान करने बैठे थे। कुछ गांव के युवक एक वेश्या को लेकर जंगल में आ गए थे--मौज-मजे के लिए। उन्होंने खूब शराब डटकर पी ली, वेश्या के सब कपड़े छीन लिए, पर वे इतने शराब में धुत्त हो गए कि वेश्या ने मौका देखा और भाग निकली। जब उन्हें सुबह होते-होते भोर होते-होते होश आया, थोड़ी ठंडी हवा लगी, तो उन्होंने देखा, स्त्री तो भाग गयी। तो उसको खोजने निकले।
कोई और तो न मिला, बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे मिल गए। तो उन्होंने पूछा, इस भिक्षु को जरूर--क्योंकि यहां से ही रास्ता जाता है, स्त्री यहां से गुजरी ही होगी, गुजरना ही पड़ेगा, और कोई रास्ता नहीं है--तो पूछा आकर कि आप रातभर यहां थे? बुद्ध ने कहा, रातभर था। कोई स्त्री यहां से गुजरी? बुद्ध ने कहा, कोई गुजरा। स्त्री थी या पुरुष था, यह कहना मुश्किल है। उन्होंने पूछा, आंखें बंद किए थे कि खोलकर बैठ थे? बुद्ध ने कहा, आंखें खोलकर बैठा था। उन्होंने कहा, हैरानी की बात है। फिर तुम्हें पता न चला कि स्त्री है कि पुरुष? नग्न थी कि वस्त्र पहने थी? उन्होंने कहा, यह भी मुश्किल है। कोई गुजरा। लेकिन, बुद्ध ने कहा, तुम समझ न पाओगे, तुम आश्रव की भाषा समझोगे, तुम अनाश्रव की भाषा न समझोगे--आंखें देखती थीं, लेकिन देखने की अब कोई उत्सुकता नहीं।
तुमने कभी खाली आंखों से देखा? आंखें देखती हैं, लेकिन देखने की कोई वासना नहीं है। आंखें देखती हैं, क्योंकि देखना उनका गुणधर्म है। लेकिन देखने के पीछे कोई ख्याल नहीं है। तो चीज गुजर जाती है, भीतर कुछ भी नहीं

जाता। दर्पण की तरह तुम रहते हो। चित्र बना, आदमी गुजर गया, दर्पण खाली था खाली हो गया। फिर कुछ और आया, चित्र बना, गया।
अनाश्रव का अर्थ है, दर्पण की भांति। आश्रव का अर्थ है, फोटो की फिल्म
की भांति। कैमरे का दरवाजा जरा सा खुलता है--क्षणभर को भी नहीं, क्षणभर के एक हजारवें हिस्से को खुलता है--उतने में ही आश्रव हो जाता है। उतने में ही फिल्म ने चित्र पकड़ लिया। दर्पण खुला रहता है--खुला ही रखा रहता है--सदियां बीत जाती हैं, कुछ भी पकड़ता नहीं। चित्त की ऐसी दर्पण जैसी अवस्था का नाम अनाश्रव है।
जब तक तुम्हारे मन में वासना है तब तक तुम पकड़ते ही रहोगे। जब तुम वासना को समझोगे, उसकी व्यर्थता को समझोगे, उससे मिले दुख का अनुभव करोगे, तब किवाड़ खुले भी रहें या बंद भी रहें, कोई फर्क नहीं पड़ता।
कल मैं एक गीत पढ़ रहा था--
फिर कोई आया दिले-जार
नहीं, कोई नहीं
राहरौ होगा, कहीं और चला जाएगा
ढल चुकी रात
बिखरने लगा तारों का गुबार लड़खड़ाने लगे ऐवानों में
ख्वाबीदा चिराग
सो गयी रास्ता तक-तक के
हर इक राहगुजार
अजनबी खाक ने धुंधला दिए
कदमों के सुराग
गुल करो शम्मएं
बढ़ा दो मय-ओ-मीना-ओ-अयाग
अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुकफ्फल कर लो
अब यहां कोई नहीं आएगा
साधारणतः आदमी ऐसा है। द्वार-दरवाजे पर बैठा है और प्रतीक्षा कर रहा है, कोई आता है--कोई सुख, कोई आनंद, कोई रस, कोई अनुभव, कोई धन, कोई संपदा, कोई यश--कोई आता है। हम चौबीस घंटे चारों दिशाओं में अपने दरवाजे को खोलकर बैठे हैं--कोई आएगा, कोई आएगा। कभी कोई आया नहीं। कभी कोई आने को नहीं है। हमारा होना ही हमारा एकमात्र होना है। लेकिन दीया जलाया है, राह देखे चले जाते हैं। संसारी मन प्रतीक्षातुर मन हैः कुछ न कुछ होकर रहेगा। कुछ न कुछ जरूर होगा। जैसे हमारा होना काफी नहीं है, कुछ और हो तभी हमें सुख मिलेगा। लेकिन जब यह सब प्रतीक्षा व्यर्थ हो जाएगी, यह बात व्यर्थ हो जाएगी, तुम समझ लोगे--कोई न कभी आता है, न कभी कोई जाता है, तुम अकेले हो, तुम्हारा होना आत्यंतिक है, आखिरी है; इससे ऊपर होने की कोई जगह भी नहीं है, कोई संभावना भी नहीं है; इससे ऊपर पाने का कोई उपाय भी नहीं है, पाने की जरूरत भी नहीं है, पाने योग्य भी नहीं है; तुम्हारा होना परमसुख है--वैसी हालत में तुम बुझा दोगे दीया, द्वार अटका दोगे, आंख बंद कर लोगे। इसको ही हमने ध्यान कहा है।
फिर कोई आया दिले-जार
नहीं, कोई नहीं
अभी तो ऐसा है कि हम चौंक-चौंक उठते हैं। पत्ता भी खड़के, फिर आंख खोल लेते हैं--कोई आया? राह से कोई गुजरता है, हम जल्दी से दरवाजे पर आ जाते हैं--कोई आया?
तुमने कभी प्रतीक्षातुर अवस्था का निरीक्षण किया? जब तुम किसी की राह देखते हो, तो हर चीज उसी के आने की खबर देती मालूम होती है। तुम राह देख रहे हो, कोई मित्र आने वाला है; पोस्टमैन आया, भागे--शायद आ गया हो। एक कुत्ता ही राह पर आ गया था, सीढ़ियां चढ़ रहा था, आवाज हुई, भागे--शायद आ गया हो। हवा का झोंका ही चला आया था, कुछ सूखे पत्ते उड़ा लाया था--भागे।
फिर कोई आया दिले-जार
नहीं, कोई नहीं

राहरौ होगा, कहीं और चला जाएगा रास्ते की आवाज है।
ढल चुकी रात
बिखरने लगा तारों का गुबार लड़खड़ाने लगे ऐवानों में
ख्वाबीदा चिराग
सो गयी रास्ता तक-तक के
हर एक राहगुजार
अजनबी खाक ने धुंधला दिए
कदमों के सुराग
गुल करो शम्मएं
बुझाओ दीए।
गुल करो शम्मएं
बढ़ा दो मय-ओ-मीना-ओ-अयाग
अब हटाओ ये प्यालियां, यह शराब, यह बेहोशी!
अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुकफ्फल कर लो
और अब बंद करो ये दरवाजे!
अब यहां कोई नहीं आएगा
ऐसा ही नहीं है कि अब यहां कोई नहीं आएगा, यहां कोई कभी नहीं आया। आना तुम्हारी कामना है। आए कोई, ऐसी तुम्हारी वासना है। सत्य में न कभी कोई आता, न जाता। सत्य है। गाड इज। सत्य है। आना-जाना कुछ भी नहीं है। अनाश्रव-चित्त की दशा का अर्थ होता है, तुम भी सिर्फ हो। न किसी की प्रतीक्षा है, न कुछ मांग है, न कोई प्रार्थना है, बस हो। उस होने की दशा में न भीतर कुछ आता, न बाहर कुछ जाता। सब ठहर गया। सब गति अवरुद्ध हुई। सब कंपन विदा हुआ। निष्कंप हुए।
अनाश्रव बौद्धों और जैनों का शब्द है। ठीक वैसे ही जैसे कृष्ण का शब्द है, स्थितप्रज्ञ। अनाश्रव का वही अर्थ है, जो स्थितप्रज्ञ का। ठहर गयी प्रज्ञा। अब कुछ भी आता-जाता नहीं। शाश्वत हुआ समय। अब क्षण की झंकार बंद हुई, अब स्वर खो गए, शून्य निर्मित हुआ।
इसे तुम थोड़ा प्रयोग करो। घड़ीभर को ही सही, क्षणभर को ही सही। अगर क्षणभर को भी तुमने अनाश्रव का अनुभव किया, तुम महा आनंद से भर जाओगे। तुम जिसे खोज रहे हो, वह दूर नहीं, वह तुम्हारे भीतर है। तुम जिसकी मांग कर रहे हो, वह मांगने से न मिलेगा, वह मिला ही हुआ है। बुझाओ दीए, द्वार-दरवाजे बंद करो। डूबो ध्यान में। पहले क्षणभर को कभी-कभी झलक मिलेगी अनाश्रव की--सब ठहरा हुआ; कोई कंपन नहीं। फिर धीरे-धीरे झलक गहरी होगी।
क्षणभर की झलक का नाम ध्यान है। और जब झलक गहरी हो जाती, स्थाई हो जाती, तुम्हारा स्वभाव हो जाती, तब उसका नाम समाधि है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
अड़तालीसवां प्रवचन

आज बनकर जी!

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायंति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हन्नेय न घातये।। 115।।

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं।। 116।।

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं।। 117।।

मावोच्च फरुसं किंव वुत्ता पटिवदेय्युतं।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिण्डा फुस्सेय्यु तं।। 118।।

सचेनेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा।
एक पत्तोसि निब्बानं सारम्भो ते न विज्जति।। 119।।

सूत्र के पूर्व कुछ अत्यंत अनिवार्य बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली, समस्त बुद्धपुरुष स्वार्थ सिखाते हैं। कठिन होगा। क्योंकि स्वार्थ के हमने बड़े गलत अर्थ लिए हैं। हम जिसे स्वार्थ कहते हैं, वह तो स्वार्थ है ही नहीं। हम तो स्वार्थ के नाम पर आत्मघात ही करते हैं। हम तो अमृत के नाम पर जहर ही पीते हैं। फूलों के नाम पर हमने कांटों के अतिरिक्त और कोई संपदा इकट्ठी नहीं की।
बुद्धपुरुष वही सिखाते हैं जो तुम्हारे हित में है। स्वार्थ सिखाते हैं। स्वार्थ का अर्थ होता है--स्व की नियति को पहचान लेना, स्वभाव को पहचान लेना। स्वार्थ का अर्थ होता है--स्वयं के कल्याण को पहचान लेना। ऐसे जीना कि रोज-रोज सुख महासुख बनता चले।
स्वयं के अनुकूल जो जीएगा, सुख में जीएगा। स्वयं के प्रतिकूल जो जीएगा, वह दुख में जीएगा। दुख की तुम इसे परिभाषा समझो। अगर जीवन में दुख हो, तो जानना कि तुम स्वभाव के प्रतिकूल जी रहे हो। दुख केवल सूचक है। दुख केवल खबर देता है कि कहीं कुछ भूल हो रही है।
तुम धर्म के अनुकूल नहीं हो, वहीं दुख होता है। जहां तुम धर्म के अनुकूल हो, वहीं सुख होता है। एस धम्मो सनंतनो। यही सनातन नियम है।
इसलिए मैं तुमसे फिर कहता हूं, बुद्धपुरुष स्वार्थ सिखाते हैं, स्व
का अर्थ सिखाते हैं, स्व की नियति सिखाते हैं, स्व की पहचान सिखाते हैं। और जिस दिन तुम स्वयं को समझ लेते हो, उस दिन तुमने सबको समझ लिया। क्योंकि जो तुम्हारा स्वभाव है, वही सबका स्वभाव है। रूप-रंग के होंगे भेद, स्वभाव में भेद नहीं है। जो मेरा स्वभाव है, वही तुम्हारा स्वभाव है। जो तुम्हारा स्वभाव है, वही आकाश में उड़ते पक्षी का स्वभाव है। जो तुम्हारा स्वभाव है, वही वृक्ष का, वही चट्टान का स्वभाव है। भेद रंग-रूप के हैं, ऊपर-ऊपर हैं, आकृति के हैं। लेकिन आकृति में जिसने आवास किया है, उसका कोई भेद नहीं है। स्वभाव एक है, यह दूसरी बात समझ लो। जिसने स्व को पहचाना, उसने तत्क्षण यह भी पहचाना कि स्वभाव एक है। वहां अपना और पराया नहीं है कोई। जो तुम चाहते हो, वही तो सभी चाहते हैं। हम कितने अंधे न होंगे कि इतना प्रगाढ़ सत्य भी दिखायी नहीं पड़ता! तुम सुख चाहते हो, सभी सुख चाहते हैं।
तुम दुख से बचना चाहते हो, सभी दुख से बचना चाहते हैं।
छोटी से छोटी कीड़ी भी दुख से बचना चाहती है, उसी तरह जैसे तुम बचना चाहते हो। जमीन में धंसा हुआ, खड़ा हुआ वृक्ष भी सुख की वैसी ही आकांक्षा करता है, जैसी तुम करते हो। प्यासा होता है, भूखा होता है, तड़फता है।
प्रफुल्लित होता है, तृप्त होता है, तब गीत गाता है। पक्षी भी नाचते हैं, पक्षी भी कुम्हलाते हैं। जहां सुख की वर्षा हो जाती है, नृत्य हो जाता है।

जहां सुख छिन जाता है, वहीं दुख और नर्क खड़ा हो जाता है। इतना प्रगाढ़ सत्य भी हमें दिखायी नहीं पड़ता--हमारा अंधापन बहुत गहरा होगा।
बुद्धपुरुष इतना ही कहते हैंः अपने भीतर ठीक से देखो, तुमने सबके भीतर देख लिया। आत्मा को पहचान लिया तो परमात्मा को पहचान लिया। स्व को जान लिया तो सब को जान लिया। उस एक के जान लेने से सब जान लिया जाता है। फिर उस जानने के विपरीत मत चलो।
यहीं गहरे प्रश्न उठते हैं। यह तो तुम्हें भी पता है, दूसरे भी सुख चाहते हैं जैसा तुम चाहते हो। लेकिन फिर भी तुम इस नियम के अनुकूल नहीं चलते। तुम सोचने लगते हो कि मेरे सुख के लिए अगर दूसरे को दुख भी देना पड़े तो दूंगा। दूसरा भी सुख चाहता है, उतना ही जितना तुम चाहते हो। लेकिन तुम अपने लिए अलग नियम बनाने लगे। अब तुम कहते हो मेरे सुख में तो चाहे सारे संसार को दुख मिले, तो भी मैं अपना सुख चाहूंगा।
इसका अर्थ हुआ कि तुम स्वभाव के प्रतिकूल चलने लगे। तुम दूसरे को दुख दोगे, अपने सुख के लिए। लेकिन तुम्हारा होना और दूसरे का होना अलग-अलग नहीं है। दूसरे को दुख देने में तुम अपने ही दुख का इंतजाम कर लोगे। गड्ढा किसी और के लिए खोदोगे, एक दिन खुद को गिरा हुआ पाओगे। क्योंकि वह दूसरा तुमसे पार, दूर, भिन्न नहीं है। तुमसे जुड़ा है, संयुक्त है।
तुमने दूसरे को चोट पहुंचायी है तो चोट तुम्हीं को लगेगी। तुम छोटे बच्चों की तरह व्यवहार कर रहे हो। छोटे बच्चे को टेबल का धक्का लग जाता है। वह गुस्से में आकर एक चांटा टेबल को मार देता है। उसका तर्क साफ है कि इस टेबल ने गड़बड़ की, मारो। लेकिन जब टेबल को चांटा मारा जाता है, तो अपने ही हाथ को चोट लगती है। तुम उस चोट को भी झेलने को राजी हो जाते हो, क्योंकि तुम सोचते हो, दूसरे को मारा, दंडित किया। जिसने दुख दिया, उसे दुख देंगे। यह तो बिल्कुल तर्कपूर्ण मालूम होता है तुम्हें।
लेकिन तुम किसी को भी दुख दो, दुख तुम्हीं पर लौट आएगा। क्योंकि दूसरे
और तुम्हारे बीच में कोई दुर्ग की दीवालें नहीं हैं। एक जगह है जहां हम मिले-जुले हैं। जैसे नदी में तुमने रंग घोल दिया, तो फैल जाएगा रंग पूरी छाती पर नदी की। लहरें उसे दूर-दूर के किनारों तक पहुंचा देंगी। ऐसे ही अगर तुमने कहीं भी दुख डाला, तो दूर-दूर तक फैलने लगेगा। उस में तुम भी सम्मिलित हो। और अगर यही भूल सभी कर रहे हैं--अपने को सुख देना चाहते हैं, दूसरे को दुख देना चाहते हैं--तो फिर अगर संसार नर्क बन जाए तो आश्चर्य क्या! अनंत गुना दुख हो जाए तो आश्चर्य क्या!
बुद्धपुरुष यही कहते हैं, अनंत गुना सुख हो सकता है। यह सनातन नियम तुम्हारी समझ में आ जाए--जो तुम अपने लिए चाहते हो उससे अन्यथा दूसरे के लिए मत करना। यह स्वर्ण-नियम है। समस्त वेद, समस्त कुरान और बाइबिल और धम्मपद इस एक नियम में निचोड़कर रखे जा सकते हैं।
जीसस से किसी ने पूछा है, हम क्या करें? जिसने पूछा है वह जल्दी में था। और जिसने पूछा था वह बहुत साधारण आदमी था। उसने कहा, मैं बहुत बुद्धिमान नहीं, शास्त्र का मुझे अनुभव नहीं, बहुत जटिल, उलझी बात मुझे मत कहना। सीधा-सीधा कह दो। और पूरा-पूरा कह दो। ताकि फिर पूछने की कोई जरूरत न रह जाए। तो जीसस ने कहा, तुम जो अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए करना-- बस सारा धर्म इतना ही है।
आज के सारे सूत्र, इसी बुनियादी सूत्र की ही बुद्ध के द्वारा की गयी प्रतिध्वनियां हैं। एक बात और। तुम्हें बहुत अड़चन भी होती होगी, क्योंकि अभिव्यक्तियां बड़ी भिन्न-भिन्न हैं।
अभी हम, अभी-अभी हम नारद के सूत्र पढ़ते थे। प्रेम की उनमें गहन चर्चा थी। प्रीतम की तरफ इशारे थे। उस प्यारे का गुणगान था। फिर अब हम बुद्ध की चर्चा कर रहे हैं, एक दूसरी ही भूमि पर यात्रा शुरू होती है। कहीं कोई प्रेम की चर्चा नहीं है। कहीं कोई उस प्यारे का गुणगान नहीं है। भक्ति को तो तुम खोजकर भी न खोज पाओगे। यहां कुछ सूत्र दूसरे हैं। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, सूत्र वही हैं।

यह बुद्ध का ढंग है। बुद्ध भक्ति की बात न करेंगे। बुद्ध भगवान की बात
न करेंगे। बुद्ध प्रेम की बात न करेंगे--लेकिन प्रेम की ही बात करेंगे। दूसरी बात कर कैसे सकते हैं! उपाय कहां?
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा था। उसके बेटे ने आकर कहा कि पापा, आपने कुत्ते के ऊपर जो निबंध लिखवाया था, मास्टरजी ने कहा है कि यही निबंध बड़े भैया ने भी पिछले वर्ष लिखा था--हूबहू यही। इसमें विराम, पूर्ण विराम का भी फर्क नहीं है। यह बिल्कुल नकल है। मुल्ला थोड़ी देर सोचता रहा और उसने कहा कि जाकर अपने मास्टरजी को कहना, नकल नहीं है यह, मजबूरी है। कुत्ता वही है, निबंध दूसरा लिखें कैसे?
मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम्हारे पास आंखें होंगी, उस दिन तुम बुद्ध और महावीर, नारद, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद के वचनों में विराम और पूर्ण विराम का भी फर्क न पा सकोगे। कुत्ता वही है। सत्य वही है, जिसकी बात हो रही है। अगर फर्क तुम्हें दिखायी पड़ते हैं, तो समझ की कमी के कारण दिखायी पड़ते हैं। और अगर फर्क हैं, तो बड़े ऊपरी हैं,
बुद्ध के कहने का ढंग अपना है--होना भी चाहिए। लेकिन जिस तरफ इशारा है,
वह इशारा एक की ही तरफ है। मेरा तीर मेरे रंग का है, तुम्हारा तीर तुम्हारे रंग का है, लेकिन इससे क्या फर्क प.ड़ता है? निशाना, तीर के रंग से निशाने का क्या लेना-देना? मेरा तीर सोने का होगा, तुम्हारे तीर पर हीरे-जवाहरात लगे होंगे, किसी का तीर लोहे का होगा--इससे क्या फर्क पड़ता है? निशाना साधना आ गया हो, तो सभी तीर निशाने पर पहुंच जाते हैं--निशाना एक है।
तो इन सूत्रों में तुम थोड़ी झलक लेने की कोशिश करना, अन्यथा तुम बहुत उलझन में भी पड़ सकते हो कि अब क्या करें, क्या न करें? तुम्हारी उलझन बढ़ाने के लिए ये चर्चाएं नहीं हैं, घटाने के लिए हैं। ये जो बुद्ध के सूत्र हैं, इनके साथ-साथ तुम देखने की कोशिश करना कि बुद्ध यद्यपि प्रेम की बात भी नहीं उठाते, लेकिन प्रेम की ही बात करते हैं, उनके कहने का ढंग और है। पहला सूत्रः
"दंड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं। अतः अपने समान ही सबको जानकर न मारे, न मारने की प्रेरणा करे।"
"अपने समान ही सबको जानकर... ।"
यह तो प्रेम का पूरा शास्त्र हो गया। प्रेम का अर्थ क्या होता है? दूसरे को अपने समान जान लेना। जिसको तुमने अपने समान जान लिया, उससे ही तुम्हारा प्रेम है। जिसके साथ तुमने भेद, द्वैत अलग कर लिया; जिसके साथ तुमने अपना अलग-थलगपन छोड़ दिया; जिसके साथ तुमने अपने जीवन के आंगन को मिल जाने दिया; जिसके साथ तुमने कहा, अब दो नहीं हैं, यहां हम एक हैं, यहां हम बीच में कोई सीमा-रेखा न खड़ी करेंगे, हमारा अब कोई अलग-अलग आंगन न होगा; हमारा अस्तित्व जुड़ता है, मिलता है, पिघलता है, एक-दूसरे में, एक-दूसरे में प्रवेश करता है, वहीं प्रेम है। प्रेम का अर्थ ही होता है, दूसरे को अपने समान जान लेना। प्रेम का कोई और अर्थ हो ही नहीं सकता।
लेकिन बुद्ध प्रेम शब्द का उपयोग नहीं करते। वह उनकी शैली नहीं। वह उनके निबंध का ढंग नहीं। वह उनकी भाषा नहीं। वे बड़े शुद्ध विचारक हैं। वे भाव की झलक भी नहीं पड़ने देते। प्रेम की बात करेंगे तो बात जरा भाव की हो जाती है, हृदय की हो जाती है। बुद्ध की प्रज्ञा शुद्धतम है। उन्होंने विचार की परम शुद्धि पायी है, वे वहीं से बात करते हैं।
इसीलिए बुद्ध की बात को समझने में किसी भी वैज्ञानिक को कोई अड़चन न होगी। बुद्ध की बात समझने में किसी गणितज्ञ को कोई अड़चन न होगी। बुद्ध की बात समझने में किसी बड़े विचारक को, तर्कनिष्ठ व्यक्ति को, बुद्धिमान को, बुद्धिवादी को कोई अड़चन न होगी।
इसीलिए तो बुद्ध का प्रभाव है। दुनिया में जितना विचार का प्रभाव बढ़ा है, उतना ही बुद्ध का प्रभाव बढ़ा है। क्योंकि बुद्ध भाव की बात ही नहीं करते। भाव के साथ ही कुछ धुंधलापन छा जाता है। भाव के साथ ही सुबह का धुंधलका, अंध छा जाता है। विचार की खुली धूप है, ताजी धूप है, भरी दुपहर है-- चीजें साफ-साफ हैं।

बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है कि यद्यपि मैं ईसाई घर में पैदा हुआ और बचपन
से ही मेरे मन में ईसा के प्रति श्रद्धा के भाव आरोपित किए गए, फिर जब मैंने सोच-विचार किया, समझा-बूझा, तो जीसस की बातें मुझे ठीक न मालूम पड़ीं। क्योंकि बहुत भाव-प्रवण मालूम पड़ती हैं, तर्क की कमी है। तो ईसा से तो मैं मुक्त हो गया। लेकिन जैसे ही मैं ईसा से मुक्त हुआ, मुझे बुद्ध की बातें ठीक मालूम पड़ने लगीं।
बर्ट्रेंड रसल का धर्म में कोई भरोसा न था। लेकिन बुद्ध के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। मीरा की बात तो रसल को बिल्कुल समझ में न आती। चैतन्य तो पागल मालूम पड़ते। जीसस पर भी उन्होंने शक किया है कि थोड़ा दिमाग खराब होना चाहिए। लेकिन बुद्ध पर शक करना असंभव है। बुद्ध सौ टके साफ-साफ हैं। प्रेम शब्द के आते ही काव्य प्रवेश करता है, इसलिए बुद्ध उस शब्द का उपयोग भी नहीं करेंगे। लेकिन वही कह रहे हैं, अपने ढंग से कह रहे हैं। "मृत्यु से सभी भय खाते हैं, दुख से सभी बचना चाहते हैं, दंड से सभी छिपना चाहते हैं। अतः अपने समान ही सबको जानकर न मारे, न मारने की प्रेरणा करे।"
यहां ख्याल रखना, प्रेम विधायक होता है, विचार निषेधात्मक होता है। विचार का ढंग होता है--नहीं। प्रेम का ढंग होता है--हां। तो बुद्ध कहते हैं, न दूसरे को मारे, न मारने की प्रेरणा करे, बस।
इसलिए बुद्ध और महावीर का सारा शास्त्र अहिंसा कहलाता है। अहिंसा बड़ा नकारात्मक शब्द है। हिंसा नहीं--इतना ही अहिंसा का अर्थ होता है।
जीसस कहते हैं प्रेम, नारद कहते हैं भक्ति, मीरा कहती है भाव। बुद्ध
और महावीर कहते हैंः हिंसा नहीं। नकारात्मक है। वे कहते हैं, बस, दूसरे को दुख मत दो। इतना काफी है। अगर तुमने दूसरे को दुख न दिया, तो सुख का आविर्भाव होगा। उसे लाने की जरूरत नहीं है, उसे खींच-खींचकर आयोजन नहीं करना है।
बुद्ध कहते हैं, तुम दूसरे को सुख देना भी चाहो तो दे न सकोगे। तुम इतनी ही कृपा करो कि दुख मत दो। तुम कांटे मत बोओ, फूल अपने से खिलेंगे, उन्हें खिलाने की कोई जरूरत नहीं है। वह मनुष्य का स्वभाव है। तुम अड़चनें खड़ी मत करो। मारो मत, जीवन अपने से खिलेगा।
इसलिए बुद्ध नहीं कहते कि जीवन दो, जीवनदान करो। बस इतना ही कहते हैं, मारो मत, मारने की प्रेरणा मत दो। कोई मारता हो तो सहारा मत दो। हट जाओ। तुम्हारे द्वारा दूसरे को दुख न मिले, काफी है। क्यों? क्योंकि सुख तो सबका स्वभाव है। तुमने अगर दुख न दिया, तो बस, तुमने दूसरे को अवसर दिया कि वह अपने सुख के कमलों को खिला ले।
जब जीसस, चैतन्य, मीरा या मोहम्मद कहते हैं, दूसरे को प्रेम दो, जीवन दो, तब एक विधायक स्वर प्रवेश होता है। वे इतना ही नहीं कहते कि सिर्फ दुख मत दो। क्योंकि उनको लगता है, दुख मत दो, यह बात बड़ी नकारात्मक है। इससे जीवन के काव्य का कैसे जन्म होगा? कहीं नहीं से कोई कविता कभी पैदा हुई? कहीं नहीं के आधार पर कोई मंदिर बना? कहीं नहीं के आधार से पूजा आविर्भूत हुई? नहीं के आसपास कोई कभी नाच पाया है? नहीं को बीच में रखकर तुम अर्चना- पूजा के थाल सजा पाओगे? नहीं की प्रतिमा बनाकर, नेति-नेति की प्रतिमा बनाकर तुम कहां पूजा करोगे, कहां सिर झुकाओगे? न नहीं के कोई पैर हैं, न नहीं का कोई हृदय है।
इसलिए भक्त कहते हैं, नहीं से काम न चलेगा। और उनको एक डर लगता है। वह
डर यह है कि कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी नहीं उपेक्षा बन जाए। और ऐसा हुआ है। अगर तुम जैन-मुनि को देखो, तो लगता है कि उसके जीवन की साधना उपेक्षा की हो गयी। उसमें रसधार नहीं बहती। बस, उसकी चेष्टा इतनी ही है कि किसी को मेरे कारण दुख न हो। बात समाप्त हो गयी। मैं दूसरे के रास्ते से हट जाऊं। फर्क तुम समझो।
जैन-मुनि को तुम किसी मरीज का पैर दाबते हुए नहीं पा सकते। हां, जैन-मुनि को तुम किसी की खोपड़ी पर लट्ठ मारते नहीं पाओगे, यह सच है।
लेकिन ईसाई किसी के पैर दाबते मिलेगा। किसी रुग्ण की सेवा करता मिलेगा। किसी भूखे के लिए रोटी का इंतजाम करता मिलेगा। किसी प्यासे के

लिए कुआं खोदता मिलेगा। जैन-मुनि को तुम कुआं खोदता न पाओगे। किसी के रास्ते में कांटे नहीं बिछाएगा--यह बात सच है।
मगर सारा जीवन बस, दूसरे के रास्ते में कांटे न बिछाने पर लगा देना, नहीं की पूजा हो गयी। कहीं भूल हो गयी। शायद बुद्ध और महावीर के वचन को वह ठीक से समझ नहीं पाया, व्याख्या में चूक हो गयी।
बुद्ध और महावीर जब कहते हैं, दूसरे को दुख न दो, तो वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम्हारा सारा जीवन इस दुख न देने के आसपास, इर्द-गिर्द ही निर्मित हो जाए। वे इतना ही कह रहे हैं कि अगर तुमने दूसरे को दुख न दिया, तो तुम पाओगे कि जीवन में चारों तरफ फूल खिलने शुरू हुए। अगर फूल न खिलते हों, तो समझना कि तुम्हारी अहिंसा वास्तविक अहिंसा नहीं है, उपेक्षा है। अगर जीवन में आनंद की रसधार न बहे, तो समझना कि तुमने सिर्फ जीवन से अपने को हटा लिया है, रूपांतरित नहीं किया। इन दोनों बातों में फर्क है।
तुम किसी आदमी को दुख न दो। लेकिन इसका कारण यह भी हो सकता है कि तुम उसे इस योग्य भी नहीं मानते कि दुख दो, और यह भी हो सकता है कि तुम उसे इतना योग्य मानते हो कि कैसे दुख दो। किसी ने तुम्हें गाली दी। तुमने कहावत सुनी हैः हाथी निकल जाता है, कुत्ते भौंकते रहते हैं। किसी ने तुम्हें गाली दी, तुम हाथी की तरह निकल गए। तुमने उसे कुत्ता समझा--भौंकते रहने दो। यह धर्म न हुआ, अधर्म हो गया। इससे तो बेहतर था तुम गाली दे देते। कम से कम आदमी तो मानते, कुत्ता तो न मानते।
नीत्से ने कहा है, यह अपमानजनक है। तुम कम से कम मेरे चांटे का उत्तर चांटे से तो दो। तुम कम से कम इतना तो मुझे गौरव दो कि मैं भी तुम जैसा आदमी हूं।
नीत्से की बात में बल है। जीसस ने कहा हैः जो तुम्हें चांटा मारे, दूसरा गाल उसके सामने कर देना। नीत्से कहता है, यह भूलकर मत करना, क्योंकि इससे बड़ा अपमान दूसरे का और क्या होगा? तुमने उसे कीड़ा-मकोड़ा समझा। कम से कम उसे आदमी होने का गौरव तो दो। उसने चांटा मारा है, तुम भी एक चांटा उसे मारकर यह तो कहो कि हम दोनों बराबर हैं। मैं हाथी, और तुम कुत्ता! यह तो बहुत बड़ा अपमान हो जाएगा।
अब फर्क को तुम समझ लो। तुम दूसरे को इसलिए भी मारने से रोक सकते हो कि जाने दो, कुत्ते हैं। तब यह उपेक्षा हुई, अहिंसा न हुई। और तुमने दूसरे को मारने से इसलिए रोका अपने को कि दूसरा भी तुम्हारा ही स्वरूप है, कैसे मारो? दूसरे ने भूल की है, उसकी भूल का सुधार करना है, दया करनी है, करुणा करनी है, उसकी भूल को बढ़ाना तो नहीं है! दूसरा गलत है, इसलिए तुम भी गलत हो जाओ, यह तो कहां की समझदारी हुई? एक गलती के उत्तर में दूसरी गलती गलती को दुगना कर देगी।
लेकिन दूसरा क्षुद्र है, दो कौड़ी का है, कुत्ता है, ऐसा मानकर अगर तुम खड़े रहे, तो ऊपर से तो दोनों में ही उपेक्षा साफ-साफ मालूम होगी, एक सी मालूम होगी, भीतर बड़ा फर्क हो गया।
बुद्ध और महावीर के वचनों को जैन और बौद्ध भी नहीं समझ पाए। क्योंकि
यह बिल्कुल स्वाभाविक था, अहिंसा उपेक्षा बन जाए, यह सरल था। करुणा बनने की बजाय तिरस्कार बन जाए, यह सरल था। तो फिर अहिंसा के नाम पर हिंसा ही जारी रही।
बुद्ध और महावीर के वचन भी प्रेम की तरफ ही इशारा करते हैं, यद्यपि उनका इशारा नकारात्मक है। नकारात्मक इशारे के भी कारण हैं।
क्यों बुद्ध ने चुना नकारात्मक इशारा? क्या प्रेम कह देने में कुछ अड़चन थी? कोई उनके मुंह पर ताला लगा था? कह देते, प्रेम। जैसे जीसस ने कहा कि प्रेम ही परमात्मा है। क्या अड़चन थी? कौन सी जंजीरें थीं उनकी जबान पर? कुछ कारण थे। एक कारण यह था कि अगर तुमसे कहो कि दूसरे को सुख दो, तो तुम सुख के नाम पर ही दूसरे को दुख देने लगते हो। तुमने बहुतों को दुख दिया है सुख के नाम पर। और जब तुम सुख के नाम पर देते हो, तब तुम्हें कोई रोक भी नहीं सकता, क्योंकि तुम ऐसा महान उपकार कर रहे हो। तुम अपने बच्चे को डांटते हो, डपटते हो, मारते हो। और कहते हो, तेरे सुख के लिए, तेरे सुधार के लिए, तेरे जीवन के उद्धार के लिए।

मनस्विद कहते हैं कि मां-बाप ने जितना अनाचार बच्चों के साथ किया है, किसी दूसरे वर्ग ने किसी और के साथ नहीं किया। सबसे बड़ा अनाचार पृथ्वी पर मां-बाप के द्वारा बच्चों के प्रति हुआ है।
यह तो हमें मानकर भी भरोसा न होगा। क्योंकि मां-बाप, और अनाचार करें! मां-बाप तो प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं कि बच्चों का जीवन सुखद हो जाए। लेकिन तुम्हारी आकांक्षाओं से ही थोड़े ही किसी का जीवन सुखद होता है! कहावत है कि नर्क का रास्ता शुभेच्छाओं से पटा पड़ा है। बहुत से लोग नर्क में सड़ रहे हैं, क्योंकि शुभेच्छाओं के रास्ते पर जबर्दस्ती धकाए गए हैं। तुम ध्यान रखना। आदमी की हिंसा इतनी गहन है कि वह दूसरे को सुख देने
के नाम पर भी सता सकता है। और यह सताना बड़ा सुगम है, क्योंकि दूसरा रक्षा भी नहीं कर सकता। जब तुम किसी की गर्दन दबाते हो उसके ही हित में, तो वह चिल्लाकर यह भी नहीं कह सकता कि मेरी गर्दन छोड़ो। वह जाकर कहीं किसी से तुम्हारा विरोध भी नहीं कर सकता, शिकायत भी नहीं कर सकता, क्योंकि तुम उसी के लिए गर्दन दबा रहे हो, उसी के हित में दबा रहे हो। अगर मर भी जाए वह, तो तुम उसके हित के लिए ही मार रहे थे।
इसलिए बुद्ध और महावीर ने यह खतरा देखकर कि दूसरे को सुख दो, यह तो सदियों से समझाया गया है, सुख के नाम पर लोगों ने दुख दिया है। और फिर उनके दुख को रोकने का उपाय भी नहीं रहा, क्योंकि सुख का लेबिल लगा था। लोग स्वर्ग के नाम पर लोगों को नर्क में ढकेलते रहे हैं। तुम जरा गौर करना अपने जीवन में, तो तुम्हें समझ में आ जाएगा। आदमी बड़ा चालाक है।
मगर, चाहे तुम कहो, दूसरे को दुख मत दो; चाहे तुम कहो, दूसरे को सुख दो; आदमी रास्ता निकाल लेता है। आदमी बुद्धपुरुषों को धोखा देने का उपाय खोज लेता है।
इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है, जब धर्म का एक पहलू लोग बिल्कुल सड़ा चुके होते हैं, तब धर्म का दूसरा पहलू आ जाता है। वेद, उपनिषद विधायक थे। लोगों ने उस विधायक धर्म को बुरी तरह नष्ट कर दिया। तो बुद्ध और महावीर का आविर्भाव हुआ--नकारात्मक। फिर लोगों ने उनके नकारात्मक धर्म को नष्ट कर दिया, तो रामानुज, वल्लभ, चैतन्य, मीरा--भक्तों का उदय हुआ। उन्होंने फिर विधायक धर्म को स्थापित कर दिया। दिन और रात की तरह धर्म विधायक से नकार, नकार से विधायक की तरफ बदलता रहा है। लेकिन आदमी कुछ ऐसा है कि हर जगह से उपाय खोज लेता है। इससे सावधान रहना।
"दंड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं, अतः अपने समान ही सबको जानकर न मारे, न मारने की प्रेरणा करे।"
जीवन की आकांक्षा सार्वलौकिक है, सार्वभौम है। तुमने कभी-कभी इसके विपरीत घटना घटते देखी होगी--वह भी विपरीत नहीं। कोई आदमी आत्मघात कर लेता है। विचार करें। क्योंकि बुद्ध कहते हैं, न कोई मरना चाहता है, न कोई दंड पाना चाहता है, न कोई दुखी होना चाहता है; लेकिन कुछ लोग आत्मघात कर लेते हैं--इनका क्या? और इनकी संख्या थोड़ी नहीं है। करते तो बहुत लोग हैं, सफल नहीं हो पाते यह दूसरी बात है। दस में से एक सफल होता है।
इस पर थोड़ा विचार करें। क्या बुद्ध का वचन आत्मघातियों के लिए लागू नहीं होता?
लागू नहीं होता, ऐसा लगेगा ऊपर से। भीतर खोजने पर पता चलेगा कि आत्मघात भी लोग जीवन के विरोध में नहीं करते, जीवन के लिए करते हैं। आत्मघातियों से पूछो--और कभी-कभी तुम्हारे मन में भी आकांक्षा उठी है आत्मघात करने की। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसको न उठी हो। कभी न कभी, किन्हीं क्षणों में, दुर्दिनों में, दुखद घड़ियों में, अंधेरी रात में, किसी पीड़ा में, किसी संताप में क्षणभर को एक बात ने मन को पकड़ लिया है कि अब समाप्त ही कर दो। ऐसे जीवन से क्या लाभ? इस जीवन को छोड़ो।
लेकिन ख्याल करना, उस आकांक्षा में भी जीवन को बेहतर करने की आकांक्षा छिपी है। यह जीवन नहीं जंच रहा है, क्योंकि तुम्हारी जीवन की आकांक्षा कुछ और बड़े जीवन की थी। तुमने चाहा था किसी स्त्री के साथ जीवन हो, वह न हो सका। तुमने चाहा था किसी पुरुष के साथ जीवन हो, वह न हो सका। तुमने जीवन के साथ शर्त रखी थी, वह शर्त पूरी न हो सकी, इसलिए अब तुम जीवन

को समाप्त करना चाहते हो। यह क्रोध है। इस जीवन को विनष्ट करने की आकांक्षा में भीतर जीवन की ही लालसा है।
यह ऐसे ही है जैसे कि तुमने कभी देखा हो, किसी स्त्री को पड़ोस की कोई पड़ोसिन आकर उसके बच्चे का विरोध कर देती है, वह बरदाश्त नहीं करती कि उसके बच्चे ने कोई गलती की, लेकिन वह बच्चे की पिटाई कर देती है। तुमने कभी बच्चे को देखा, वह किसी खिलौने से बहुत मोह में पड़ा है, और तुम बहुत ज्यादा उससे मोह छोड़ने को कहते हो, वह खिलौने को पटककर जमीन पर तोड़ देता है। यह मोह के विपरीत नहीं है, यह मोह की घोषणा है। तुम चीजों को तोड़ भी सकते हो, इतनी आसक्ति हो सकती है।
मनस्विद कहते हैं, आत्मघाती लोग वे हैं जिनकी जीवन के साथ साधारण रूप
से ज्यादा आसक्ति है, और लोगों की बजाय। उनकी जीवन के साथ ऐसी आसक्ति थी कि उन्होंने कहा कि हम हर किसी तरह न जीएंगे। उन्होंने कहा, हम तो मोती ही चुनेंगे, कंकड़-पत्थर न चुनेंगे। अगर कंकड़-पत्थर मिलते हैं, तो हम अपनी मोती की आकांक्षा लिए मर जाना पसंद करेंगे। उन्होंने कहा, हम घास-पात न खाएंगे, हम सिंह-शावक हैं। उन्होंने जीवन के साथ शर्तें रखीं, उनकी बड़ी आसक्ति थी। हर किसी ढंग से रहने को वे राजी न थे, क्योंकि रहने का उनका बड़ा ख्याल था। बड़े सपने थे।

इस बात को ठीक से समझ लेना। आत्मघात करने वाले लोग यह नहीं बताते कि
वह जीवन के प्रति उनका लगाव नहीं है, इतना ही बताते हैं कि बहुत लगाव था, जरूरत से ज्यादा लगाव था। इतना ज्यादा लगाव था कि हर तरह के जीवन के साथ वे राजी न हो सके। अगर जीवन ने उनकी मांग पूरी न की तो वे क्रोधित हो उठे। उन्होंने जीवन को तोड़ देना पसंद किया।
और इसीलिए एक और महत्वपूर्ण घटना समझ में आ सकती है। दस लोग आत्महत्या का उपाय करते हैं, एक मरता है। नौ असफल हो जाते हैं। यह जरा सोचने जैसा है। आत्महत्या जैसी चीज, उसमें लोग असफल क्यों हो जाते हैं? आत्महत्या जैसी चीज में असफल होने का क्या! कोई बाधा भी नहीं डाल रहा। लेकिन बहुत गहरी खोजों से पता चला है, लोग असफल होना चाहते हैं। स्त्रियां गोलियां खाती हैं, लेकिन इतनी ही खाती हैं जिनसे कि अस्पताल तक पहुंच जाएं और वापस आ जाएं, इससे ज्यादा नहीं खाती हैं। लोग जहर पी लेते हैं, लेकिन इतना ही पीते हैं जिससे बचाया जा सके--समय रहते बचाया जा सके। लोग फांसी का फंदा भी लगाते हैं तो आशा रखते हैं कि मोहल्ले-पड़ोस के लोग आते ही होंगे। कोई न कोई आ जाएगा, बचा लेगा।
इसलिए दस लोग कोशिश करते हैं, नौ असफल होते हैं। एक सफल होता है। वह भी, ऐसा लगता है, भूल से सफल हो जाता है। असफल होना चाहा होगा उसने भी, न हो पाया। जोश-खरोश में कुछ ज्यादा कर गया। इसीलिए तो लोग मरने की बातें करते रहते हैं।
मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मर जाना है। फिर तुम्हें कौन रोक रहा है? मैंने तो नहीं रोका। तुम मुझे कहने क्यों आए हो? मर जाने वाले को कौन रोक सकता है? कैसे रोक सकता है? कानून रोक सकता है मर जाने वाले को? जिसको मर ही जाना है, उसको कानून कैसे रोक सकेगा?
कानून भी बड़ी मजाक है। कानून है कि अगर तुम आत्महत्या करते पकड़े गए,
तो सजा हो जाएगी, फांसी लगा दी जाएगी। बड़े मजे की बात है। आत्महत्या करते अगर पकड़े गए, तो फांसी हो जाएगी; तुम अगर बचे, तो सरकार न बचने देगी।
पर आत्महत्या जैसी सरल चीज--गए, पहाड़ से कूद गए; कि ट्रेन के नीचे लेट गए--इतनी सरल चीज सफल नहीं हो पाती। तुम्हारे भीतर कोई चीज उसे सफल नहीं होने देती। और जिनकी सफल हो जाती है, अगर उनकी आत्माएं बुलायी जा सकें और उनसे पूछा जा सके, तो वे कहेंगे, जरा हम जरूरत से ज्यादा कर गए। बीस गोलियां ले लीं, दस ही लेनी थीं। कुछ अंदाज न था, पुराना कुछ अनुभव न था। सोचा था, मोहल्ले-पड़ोस के लोग आ जाएंगे, लेकिन मोहल्ले-पड़ोस के लोग बाहर गए थे। सोचा था, पति रात होते-होते घर लौट आएगा, लेकिन वह रातभर घर न लौटा। कुछ आकस्मिक बाधा आ गयी, इसलिए सफल हो गए।

मृत्यु की घटना भी यह नहीं बताती कि कोई मरना चाहता है। लोग मरने की धमकी देते हैं, वह भी जीने की आकांक्षा में। लोग जीने के लिए इतने आतुर हैं कि मरने तक को राजी हो जाते हैं। मगर इससे जीवेषणा में कोई फर्क नहीं पड़ता।
इसीलिए तो तुम देखो, राह के किनारे कोई भीख मांग रहा है--टांगें कटी हैं, हाथ टूटे हैं, आंखें अंधी हैं, शरीर कोढ़ से भरा है, सड़ गया है--कभी-कभी तुम्हारे मन में विचार उठता होगा, यह आदमी किसलिए जीना चाहता है? ऐसा जीने योग्य क्या है? सिर्फ रोज भीख मांगने के लिए जीना चाहता है? रोज-रोज दिन खराब होते जाएंगे, असमय और बढ़ेगा, आशा भी तो क्या है? सब तो खो ही चुका है। बस यह रोज घिसटने के लिए सड़क पर, भीख मांगने के लिए जी रहा है? इसके जीवन में क्या संभावना है अन्यथा होने की? दस साल जी लेगा, तो घिसट-घिसटकर भीख मांग लेगा। रोज रोएगा, तड़फेगा, चिल्लाएगा, चीखेगा। और रोज हालत खराब होती जाएगी। एक दिन मर जाना है। मौत ही है भविष्य में। फिर किस आशा में जी रहा है?
लेकिन तुम भूलकर किसी भिखारी को यह पूछना मत, क्योंकि इससे कोई संबंध
ही नहीं है। आदमी की जीवेषणा इतनी प्रगाढ़ है कि हर हालत में वह राजी हो जाता है। हर हालत में राजी हो जाता है। हाथ न हों तो बिना हाथ के राजी हो जाता है, आंख न हों तो बिना आंख के राजी हो जाता है, पैर न हों तो बिना पैर के राजी हो जाता है, प्रेम न हो तो बिना प्रेम के राजी हो जाता है, मकान न हो तो बिना मकान के, सड़क तो सड़क सही। आदमी की समायोजित होने की संभावनाएं अनंत हैं। वह हर हालत में राजी हो जाता है; बस तुम उसे जीने दो। जैसे जीना अपने आप में ही लक्ष्य है।
इतनी प्रगाढ़ जो जीवन की आकांक्षा है--मनुष्यों में ही नहीं, पशुओं में, पौधों में, सब तरफ जीवन की तलाश चल रही है। पशु खोज में लगे हैं। पौधे अपनी जड़ों को भेज रहे हैं जमीन में, पानी की खोज कर रहे हैं--कहां भोजन? कहां पानी? सब तरफ जीवन की आकांक्षा है।
बुद्ध कहते हैं, जहां इतने जीवन की आकांक्षा है, कोई मरना नहीं चाहता, वहां तुम कम से कम एक काम करो, किसी को मारना मत। वहां कम से कम तुम इतना काम करो कि किसी को दुख मत देना। इतना तो करो। सुख की बात छोड़ो, तुम दुख मत देना।
और यह मेरा अनुभव है कि अगर तुम सच में ही लोगों को दुख न दो, तो तुम सुख देने लगोगे। क्योंकि जीवन कुछ ऐसा है कि जो दुख नहीं देता वह सुख देने लगता है। देना तो होगा ही, बांटना तो होगा ही। कोई अपनी जीवन संपदा को भीतर बांधकर थोड़े ही रख सकता है? बंटती है, बिखरती है, फैलती है।
तुम अगर दुख न दोगे तो सुख दोगे। अगर तुमने गालियां न दीं, तो तुम आज नहीं कल, गीत गाने लगोगे। करोगे क्या? वही ऊर्जा जो गाली बनती थी, गीतों में प्रगट होगी। अगर तुमने निंदा न की, तो तुम्हारे जीवन में कहीं न कहीं से प्रार्थना का स्वर उठने ही लगेगा।
इसलिए बुद्ध भरोसा करते हैं कि वह तो होगा, उसकी बात भी नहीं उठाते। तुम बस इतना कर लो। गलत तुमसे न हो, ठीक अपने से होने लगेगा। क्योंकि वही ऊर्जा जो गलत में नियोजित होती थी, जब मुक्त हो जाएगी तो शुभ का, सत्य का, सुंदर का निर्माण करेगी। तुम गलत तरफ मत जाने दो, ठीक तरफ अपने से जाएगी। प्रेम ही मानव जीवन सार
प्रेम, हरि कहता सर्व समर्थ
प्रेम के बिना न जीवन-मूल्य
समझता मन न सृष्टि का अर्थ
बुद्ध प्रेम शब्द का उपयोग नहीं करते। वे कहते हैं, सबको अपने समान जानकर तुम्हारे जीवन में सृष्टि का अर्थ प्रगट होगा। लेकिन तुम इसे प्रेम कह सकते हो। तुम्हें आसानी होगी समझने में। बुद्ध की भाषा पर जिद्द करने की कोई जरूरत नहीं। मेरे साथ तुम सब तरह की भाषाएं उपयोग करने के लिए मुक्त हो। बस अपनी बेईमानी को भर बीच में मत लाना, सब भाषाओं का उपयोग करो। मुहब्बत से ऊंचा नहीं कोई मजहब
मुहब्बत से ऊंची नहीं कोई जात

लेकिन प्रेम का अर्थ ही केवल इतना है कि तुमने जो अपने भीतर देखा है, उसे ही तुम अपने बाहर भी देखने लगो। तुमने जिससे भीतर पहचान बनायी है, उसी से तुम बाहर भी पहचान बनाओ।
लेकिन एक बड़ी कठिन शर्त सामने खड़ी हो जाती है--तुम्हारी अपने से पहचान नहीं। तुमने अभी अपने को ही नहीं जाना।
इसलिए मैं कहता हूं, बुद्धपुरुष स्वार्थ सिखाते हैं। तुम दूसरों को जानते मालूम पड़ते हो, लेकिन तुमने अभी अपने से भी पहचान नहीं बनायी। कैसे तो तुम दूसरों को जानोगे, जो अपने को भी नहीं जानता! जिसे आत्म-अर्थ न खुला, उसे सृष्टि का अर्थ कैसे खुलेगा? जो मैं के भीतर न उतर सका, वह तू के भीतर कैसे उतरेगा? अपने ही घर की सीढ़ियों पर तुम उतरे नहीं, अपनी ही गहराइयों को न छुआ, अपनी ऊंचाइयों में उड़े नहीं, तो तुम दूसरे की ऊंचाइयों में कैसे उड़ोगे?
और मजा यह है कि अगर तुम अपने ही आंगन की ऊंचाई पर उड़ो, तो जैसे तुम ऊंचे उठते हो, तुम्हारा आंगन खोता जाता है। आकाश सब का है। उड़ो कहीं से। उड़ने का प्रारंभ भला आंगन से होता हो, अंत तो आकाश में है।
जैसे-जैसे तुम प्रेम में ऊपर उठते हो, जैसे-जैसे तुम आत्म-परिचय में गहरे उतरते हो, वैसे-वैसे सीमाएं खोती चली जाती हैं। मैं और तू कामचलाऊ शब्द हैं। जरूरी हैं, उपयोगी हैं, लेकिन सत्य नहीं।
सत्य तो दोनों के भीतर कुछ है, जो जुड़ा है।
समाया है जब से तू नजरों में मेरी
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है
एक बार तुम्हारी पहचान उस स्वभाव से हो जाए, तो तुम जहां भी देखोगे खोज ही लोगे उसे। हर घूंघट में वही है, हर पर्दे में वही है। खूब उसने रंग लिए हैं, खूब रूप लिए हैं।
बुद्ध उसकी बात नहीं करते। क्योंकि परमात्मा के नाम से बुद्ध के समय
तक बड़ा उपद्रव हो चुका था। मजबूरी में उन्हें उस प्यारे शब्द को त्याग देना पड़ा, छोड़ देना पड़ा। उन्होंने परमात्मा के बिना परमात्मा तक जाने की यात्रा का आयोजन किया। परमात्मा की तरफ जाने वाली यात्रा, और परमात्मा के शब्द को छोड़कर ले जाना चाहा। क्योंकि उस शब्द के कारण बहुत से रुके थे, जा नहीं रहे थे। शब्द ही बाधा बन गया था।
"जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दंड से मारता है,
वह मरकर सुख नहीं पाता।"
अगर तुम अपने सुख के कारण किसी को दुख दे रहे हो, तो तुम अपना दुख इकट्ठा कर रहे हो। इसे तुम गणित का आखिरी नियम समझो--जीवन के गणित का। इस नियम से बचने का कोई भी उपाय नहीं है। इसलिए बचने की व्यर्थ कोशिश ही मत करना।
जब भी तुम किसी को दुख दोगे, तुम दुख पाओगे। मुझे ऐसा कहने दोः तुम जो दोगे, वही तुम पाओगे। संसार प्रतिध्वनि है। तुम गीत गाओगे, चारों तरफ से गीत प्रतिध्वनित होकर तुम पर बरस जाएगा। संसार दर्पण है। तुम्हारा चेहरा ही तुम्हें बार-बार दिखायी पड़ेगा। अगर सुख चाहते हो, तो दुख तो देना ही मत। अगर सुख चाहते हो, तो सुख देने की प्रार्थना करना, सुख देने की अभीप्सा करना। अगर लगे कि यह तो हमसे न हो सकेगा, बहुत दूर है, तो कम से कम दुख तो मत देना।
न्यूनतम धर्मः दूसरे को दुख मत देना।
अधिकतम धर्मः दूसरे को सुख देना।
यह बारहखड़ी का प्रारंभ कि दूसरे को दुख मत देना, यह सारी भाषा का अंत
कि दूसरे को सुख देना। जहां बुद्ध शुरू होते हैं, वहीं से शुरू करो, तो किसी दिन जहां जीसस पूर्ण होते हैं, तुम भी पूर्ण हो सकोगे। और जिसके जीवन में यह एक नियम साफ-साफ हो जाए, उसके जीवन में फिर किसी और चिराग की, किसी और दीए की जरूरत नहीं। जिसने इतना ही समझ लिया, उसने सब समझ लिया। और इसको जिसने साध लिया, उसके जीवन में कोई भूल-चूक न होगी।
दूसरे को वही देना जो तुम चाहते हो कि तुम्हें मिले। तुमसे कभी भूल न होगी। और तुम कभी पछताओगे न।

शब को चिराग की नहीं रहरौ को एहतियाज
हर जर्रा आफताब है तेरी सबील का
जिसको यह सूत्र समझ में आ गया, उसको अंधेरी रात में भी चिराग की कोई जरूरत नहीं। परमात्मा की यात्रा पर उसे किसी और रोशनी की जरूरत नहीं।
हर जर्रा आफताब है तेरी सबील का
जिसको यह नियम समझ में आ गया, उसके लिए तो उसके रास्ते का हर तिनका, हर टुकड़ा भी सूरज की तरह प्रकाशवान हो जाता है।
"जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दंड से नहीं मारता है, वह मरकर सुख पाता है।"
मरकर क्यों? आज तुम सुख दोगे, मरकर तुम सुख पाओगे, ऐसा बुद्ध कहते हैं।
आज तुम दुख दोगे, मरकर तुम दुख पाओगे, ऐसा बुद्ध कहते हैं। ऐसा क्यों? आज तुम सुख दोगे, आज ही मिलेगा। जीवन नगद है। आज दुख दोगे, आज ही दुख मिलेगा। जीवन बहुत नगद है। लेकिन फिर बुद्ध ऐसा क्यों कहते हैं?
कारण है। क्योंकि बहुत बार बीज तुम आज बोते हो, वर्षों लग जाते हैं, तब
फल आता है। तो कहीं ऐसा न हो कि बीज तुम आज बोओ और फल आज न आए, तो तुम अपने को धोखा दे दो कि देखो फल आया ही नहीं। दुख दिया और दुख न मिला।
जीवन में यह प्रश्न बहुत बार उठता है। तुम देखते हो किसी आदमी को दुष्ट है, हिंसक है, कठोर है, और जीवन में सुख, मजे-मौज कर रहा है। कभी तुम देखते हो कोई आदमी सरल है, सीधा है, सादा है, सच्चा है, और सब तरह के दुख पा रहा है। उलझन खड़ी हो जाती है। लगता है, फिर जीवन का गणित सच है कि झूठ? कहीं यह सब मन का ही भुलावा तो नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह सीधे-सादे लोगों को सांत्वना हो कि मिलेगा, और बेईमान मजे कर रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह भी बेईमानों की ही ईजाद हो, ताकि दूसरे बेईमानी न करें-- प्रतिस्पर्धा कम हो।
ऐसा सोचने वाले लोग भी हुए हैं। जर्मनी में एक विचारक हुआ। उसने यही लिखा है कि धर्म बेईमानों की ईजाद है। ताकि लोग सीधे-सादे रहें और उनको खूब धोखा दिया जा सके। ताकि लोग भोले-भाले रहें और उन्हें खूब भरमाया जा सके।
जीवन को देखकर ये प्रश्न उठेंगे बहुत बार। और सुलझाव करना बड़ा कठिन मालूम होगा। कोई आदमी बेईमानी कर रहा है और सफल हो रहा है। और कोई आदमी ईमानदार है और असफल होता जा रहा है।
कहीं तुम उलझन में न पड़ो, इसलिए बुद्ध कहते हैं, मरने के बाद। मैं तो तुमसे कहता हूं, रोज ही मिल जाते हैं। लेकिन बुद्ध इसलिए कहते हैं, ताकि तुम्हारे लिए कोई तर्क की व्यर्थ उलझन खड़ी न हो जाए। इसलिए वे कहते हैं, मिलेगा ही। देर हो सकती है थोड़ी। हो सकता है मरने तक प्रतीक्षा करनी पड़े। लेकिन तुम सदा के लिए धोखा न दे पाओगे नियम को।
ऐसा ही समझो कि कोई आदमी अगर लड़खड़ाकर शराब पीकर चले, आज न गिरे, कल न गिरे, परसों न गिरे; कब तक न गिरेगा? आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी न कभी गिरने ही वाला है। गिरना भीतर इकट्ठा होता जा रहा है, संगृहीत हो रहा है। जिस दिन मात्रा पूरी हो जाएगी उसी दिन गिर जाएगा। कहते हैं, आखिरी तिनके से ऊंट बैठ जाता है। जब मात्रा पूरी हो जाती है, पाप का घड़ा पूरा भर जाता है, तो फूट जाता है। तो धोखे में मत पड़ना।
बुद्ध इतना ही कह रहे हैं कि तुम इससे धोखे में मत पड़ना, नहीं तो कहीं तुम अपने को समझा लो कि देखो यह बेईमान सफल हो रहा है, तो बुद्ध के नियम का क्या हुआ? यह ईमानदार असफल हुआ, तो बुद्ध के नियम का क्या हुआ? कहीं ऐसा न हो। क्योंकि मन इस तरह की तरकीबें खोजता है। मन बेईमानी करने के लिए बड़े तर्क खोजता है। ईमानदारी से बचने के लिए बड़े तर्क खोजता है।
मन कहेगा, देखो चारों तरफ, आंख तो खोलो। बुद्धों की सुनकर आंख बंद किए बैठे हो। यहां सफल वही हो रहा जो बेईमान है। यहां ईमानदार असफल होता दिखायी पड़ रहा है। यहां जिसने दूसरों को दुख दिया वह सुखी मालूम पड़ रहा है, और जिसने दूसरों को सुख देने की चेष्टा की वह दुखी है, सड़ रहा है। तुम जिंदगी को देखो, शास्त्रों को मत देखो।

यह उलझाव खड़ा न हो, इसलिए अनुकंपावश बुद्ध कहते हैं, मरने के बाद। लेकिन फिर मैं तुम्हें याद दिला दूं, आदमी की बेईमानी कुछ ऐसी है कि कुछ भी करो, कुछ भी कहो, वह उसमें से रास्ता निकाल लेगा।
लोगों ने इसमें से रास्ता निकाल लिया। उन्होंने कहा, मरने के बाद! तब अभी कोई जल्दी नहीं। मरने के बाद होगा न, देख लेंगे। अभी कौन मरे जाते हैं! कोई न कोई रास्ता होगा ही। हर दफ्तर में लांच-घूंच का उपाय है, तो भगवान के भवन में भी कोई न कोई इंतजाम होगा। कुछ न कुछ कर लेंगे। और फिर सारी दुनिया कर रही है, देखेंगे, जो सबका होगा वह अपना होगा।
एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था कि कयामत का दिन आएगा, तो सबके पापों का निर्णय होगा। एक आदमी बीच में खड़ा हो गया, उसने कहा, मुझे एक बात पूछनी है। सबका निर्णय एक साथ होगा? जितने आदमी अब तक हुए, जितने आदमी अभी हैं, और जितने भविष्य में होंगे कयामत तक? पादरी ने कहा, सबका होगा। उसने कहा, औरतें भी उसमें होंगी, आदमी भी होंगे? कहा, औरतें भी होंगी। तो उसने कहा, फिर एक दिन में निर्णय ज्यादा हो नहीं सकता, कोई फिकर की बात नहीं। एक दिन में इन सबका निर्णय? वह निश्चिंत हो गया। अदालत में तो उपद्रव मच जाएगा, शोरगुल ही होगा, कुछ निर्णय होने वाला नहीं। आदमी नहीं, औरतें भी होंगी। चीख-पुकार मचेगी, शोरगुल होगा, एक-दूसरे पर लांछन होंगे, मगर निर्णय? निर्णय होना बहुत मुश्किल है। और एक दिन में!
आदमी उपाय खोज लेता है। मौत के बाद! तो आदमी सोचता है, पहले तो यह कि मौत के बाद बचता है कोई? किसी ने लौटकर कहा? कौन कब लौटकर आया है? बातें हैं। मिट्टी मिट्टी में गिर जाती है, हवा हवा में खो जाती है, कौन बचता है? आधी दुनिया तो नास्तिक है, मानती है, शरीर सब कुछ है। इसके पार कुछ भी नहीं है। फिर कौन जानता है कि बचने पर भी बेईमान कोई रास्ता न खोज लेंगे? अगर उन्होंने यहां रास्ता खोज लिया, तो वहां क्यों न खोजेंगे? फिर कौन जानता है कि बेईमानों के वकील न होंगे? और फिर जब सभी लोग इस बड़ी नाव में सम्मिलित हैं--कोई अकेले तो हम बैठे नहीं--जो सबका होगा, वह हमारा होगा। तो मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध ने कहा कि मरकर, ताकि तुम इस प्रश्न में
न उलझो कि आज तो नहीं हो रहा है! लेकिन तब आदमी ने उपाय खोज लिया कि मरकर होगा, कोई फिकर नहीं, देख लेंगे।
आदमी की सीमा है सोचने की। इसीलिए तो आदमी मजे से जीए चला जाता है।
मौत खड़ी है सबके द्वार पर, लेकिन कल्पना की सीमा है। अगर तुमसे कोई कहे, कल मर जाओगे, तो थोड़ा धक्का लगता है। कोई कहे, परसों। धक्का कम हो जाता है।
सीमा बड़ी हो गयी। कोई कहता है, दस साल बाद। तुम सोचते हो, दस साल? बड़ा लंबा है। सत्तर साल बाद, बात ही खतम हो गयी। मरे, न मरे, बराबर मालूम होता है। सत्तर साल! आदमी की सीमा है।
तुमने कभी ख्याल किया, आदमी के मन का गणित और मन की परिकल्पना बड़ी सीमित है। तुमसे अगर कोई कहे कि एक आदमी मर गया, किसी ने गोली मार दी, तुम्हारे मुंह से आह निकल जाती है। फिर कोई आदमी कहता है, हिरोशिमा पर एटम गिरा, एक लाख आदमी मर गए। एक लाख गुनी थोड़े ही आह निकलती है! तुमने सोचा? क्या, मामला क्या है? एक आदमी मर गया। आह निकल जाती है। एक लाख आदमी! तुम्हारी सीमा के बाहर पड़ गए। तुम्हारी कल्पना से बहुत ज्यादा हो गए। अब तुम हिसाब नहीं लगा पाते। फिर दस करोड़ आदमी मर गए--बात ही खतम हो गयी। कैसे सोचोगे दस करोड़ आदमी के मरने का दुख?
एक आदमी की मौत तुम्हें ज्यादा छूती है, दस करोड़ की कम छूती है। इसीलिए तो दुनिया में छोटे पाप रुकते जाते हैं, बड़े पाप बढ़ते जाते हैं। क्योंकि बड़े पाप को समझने की कल्पना नहीं है। उसके लिए उतनी संवेदनशीलता नहीं है।
युद्ध होता है, किसी को कोई खास अड़चन नहीं होती, लाखों लोग मर जाते हैं। और छोटी-छोटी बातों पर लोग उलझे रहते हैं। एक भिखमंगा भूखा सड़क पर मरता हो तो तुम्हें दया आ जाती है। लेकिन कहीं भूकंप होता है और लाखों आदमी मर जाते हैं; अकाल पड़ता है, करोड़ों आदमी मर जाते हैं--तुम खड़े रह जाते हो। तुम्हें कुछ छूता नहीं, तुम्हारी संवेदनशीलता छोटी पड़ जाती है। यह दुख इतना बड़ा है कि तुम इसे तौल नहीं पाते।

इसीलिए दुनिया में बड़े पाप चलते रहते हैं। छोटे पाप से हम बड़े बेचैन
हो जाते हैं। बड़ा पाप हमें इतना चौंका देता है, लेकिन हमसे इतना बड़ा होता है कि हम करीब-करीब अपाहिज--लकवा मार गया हो--ऐसी हालत में रह जाते हैं। हमसे कुछ करते नहीं बनता। छोटे पापी पकड़े जाते हैं, बड़े पापी सम्मानित होते हैं। किसी आदमी ने किसी की चोरी कर ली, बस। पकड़ा गया। किसी आदमी ने किसी को मार डाला, पकड़ा गया। लेकिन हिटलर, नेपोलियन, सिकंदर--तुम पूजा करते हो। करोड़ों लोग मार डाले। पर तुम्हारी सीमा के बाहर हो गया।
हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः छोटे पाप मत करना, लोग पकड़ लेते हैं। करना हो तो बड़े करना।
मैं तुमसे कहता हूं, छोटी झूठ मत बोलना, पकड़ जाओगे। बड़ी बोलना। इतनी बड़ी बोलना कि लोगों की पकड़ के बाहर हो। फिर तुम नहीं पकड़े जाओगे। छोटे पापी कारागृहों में बंद हैं, बड़े पापी इतिहास की स्वर्ण-जिल्दों में विश्राम कर रहे हैं। स्वर्ण-अक्षरों में उनके नाम लिखे हैं। आदमी की इस सतत बेईमानी की प्रवृत्ति के प्रति होश रखना।
"कठोर वचन मत बोलो, बोलने पर दूसरे भी वैसा ही तुम्हें बोलेंगे। क्रोध-वचन दुखदायी होता है, उसके बदले में तुझे भी दंड मिलेगा।"
"कठोर वचन मत बोलो, बोलने पर दूसरे भी वैसा ही तुम्हें बोलेंगे।"
इसीलिए मैं कहता हूं, बुद्धपुरुष स्वार्थ सिखाते हैं। अब यह बात सीधी स्वार्थ की है। कठोर वचन मत बोलो, अन्यथा तुम दूसरों को निमंत्रण दे रहे हो कठोर वचन बोलने के लिए। निंदा मत करो, अन्यथा दूसरे निंदा करेंगे। गाली मत दो, अन्यथा गाली वजनी होकर वापस लौटेगी। और जहरीली होकर वापस लौटेगी। बुद्ध इतना ही कह रहे हैं कि तुम थोड़ी तो समझ रखो अपने स्वार्थ की। तुम वही करो जो तुम चाहते हो तुम पर बरसे। यह बड़े अनुभव से बुद्ध ने कहा है। यह उनके जीवनभर का सार-अनुभव है। यह तुम्हारा भी अनुभव है, लेकिन तुमने कभी इसे निचोड़कर सिद्धांत नहीं बनाया।
तुमने कितनी बार गाली दी है, गाली देकर तुमने कभी प्रत्युत्तर में फूलमालाएं पायीं? तुमने कितनी बार कठोर वचन बोले हैं, उत्तर में तुम पर नवनीत बरसा? कितनी बार तुम्हारे जीवन में यह घटा है। अगर तुम ठीक से समझो तो बुद्धों के जीवन में तुमसे भिन्न कुछ भी नहीं घटता। जो तुम्हारे जीवन में घटता है, वही उनके जीवन में घटता है। भेद क्या है? भेद इतना है कि वे अनंत-अनंत घटनाओं से सिद्धांत खोज लेते हैं। तुम अनंत घटनाओं में ही जीते रहते हो, सिद्धांत नहीं खोज पाते। बुद्धपुरुष अपने जीवन के अनुभव की माला गूंथ लेते हैं। बहुत से मनकों के भीतर सिद्धांत का एक धागा पकड़ लेते हैं। तुम्हारे जीवन में भी उतने ही अनुभव हैं, शायद ज्यादा भी हों, लेकिन तुम्हारे जीवन में ज्यादा से ज्यादा मनकों का ढेर होता है, माला नहीं होती। तुम सूत्र नहीं खोज पाते।
इसीलिए तो हम इन गहरे वचनों को सूत्र कहते हैं। सूत्र का अर्थ है, धागा। सूत्र का अर्थ है, सार। सूत्र का अर्थ है, हजार अनुभव हों, सूत्र तो जरा सा होता है उनके भीतर।
मीर का बड़ा प्रसिद्ध वचन है। बुढ़ापे में किसी ने मीर से पूछा कि तुम इतने अदभुत काव्य को कैसे उपलब्ध हुए, तो मीर ने कहा--
किस किस तरह से उम्र को काटा है मीर ने
तब आखिरी जमाने में यह रेख्ता कहा
पूरी जिंदगी किस-किस तरह से काटी है, तब कहीं यह कविता पैदा हुई।
यह बुद्ध ने जो वचन कहा है, यह किन्हीं नीतिशास्त्रों से उधार नहीं लिया है, यह उनके अपने जीवन का निचोड़ है।
मालूम हैं मुझको तेरे अहवाल, कि मैं भी
मुद्दत हुई गुजरा था इसी राहगुजर से
वे आदमी को समझते हैं, क्योंकि वे भी आदमी थे। इसी राहगुजर से गुजरे हैं। इसी यात्रा की धूल खायी है। इसी क्रोध, लोभ, मोह, दुख, सुख के मेले से गुजरे हैं। इन्हीं सारे अनुभवों को अनुभव किया है। इनके कांटे उन्हें चुभे हैं।

"कठोर वचन मत बोलो, बोलने पर दूसरे भी तुम्हें वैसा ही बोलेंगे। क्रोध-वचन दुखदायी है, उसके बदले में तुम्हें दुख ही मिलेगा।"
वचन की ही बात नहीं, समझ की बात है। क्योंकि तुम जो बोलते हो, इतना ही काफी नहीं है कि तुम न बोलो। अगर तुमने भीतर भी बोल लिया, तो भी तुम दुख पाओगे। क्योंकि जब तुम्हारे भीतर क्रोध से भरी कोई स्थिति उठती है, तुम्हारे चारों तरफ की तरंगें उससे प्रभावित हो जाती हैं। जरूरी नहीं है कि तुम वचन बनाओ तभी। क्रोधी आदमी के आसपास की हवा में क्रोध फैल जाता है। क्रोधी आदमी के पास तुम जाओगे तो अचानक तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर क्रोध जग रहा है।
यह तुम्हें कई बार अनुभव होता है, पर तुम ख्याल नहीं करते। शांत आदमी
के पास जाते हो, अचानक लगता है, हवा का एक झोंका आ गया, कोई चीज शीतल हो गयी भीतर। मौन आदमी के पास जाते हो, तुम्हारे भीतर के विचार भी शिथिल हो जाते हैं, धीमे पड़ जाते हैं, दौड़ कम हो जाती है।
सत्संग का यही अर्थ हैः किसी ऐसे व्यक्ति के पास, जो पहुंच गया हो। उसके पास होना भी बहुमूल्य है। कुछ करने की बात नहीं है। सिर्फ उसके पास होना भी, उसकी हवा को पीना भी, जो श्वासें उसके हृदय को छूकर आयी हों, उन श्वासों को अपने भीतर ले लेना भी तरंगों को बदलता है; तुम्हारी चित्तदशा को बदलता है।
तो इतना ही नहीं है कि तुम कठोर वचन मत बोलो। बुद्ध तुम्हें कोई कूटनीति नहीं सिखा रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि कठोर वचन मत बोलो, दिल ही दिल में जितना आए करो, जैसा आए करो। सोचो खूब, बोलो मत।
नहीं, सोचा तो भी बोल ही दिया। जो विचार तुम्हारे भीतर बन गया, वह प्रगट हो गया। जिस विचार का तुम्हारे भीतर तुम्हें अनुभव हो गया, वह दूसरे तक भी पहुंच ही गया। पता न चले, आज साफ न हो, कल साफ होगा। तुमने अगर किसी के संबंध में क्रोध भरी बातें सोच लीं, फिर तुम कहो या न कहो, वे बातें किसी अनजान रास्ते से पहुंच ही गयीं। हम सब जुड़े हैं, हम सब के तार एक-दूसरे से हिलते हैं। हम अलग-अलग नहीं हैं।
इसलिए कठोर वचन मत कहो, कठोर वचन बनाओ भी मत। असल में उस दृष्टि को छोड़
दो जो तुम्हें कठोर बनाती है। उस जीवन-शैली को त्याग दो जो तुम्हें कठोर बनाती है। विनम्र हो रहो। विनीत हो रहो। कोमल अपने हृदय को बनाओ। तुम्हारे भीतर से कोमल स्वर ही उठें। उन स्वरों के आधार से तुम्हारे आसपास का सारा जगत रूपांतरित होने लगेगा। तुम स्वर्ग में यहीं और अभी हो सकते हो, सिर्फ तुम्हारे स्वर कोमल होने चाहिए।
है सदाकत के लिए जिस दिल में मरने की तड़प
पहले अपने पैकरे-खाकी में जां पैदा करे
और जिसके मन में सदाचरण की अभीप्सा हो, जो चाहता हो फूल खिलें जीवन में आचरण के, सुगंध हो, सुवास हो, तो पहले--
पहले अपने पैकरे-खाकी में जां पैदा करे
तो पहले अपनी मिट्टी की देह में आत्मा को जगाए, पैदा करे।
अभी तो हम साधारणतया मिट्टी के ही शरीर हैं। जब तक तुम्हारी अपनी आत्मा से पहचान नहीं, तब तक आत्मा है या नहीं, क्या फर्क पड़ता है? ऐसा समझो कि तुम्हारे घर में खजाना गड़ा है और तुम्हें पता नहीं, तो तुम गरीब ही हो। खजाने गड़े होने से क्या होगा? अमीर तो तुम न हो जाओगे। यद्यपि खजाना गड़ा है, होने चाहिए थे अमीर, लेकिन होओगे तो तुम गरीब ही। खजाना खोदना पड़े। गुरजिएफ कहता था, जब तक तुमने आत्मा नहीं जानी, तब तक यह मानना फिजूल
है कि आत्मा है। गुरजिएफ कहता था कि आत्मा के सिद्धांत ने बहुत लोगों को गलती में उलझा दिया है। पढ़ लेते हैं उपनिषद में, गीता में कि आत्मा है। मान लेते हैं कि बस खतम हो गयी, आत्मा है।
खोजना पड़ेगी। गुरजिएफ कहता था, ध्यान रखो, आत्मा तभी होगी जब तुमने खोजी। खजाना दबा पड़ा रहे जमीन में हजारों वर्ष तक, इससे क्या होगा? उपयोगिता क्या है? खोजो। आत्मा खोज से मिलती है। निर्माण करो। जगाओ। "यदि तुमने टूटे हुए कांसे की भांति अपने को निःशब्द कर लिया तो तुमने निर्वाण प्राप्त कर लिया, क्योंकि तुम्हारे लिए प्रतिवाद नहीं रहा।"

बड़ा प्यारा सूत्र है।
"यदि तुमने टूटे हुए कांसे की भांति अपने को निःशब्द कर लिया... ।"
कांसा, कांसे का बर्तन तब तक बजता है जब तक टूटा न हो। तो जब बाजार तुम खरीदने जाते हो कांसे का बर्तन, तो बजाकर देखते हो। अगर बजता हो तो साबित है। अगर न बजता हो तो टूटा है।
बुद्ध कहते हैं, "यदि तुमने टूटे हुए कांसे की भांति अपने को निःशब्द
कर लिया... ।"
अगर तुम्हारा अहंकार ऐसे टूट जाए जैसे कांसे का बर्तन टूट जाता है, तो तुम्हारे भीतर फिर शब्द न उठेंगे।
तो पहले तो कठोर शब्द मत उठने दो, कोमल शब्द उठाओ; फिर तो कोमल शब्द भी कठोर मालूम होंगे। पहले तो कांटों से बचो, फूल उगाओ। फिर तो फूल भी कांटों जैसे चुभेंगे। क्योंकि और भी एक जगत है--शून्य का--जहां कोई स्वर ही नहीं। निःशब्द का, मौन का। कठोर वचन, कोमल वचन, फिर वचनशून्यता। तो ऐसे हो जाओ कि तुम्हारे भीतर कोई वचन ही न उठे, शब्द ही न उठे। उठो, बैठो, चलो--भीतर शांति रहे, मौन, नीरव। आकाश में कोई बादल भी न हो। तुम्हारी वीणा बिल्कुल सो जाए। इसको बुद्ध ने निर्वाण की अवस्था कहा है।
लेकिन हम तो छोटी-छोटी चीजों से उत्तप्त हो जाते हैं। जरा-जरा सी बातें हमें उबला देती हैं। हम बड़े पतले ठीकरे हैं। जरा सी आंच कि उबल जाते हैं।
बच्चन का एक गीत है--
इतने मत उत्तप्त बनो।
मेरे प्रति अन्याय हुआ है
ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण
करने लगा अग्नि-आनन हो
गुरु गर्जन, गुरुतर तर्जन
शीश हिलाकर दुनिया बोली
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत उत्तप्त बनो।
छोटी-छोटी बातें बहुत हो चुकी हैं। कितने लोगों को कितनी गालियां नहीं दी गयी हैं? तुम्हें किसी ने दे दी, कुछ नया हो गया?
इतने मत उत्तप्त बनो।
लोग गालियां देते ही रहे हैं, तुम्हारे लिए कुछ नया आयोजन थोड़े ही किया है! लोग निंदा करते ही रहे हैं, तुम्हारे लिए कोई विशेष व्यवस्था थोड़े ही की है! और ध्यान रखो, तुम न होते तो भी वे गाली देते, किसी और को देते। तुम तो सिर्फ बहाने थे।
इतने मत उत्तप्त बनो।
मेरे प्रति अन्याय हुआ है
ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण
करने लगा अग्नि-आनन हो
गुरु गर्जन, गुरुतर तर्जन
शीश हिलाकर दुनिया बोली
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत उत्तप्त बनो।
यह सब होता ही रहा है। लोग लड़ते ही रहे, झगड़ते ही रहे, गालियों का आदान-प्रदान करते ही रहे। लोग पागल हैं, और करेंगे भी क्या? विक्षिप्त है यह पृथ्वी।
कुछ वैज्ञानिकों को ऐसा संदेह है--वह संदेह रोज-रोज बढ़ता जाता है। रूस
के एक बहुत बड़े वैज्ञानिक बेरिलोवस्की की ऐसी परिकल्पना है कि यह पृथ्वी इस पूरे अस्तित्व का पागलखाना है। तो जहां-जहां आत्माएं गड़बड़ा जाती हैं, उनको यहां भेज देते हैं।
इस बात में थोड़ी सचाई मालूम होती है। कल्पना बड़े दूर की है, मगर सचाई मालूम होती है। जैसे हम भी तो पागलखाना रखते हैं गांव में--कोई पागल हो गया उसे पागलखाने भेज देते हैं।

इस बात की संभावना है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पचास हजार पृथ्वियां हैं, जहां जीवन है--होना चाहिए। तो इतने बड़े विराट जीवन के विस्तार में एकाध तो पृथ्वी होगी जहां पागलखाना, कारागृह... । अगर कहीं भी होगी, तो यह पृथ्वी बिल्कुल ठीक मालूम पड़ती है, जंचती है। यहां लोग पागल हैं। परेशान मत होओ। एक बड़ा पागलखाना है, जिसमें तुम हो। जरा जागो। लोगों के पागलपन के कारण तुम पागलपन मत करो। तुम तो कम से कम पागलपन छोड़ो। बुद्ध यही कह रहे हैं, अगर दूसरे तुम्हें गालियां देते हैं और तुम्हें दुख होता है, तो कम से कम तुम तो गालियां देना बंद करो। दूसरे तुम्हें सताते हैं, तुम्हें दुख होता है, तो तुम तो कम से कम दूसरों को सताना बंद करो।
धीरे-धीरे एक अनिर्वचनीय, निर्विकार मौन को जन्म देना है। मौन हुआ व्यक्ति ही विक्षिप्तता के बाहर है। जो शांत हुआ, वही पागलपन के बाहर गया। जो अशांत है, वह तो पागलपन की सीमा के भीतर है।
बस यही सत्य है, यही सत्य है सिर्फ दोस्त!
हम सभी लगे हैं अपने-अपने परिचय में
बस उसको ही हम कहने लगते हैं अपना
जो भी माध्यम बन जाता इस छल अभिनय में
न हमें अपना पता है, न दूसरे का पता है। हमारे उपद्रव में, हमारे खेल में, हमारे पागलपन में, जो भी सहयोगी हो जाता है, उसको हम अपना कहने लगते हैं। जो विरोध में हो जाता है, उसको हम दुश्मन कहने लगते हैं। लेकिन न हमें ठीक पता है कि हम क्या पाने को चले हैं, न हमें ठीक पता है कि हम कौन हैं। यह पता हो भी नहीं सकता जब तक कि व्यक्ति टूटे हुए कांसे के बर्तन जैसा न हो जाए। जहां कोई विचारों की तरंगें न उठें, वहीं आत्म-साक्षात्कार है।
और बुद्ध कहते हैं, निःशब्द हो गया जो, पा लिया निर्वाण उसने। फिर उसके लिए कोई प्रतिवाद न रहा। और जिसके भीतर मौन हो गया, कठोर वचन की तो बात अलग, उसके भीतर कोई प्रतिवाद भी नहीं है। कोई गाली भी दे, तो उसके भीतर प्रत्युत्तर भी नहीं है।
यहां बुद्ध ने बड़ी ऊंचाई छुई है। जीसस कहते हैं, जो तुम्हें चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दो। अगर तुम बुद्ध से पूछोगे, बुद्ध कहेंगे, यह तो प्रतिवाद हुआ। तुमने कुछ किया। माना कि तुमने गाली के उत्तर में गाली न दी, उसने सिर तोड़ना चाहा था तो तुमने सिर न तोड़ा। तुम मूसा के नियम से ऊपर उठे। मूसा का नियम थाः जो ईंट मारे, उसे तुम पत्थर से मारो। और जो तुम्हारी एक आंख फोड़ दे, तुम उसकी दोनों फोड़ दो। तुम मूसा के नियम से ऊपर उठे। किसी ने तुम्हें चांटा मारा, तुमने--एक गाल पर मारा था--दूसरा सामने कर दिया। लेकिन तुमने कुछ अभी भी किया, प्रतिवाद जारी रहा।
बुद्ध कहते हैं, निर्वाण की अंतिम दशा में प्रतिवाद ही नहीं। उसने चांटा मारा, जैसे नहीं ही मारा। जैसे तुम्हें कुछ भी न हुआ। हवा आयी और गयी। तुमने कोई भी प्रतिक्रिया न की।
यह भी प्रतिक्रिया है, साधु-प्रतिक्रिया है। किसी की असाधु- प्रतिक्रिया हैः चांटा मारा, वह लट्ठ लेकर खड़ा हो गया। तुम्हें चांटा मारा, तुमने दूसरा गाल सामने कर दिया। लेकिन यह प्रतिक्रिया है। और प्रतिक्रिया अगर है, तो कितनी देर तक तुम गाल किए जाओगे?
मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर ने--किसी ने उसे मारा--तो उसने दूसरा गाल
कर दिया, क्योंकि जीसस की शिक्षा का अनुयायी था। लेकिन वह आदमी भी जिद्दी था, उसने दूसरे गाल पर भी चांटा मारा। यह इसने न सोचा था। क्योंकि इस शिक्षा में साधारणतया यह मान लिया गया है कि जब तुम दूसरा गाल करोगे, तो दूसरा झुककर चरण छुएगा और कहेगाः साधु-पुरुष हैं आप, मुझसे बड़ी भूल हो गयी। मगर वह आदमी जिद्दी था, उसने दूसरे गाल पर भी चांटा मारा।
अब जरा फकीर मुश्किल में पड़ा कि अब क्या करना। क्योंकि अब कोई गाल भी
न बचा बताने को। एक क्षण तो उसने सोचा, फिर झपट्टा मारकर उस पर चढ़ बैठा। तो उस आदमी ने कहा, अरे-अरे! वह भी थोड़ा चौंका। उसने कहा, अभी-अभी तुमने एक गाल का उत्तर दूसरे गाल से दिया, अब यह क्या करते हो? तो उसने कहा कि जीसस ने

इसके आगे कुछ कहा ही नहीं। अब तो मैं स्वतंत्र हूं। जो मुझे करना, वह मैं करूंगा। एक गाल के उत्तर में उन्होंने कहा था दूसरा गाल कर देना।
जीसस से भी उनके शिष्यों ने पूछा है। जीसस ने कहाः कोई तुम्हें गाली दे, क्षमा करना। एक शिष्य ने पूछा, कितनी बार? आदमी का मन है, वह हिसाब लगाता है, कितनी बार? आखिर सीमा है। जीसस तो सोचते रहे, दूसरे शिष्य ने कहा, कम से कम सात बार। जीसस ने कहा कि नहीं, सतहत्तर बार।
मगर सतहत्तर बार भी चुक जाएंगे। अठहत्तरवीं बार आने में कितनी देर लगेगी।
इसलिए बुद्ध का वचन आत्यंतिक है। वे कहते हैं, प्रतिवाद ही नहीं। अन्यथा संख्या की दौड़ है फिर। सतहत्तर के बाद क्या करोगे? सात सौ सत्तर भी किया, तो भी क्या करोगे? सीमा आ जाएगी। फिर वापस तुम अपनी जगह खड़े हो जाओगे। साधु चुक जाएगा। जैसे असाधु और साधु में अंतर जो है, वह मात्रा का है, गुण का नहीं। बुद्ध कहते हैं, संत और असाधु में जो अंतर है, वह गुण का है, वह चुकेगा नहीं। वह सिर्फ शून्य है। उसका कोई प्रतिवाद नहीं है।
और जिसके मन में कोई प्रतिवाद नहीं है, जिसके पास मन ही नहीं है-- निर्वाण का अर्थ ही यही होता है कि जिसने मन को ही छोड़ दिया, अब जिसके भीतर कोई उत्तर नहीं उठते, कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। अब जो देखता रहता है खाली, शून्य आंखों से; जो जागा रहता है प्रतिपल, जिसका दीया जलता रहता है निर्विकार आकाश में, वही निर्वाण को उपलब्ध है।
एक दिन भी जी मगर तू ताज बनकर जी
अटल विश्वास बनकर जी
कल न बन तू जिंदगी का, आज बनकर जी
ओ मनुज! मत विहग बन, आकाश बनकर जी
ओ मनुज! मत विहग बन, आकाश बनकर जी
एक युग से आरती पर तू चढ़ाता निज नयन ही
पर कभी पाषाण क्या यह पिघल पाए एक क्षण भी
आज तेरी दीनता पर पड़ रहीं नजरें जगत की
भावना पर हंस रही प्रतिमा धवल, दीवार मठ की
मत पुजारी बन स्वयं भगवान बनकर जी
एक दिन भी जी मगर तू ताज बनकर जी
निर्वाण ताज है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं। निर्वाण मनुष्य के होने
की आखिरी संभावना और कल्पना है। वह आखिरी आकाश है। उसके आगे फिर और कोई आकाश नहीं। निर्वाण का अर्थ है, तुम हो और नहीं हो। तुम हो पूरे और बिल्कुल नहीं हो। तुम हो, लेकिन होने की कोई सीमा नहीं। चैतन्य हो, लेकिन विचार नहीं। आकाश हो, लेकिन बादल नहीं। कोरा, ओर से छोर तक शून्य।
इसे बुद्ध ने परम अवस्था कहा। इसको ही भगवत्ता कहा है। बुद्ध ने भगवान की बात नहीं की, भगवत्ता की बात की। अवस्था है।
भगवान बनकर जी!
आकाश बनकर जी!
आज बनकर जी!
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
उनन्चासवां प्रवचन

महोत्सव से परमात्मा, महोत्सव में परमात्मा

पहला प्रश्नः ओशो, मैं आपको वर्षों से सुन रहा हूं। लंबे अर्से से मैं आपके पास हूं। मैंने समय-समय पर आपसे कई भिन्न-भिन्न वक्तव्य और परस्पर विरोधी वक्तव्य सुने, लेकिन उनके संबंध में कहीं कोई प्रश्न मेरे मन में नहीं उठा। और उनके बावजूद आप मेरी दृष्टि में और मेरे हृदय में सदा-सर्वदा एक और अखंड बने रहे। इस पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

मेरे पास दो ढंग से हो सकते हो। एक तो विचार से, बुद्धि से, और एक हृदय
से और भाव से। बुद्धि और विचार से अगर मेरे पास हो, तो बड़ी अड़चन होगी। रोज-रोज विरोधी वक्तव्य होंगे। रोज-रोज तुम्हें सुलझाना पड़ेगा, फिर भी तुम सुलझा न पाओगे।
बुद्धि कभी कुछ सुलझा ही नहीं पाती। जहां सीधी-सीधी बात हो, वहां भी बुद्धि उलझा लेती है। तो मेरी बातें तो बड़ी उलझी हैं। जहां सब साफ-सुथरा हो, वहां भी बुद्धि समस्याएं खड़ी कर लेती है। तो मैं तो उन रास्तों की बात कर रहा हूं जो बड़े धुंधलके से भरे हैं। एक ही रास्ते की बात हो, तो भी बुद्धि विरोध खोज लेती है। ये तो अनंत रास्तों की बातें हैं। विरोध ही विरोध मिलेगा। ऐसा मैंने कोई वक्तव्य ही नहीं दिया है जिसका हजार बार खंडन न किया हो। तो यदि बुद्धि से मेरे पास हो, तो दो ही उपाय हैं। या तो तुम पागल हो जाओगे, बुद्धि को छोड़ दोगे। या भाग जाओगे।
बुद्धि को बचाना है, तो मुझे छोड़ना पड़े। मुझे बचाना है, तो बुद्धि छोड़नी पड़े। और कोई सौदा, और कोई समझौता नहीं हो सकता। इसलिए बहुत से बुद्धिवादी मेरे पास आते हैं, हट जाते हैं। उनको अपनी बुद्धि ज्यादा मूल्यवान मालूम होती है। वह उनका निर्णय।
उन्हें मैं बहुत बुद्धिमान नहीं कहता। क्योंकि वे उसी बुद्धि को पकड़ रहे हैं जिस बुद्धि से कुछ भी नहीं पाया। इधर मैंने एक मौका दिया था निर्बुद्धि होने का। एक द्वार खोला था--अनजान, अपरिचित। हिम्मत होती और दो कदम चल लेते, तो कुछ पा जाते। कोई झलक मिलती, कोई जीवन का स्वाद उतरता। लेकिन घबड़ाकर उन्होंने अपनी बुद्धि की पोटली बांध ली। भाग खड़े हुए। उसी को बचा लिया जिसके सहारे कुछ भी नहीं पाया था। इसलिए मैं उन्हें बहुत बुद्धिमान नहीं कहता।
जो सच में बुद्धिमान हैं, उन्हें मेरी बातों में विरोधाभास दिखायी पड़ेंगे, तो भी मेरी बातों का रस विरोधाभासों के बावजूद उनके हृदय को आंदोलित करता रहेगा। एक न एक दिन हिम्मत करके वे अंधेरे में मेरे साथ कदम उठाकर देखेंगे। उसी दिन उनके भीतर क्रांति हो जाएगी। उनकी चेतना की धारा बुद्धि से छिटककर हृदय के मार्ग पर बहने लगेगी। वही एकमात्र क्रांति है। तो जो बुद्धि से मेरे पास आए हैं, या तो रुकना है तो बुद्धि खोनी पड़ेगी। वही मूल्य चुकाना पड़ेगा। अपनी बुद्धि बचानी है, तो मुझे खोना पड़ेगा। फिर तुम्हारी मर्जी। दूसरा जो वर्ग है, जो हृदय के कारण मेरे पास आया है। जो मुझे सुनकर नहीं, मुझे सोचकर नहीं, मुझे देखकर, मुझे अनुभव कर मेरे पास आया है; जिसने धीरे-धीरे मेरे साथ एक प्रेम का नाता बनाया है--वह नाता बौद्धिक नहीं है। उस नाते में, मैं क्या कहता हूं, कुछ लेना-देना नहीं है। मेरी मान्यताएं क्या हैं, उनका कोई विचार नहीं है। मैं क्या हूं, वही मूल्यवान है--उनके ऊपर मैं कितने ही विरोधी वक्तव्य देता चला जाऊं, कोई अंतर न पड़ेगा। उन्होंने अपने भीतर से जो मेरा साथ जोड़ा है, वह अविरोध का है, हृदय का है।
बुद्धि सोचती है, कौन सी बात ठीक, कौन सी बात गलत। बुद्धि सोचती है, कौन सी बात किस बात के विपरीत पड़ रही है। बुद्धि सोचती है, कल मैंने क्या कहा था, आज मैं क्या कह रहा हूं। बुद्धि हिसाब रखती है। हृदय तो क्षण-क्षण जीता है। अतीत को जोड़कर नहीं चलता। मैंने कल क्या कहा था, उससे प्रयोजन नहीं है। मैं कल क्या था, उससे प्रयोजन है। और जो मैं कल था, वही मैं आज

हूं। मेरे वक्तव्य बदलते जाएं, मेरे शब्द बदलते जाएं, मेरा शून्य वही का वही है।
कभी मैंने तुमसे मंदिर में जाकर प्रार्थना करने को कहा है; कभी सब मूर्तियों को छोड़कर, त्यागकर, मस्जिद में नमाज पढ़ने को कहा है; कभी भगवान के रस में डूबकर नाचने को कहा है, मदमस्त होने को कहा है; कभी, भगवान है ही नहीं, सब सहारे छोड़ देने को, आत्मखोज के लिए कहा है।
स्वभावतः, ये वक्तव्य विरोधी हैं। लेकिन इन सब विरोधों के भीतर मैं हूं। जिसने तुमसे पूजा के लिए कहा था, उसी ने तुमसे पूजा छोड़ने को कहा है। और जिस लिए तुमसे पूजा करने को कहा था, उसी लिए तुमको पूजा छोड़ने को कहा है। मैं वही हूं और मेरा प्रयोजन वही है।
अगर तुमने प्रेम से मुझसे संबंध जोड़ा, तो तुम देख पाओगे। तुम्हें यह स्पष्ट होगा। तब तुम जन्मों-जन्मों मेरे साथ रहो और तुम्हारे भीतर कोई प्रश्न न उठेगा। यह शुभ है। यह महिमापूर्ण है। प्रेम ने कभी कोई प्रश्न जाना ही नहीं। हां, कभी जिज्ञासा उठ सकती है। जिज्ञासा बड़ी और बात है।
इस फर्क को भी ख्याल में ले लेना चाहिए।
प्रश्न तो उठता है तुम्हारी जानकारी से। तुम कुछ जानते हो, उससे प्रश्न खड़ा होता है। जिज्ञासा उठती है अज्ञान से। तुम नहीं जानते, इसलिए प्रश्न खड़ा होता है। तुमने वेद पढ़ा, फिर मैंने कुछ कहा, और अगर तुमने जो वेद में पढ़ा है उसके विपरीत हुआ, तो प्रश्न उठेगा। तुमने गीता पढ़ी, और मैंने कुछ कहा, और तुम्हारी पढ़ी हुई गीता से मेल न खाया, तो प्रश्न उठेगा। प्रश्न तुम्हारे ज्ञान से उठता है, तुम्हारी सूचना से, जानकारी से उठता है।
प्रश्न का केवल इतना अर्थ है कि तुम्हारा ज्ञान डगमगाया। तुम उसे थिर करना चाहते हो। तुम बेचैनी में पड़ गए, असुरक्षित हो गए। सब साफ-सुथरा मालूम होता था, भ्रम खड़ा हो गया। मैंने कुछ कहा, उसने तुम्हें डांवाडोल किया। तुम थिर होना चाहते हो। तुम प्रश्न पूछते हो--इस पार, या उस पार। या तो मैं तुम्हें बिल्कुल ही गलत सिद्ध कर दूं, ताकि तुम मुझे ठीक मान लो। और या मैं गलत सिद्ध हो जाऊं, ताकि तुम अपने ठीक को ठीक माने चले जाओ। प्रश्न तुम्हारे ज्ञान में बाधा पड़ने से उत्पन्न होता है।
जिज्ञासा अज्ञान से पैदा होती है। छोटा बच्चा पूछता है, तब जिज्ञासा है। उसे कुछ पता नहीं। वह पूछता है, संसार को किसने बनाया? एक हिंदू पूछता है, संसार को किसने बनाया? वह जानकर ही पूछ रहा है। वह यह पूछ रहा है कि मैं तो मानता हूं कि ईश्वर ने बनाया, तुम भी मानते हो या नहीं? किसने बनाया संसार को? उसके प्रश्न के पीछे जानकारी खड़ी है। एक छोटा बच्चा पूछता है, किसने बनाया? उसके प्रश्न के पीछे कोई जानकारी नहीं है, विराट जिज्ञासा है। वह कुछ मानकर नहीं पूछ रहा है। इसलिए उसके पूछने में एक निर्दोष भाव है। वह जानना चाहता है, इसलिए पूछ रहा है। तुम जानते ही हो, इसलिए पूछते हो। तो तुम जब भी पूछते हो, तुम्हारा प्रश्न एक तरह का विवाद है। जिन्होंने मुझसे प्रेम किया है, उनके प्रश्न तो नहीं उठेंगे, जिज्ञासाएं होंगी। जिज्ञासा सत्य की खोज पर बड़ी जरूरी है। प्रश्न, विवाद करना हो, शास्त्रार्थ करना हो, तो काम के हैं। सत्य को खोजना हो, तो बाधाएं हैं।
पूछा है, "वर्षों से आपको सुन रहा हूं, लंबे अर्से से आपके पास हूं।"
इससे कोई फर्क न पड़ेगा। तुम जितनी ज्यादा देर मेरे पास रह जाओगे उतना
ही लगेगा कम रहे। यह कुछ प्रेम ऐसा है कि बढ़ने ही वाला है, घटने वाला नहीं। जो घट जाए, वह भी कोई प्रेम! यह चांद कुछ ऐसा है कि बढ़ता ही चला जाता है। पूर्णिमा कभी आती नहीं, बस आती मालूम होती है। प्रेम के रास्ते की यही खूबी है। पांव बढ़ते हैं, लक्ष्य उनके साथ बढ़ता है।
पांव बढ़ते लक्ष्य उनके साथ बढ़ता
और पल को भी नहीं यह क्रम ठहरता
पांव मंजिल पर नहीं पड़ता किसी का
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का

जिससे जी भर जाए, वह प्रेम नहीं। जिससे जी भरे ही न, वही प्रेम है। भर-
भर कर न भरे। बार-बार तुम लगो कि अब लबालब हुए, अब लबालब हुए, जब झांको, तब पाओ कि अभी और जगह रह गयी, अभी और भरना है। मंजिल सदा पास आती लगती है--हाथ बढ़ाया, मिल जाएगी; पर पांव मंजिल पर कभी नहीं पड़ता।
तुम जितनी ज्यादा देर मेरे पास रह जाओगे, उतना ही लगेगा, कम रहे। समय सिकुड़ता जाएगा। प्रेम के सामने समय छोटा है। समय कैसे बीत जाता है प्रेम की घड़ी में, पता नहीं चलता।
तुमने कभी ख्याल किया? तुम प्रेमी के पास बैठे हो, घंटों बीत जाते हैं, ऐसा लगता है, पल ही बीते। और तुम किसी दुश्मन के पास बैठे हो; पल बीतते हैं और ऐसा लगता है, घड़ी मानो ठहर गयी। घंटों बीत गए। दुख में समय लंबा हो जाता है। सुख में समय छोटा हो जाता है।
इसीलिए तो कहते हैं, नर्क अनंत है। दुख में समय लंबा हो जाता है।
इसीलिए तो कहते हैं, स्वर्ग क्षणभंगुर है। सुख में समय छोटा हो जाता है।
आया नहीं, गया नहीं। और आनंद में तो समय परिपूर्ण शून्य हो जाता है।
इसीलिए आनंद को कालातीत कहा है।
फिर से तुम सोचना, कितने समय तुम मेरे पास रहे? बहुत थोड़ा मालूम पड़ेगा। अगर गौर से देखोगे, तो शायद तिरोहित ही हो जाएगा कि रहे ही कहां! अभी आए थे; क्षण भी नहीं बीता; या क्षण कहना भी ठीक नहीं, कुछ बीतता नहीं मालूम पड़ता; कुछ ठहरा हुआ मालूम पड़ता है। इसलिए तुम जितनी ज्यादा देर रह जाओगे, उतना ही लगेगा, कम रहे, कम रहे, कम रहे। यह जल कुछ ऐसा है कि पीने से प्यास बढ़ती है। जिस प्रेम से प्यास बुझ जाए, वह प्रेम नहीं। जिस प्रेम से प्यास अनंत होकर जलने लगे, प्रखर होकर जलने लगे, वही प्रेम प्रेम है। और वही प्रेम प्रार्थना बनेगा। और वही प्रेम तुम्हें एक दिन परमात्मा तक ले जाएगा।
प्यास जब ऐसी हो जाए कि तुम मिट ही जाओ और प्यास ही बचे; बस प्यास बचे, तुम न बचो; एक व्याकुलता बचे, एक विरह बचे, एक उत्तप्त अभीप्सा बचे, तुम खो ही जाओ--प्यासा बचे ही न, क्योंकि प्यासे के कारण ही प्यास पूरी नहीं हो पाती। कुछ शक्ति प्यासे को मिलती है, कुछ प्यास को मिलती है, बंट जाती है। जब प्यास ही प्यास होती है और प्यासे के पास अपने को बचाने की शक्ति भी नहीं बचती, तभी प्यास प्रार्थना हो जाती है, तभी प्यास परमात्मा हो जाती है।
यहां तुम्हें मैं प्यास ही सिखा रहा हूं। यहां तुम्हें मैं इस बात के लिए तैयार कर रहा हूं, ताकि तुम अनंत प्यास के मालिक हो जाओ। भरने की जल्दी... थोड़ा सोचो, साधारण प्यास को आदमी मिटा लेना चाहता है, क्योंकि प्यास से पीड़ित है। परमात्मा की प्यास को मिटा थोड़े ही देना चाहता है, क्योंकि प्यास से पीड़ित थोड़े ही है। इसलिए नारद कहते हैं, विरहासक्ति। विरह में भी आसक्ति हो जाती है। रस आने लगता है प्यास में भी।
अगर तुम ठीक से समझो, तो ऐसा कहने दो मुझे कि प्यास के कारण थोड़े ही भक्त परमात्मा को मांगता है, परमात्मा को मांगता है, ताकि प्यास बढ़ती जाए। परमात्मा प्यास से गौण हो जाए। भक्ति भगवान से महत्वपूर्ण हो जाए। क्योंकि जब तक भक्ति साधन है, तब तक तो तुम छुटकारा चाहोगे कि जल्दी पूरा हो, रास्ता पूरा हो, मंजिल आए। जब भक्ति साध्य हो जाती है!
यहां तुम्हें मैं ऐसी ही प्यास की तरफ ले चला हूं। तो कितना समय तुम रहे, यह बात बड़ी सोच लेने जैसी है, ज्यादा समय रहे नहीं। यह प्रश्न पूछा है आनंद त्रिवेदी ने। माना बहुत वर्ष हो गए हैं; लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, अभी क्षण भी कहां बीते! अभी-अभी आए थे, अभी बैठे ही हो, अभी ज्यादा देर नहीं हुई, और तुम विचारोगे तो ऐसा ही पाओगे। अगर ज्यादा देर हो गयी, तो उठने का वक्त करीब आ गया। जब ज्यादा देर होने लगी, तो आदमी उठने की तैयारी करने लगता है। तुम और भी बैठे रहना चाहते हो, तुम रुके ही रहना चाहते हो। जब तक उठने की आकांक्षा खड़ी न हो जाए, जब तक यहां से दूर जाने की आकांक्षा न हो जाए, तब तक कहां देर हुई? अभी तुम ऊबे नहीं।
बुद्धि जल्दी ऊब जाती है। बुद्धि बड़ी छिछली है। उसमें कोई गहराई नहीं। शोरगुल बहुत है, जैसा उथली नदियों में होता है। हृदय कभी ऊबता नहीं,

बड़ा गहरा है। पता भी नहीं चलता कि बह रहा है कि नहीं बह रहा है। धार बड़ी धीमी सरकती है।
पूछा है, "मैंने समय-समय पर आपसे कई भिन्न-भिन्न वक्तव्य, परस्पर विरोधी वक्तव्य सुने हैं, लेकिन उनके संबंध में कभी कोई प्रश्न मेरे मन में नहीं उठा।"
शुभ है। सौभाग्यशाली हो। बड़ा मंगल-सूचक है। ऐसा ही होना चाहिए। नहीं होता सभी को, दुर्भाग्य है। जिसको होता है, आनंदित होओ। इसका अर्थ हुआ कि एक बड़ी गहरी उपलब्धि तुम्हें हो रही है, जो वक्तव्यों से नहीं डिगायी जा सकती है। मैं क्या कहता हूं, इसकी तुम्हें अब चिंता नहीं है। तुम्हारे सामने, मैं क्या हूं, यह प्रगट होने लगा। मैं किन शब्दों का उपयोग करता हूं, बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम मेरे शब्दों में झांककर मेरे शून्य को देखने लगे। मैं परमात्मा के संबंध में कुछ कहूं, परमात्मा के खिलाफ कहूं, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम दोनों के पार मुझे खड़ा हुआ अनुभव कर लेते हो। तुम मेरे गीत की धुन को पहचानने लगे। मैं किस भाषा में गाता हूं, कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम्हें भाषा समझ में आती है, नहीं आती, कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम मेरे गीत की धुन से राजी होने लगे, तुम्हारी लयबद्धता बंधने लगी।
न फलसफी, न मुल्ला से गरज है मुझको
यह दिल की मौत, वो अंदेशा-ओ-नजर का फसाद
पंडित है, मौलवी है, दार्शनिक है, विचारक है, उससे क्या लेना-देना? क्योंकि यहां तो मरने की कला सिखायी जा रही है। और वह तो सिर्फ दृष्टि, मत, विचार का उपद्रव है। पंडित तो केवल शब्दों का जाल है।
न फलसफी, न मुल्ला से गरज है मुझको
यह दिल की मौत...
धर्म तो दिल की मौत है, यहां तो मिटना है।
... वो अंदेशा-ओ-नजर का फसाद
और वहां तो केवल दृष्टिकोण, नजरिए के झगड़े हैं।
यहां तुम्हें कोई झगड़ा थोड़े ही सिखा रहा हूं। यहां तो झगड़ने वाले को कैसे विसर्जित कर दो, यही सिखा रहा हूं। यहां झगड़ा करने वाला कैसे विसर्जित हो जाए, अहंकार कैसे डूब जाए, बस उतनी ही बात है। और इसीलिए तो सब चिकित्साओं की बात करता हूं। जिससे हो जाए, चलेगा। चिकित्सा से मेरा मोह नहीं, इसे तुम समझ लो। तुम्हारी बीमारी मिटनी चाहिए। ऐसे लोग हैं जिनको बीमारी मिटाने की उतनी चिंता नहीं, चिकित्सा से मोह है।
मेरे एक मित्र हैं। वे होमियोपैथ हैं। होमियोपैथी के दीवाने हैं। एलोपैथी के दुश्मन हैं। उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि इस घर में बीमार होना मुश्किल है। क्योंकि बीमार हुए कि होमियोपैथी। कोई ठीक होता नहीं दिखायी पड़ता, मगर इनकी जिद्द है। और एलोपैथी डाक्टर के पास तो जा नहीं सकते। तो अपने पति से यह कहना भी संभव नहीं है कि सिर में दर्द है, या बुखार है। यह भी चोरी-छिपे छिपाना पड़ता है। नहीं तो होमियोपैथी शुरू! मरीज से मतलब नहीं है, सिद्धांत!
कुछ हैं जो नेचरोपैथी के दीवाने हैं। उन्हें कोई फिकर नहीं। मेरे एक रिश्तेदार हैं, उनकी पत्नी मर गयी नेचरोपैथी में। पूरे समय मैं मौजूद था जब यह घटना घटी। उनको कई बार समझाया कि तुम इस पत्नी को मारे डाल रहे हो। उपवास। वह कमजोर, बीमार, उसको वह उपवास करवा रहे हैं। फिर मैंने कहा, उपवास कभी ठीक भी हो सकता है, लेकिन इसकी हालत खराब है। और वे बोले कि हालत इसीलिए खराब है कि शरीर में विषाक्त द्रव्य हो गए हैं। टाक्सिक। उनको निकालना पड़ेगा, उपवास से ही निकल सकते हैं। और एलोपैथी की दवा तो मैं दूंगा नहीं, क्योंकि उसमें तो और जहर है।
सिद्धांत मजबूत, पत्नी सूखती गयी। इधर मैं उनसे कहता भी कि पत्नी सूखती जा रही है, हालत उसकी खराब होती जा रही है। पर वे कहते कि जरा देखो तो उसके चेहरे पर कैसी कांति है! वह पीली पड़ रही, वे उसको कांति कहते हैं। ऐसे ही तो साधु-संन्यासियों के पास लोग जुड़े रहते हैं। उनका चेहरा पीला पड़ता जाता है, और भक्त कहते हैं, कैसी स्वर्ण जैसी तपश्चर्या प्रकट हो रही है। दूसरा देखेगा, तो उनको बीमार पाएगा, इलाज की जरूरत है। भक्त

देखता है, तो वह कहता है, अहा! कैसा शुद्ध कुंदन जैसा चेहरा निकला आ रहा है। स्वर्ण प्रगट हो रहा है। नजरों में सिद्धांत छाए हों तो पीतल सोना मालूम होता है।
मैंने उनसे कहा, यह पत्नी मर जाएगी। न केवल उसका शरीर कमजोर हुआ, उसकी नींद भी खो गयी। क्योंकि भोजन की थोड़ी मात्रा नींद के लिए जरूरी है। जब शरीर में कुछ पचाने को न हो, तो शरीर को सोने की जरूरत नहीं रह जाती। जब नींद खो गयी, मैंने उनसे कहा, इसकी नींद खो गयी है। वे कहने लगे कि यह... यह तो हो जाता है जब आदमी शांत हो जाता है। तो ऐसा तो गीता में ही कहा है कृष्ण ने, या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यह पत्नी संयम को उपलब्ध हो रही है।
उनको समझाना मुश्किल था। फिर पत्नी पागल भी हुई। मगर वे अपनी बकवास जारी रखे। पत्नी मर भी गयी। लेकिन सवाल सिद्धांत का था।
ध्यान रखना, ऐसा ही धर्मों के जगत में चलता है। तुम्हें इसकी फिकर नहीं है कि परमात्मा मिले या न; अगर तुम मुसलमान हो तो कुरान के आसरे ही मिलना चाहिए। कुरान ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर तुम हिंदू हो तो गीता के सहारे ही मिलना चाहिए। गीता ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर परमात्मा तुमसे कहता हो कि आज मैं कुरान के द्वारा मिलने को तैयार हूं, तो तुम कहोगे, हम मिलने को तैयार नहीं। हम तो गीता के सहारे ही आएंगे।
कहते हैं, तुलसीदास कृष्ण के मंदिर में गए वृंदावन, तो उन्होंने कहा
कि झुकूंगा नहीं, जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे। कृष्ण की मूर्ति थी, बांसुरी लिए। अब तुलसीदास झुक सकते कहीं कृष्ण की मूर्ति के सामने, बांसुरी लिए! वे तो धनुर्धारी राम के भक्त हैं। जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, झुकूंगा नहीं।
यह बात कैसी हुई! परमात्मा से कोई प्रयोजन नहीं है। तुम परमात्मा को
भी अपने अनुशासन में रखना चाहते हो। तुम्हारे ढंग से आए तो झुकोगे। इसका अर्थ हुआ, तुम अपने ढंग के लिए झुकोगे, परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं। तुम परमात्मा से कवायद करवाने को उत्सुक हो। यह कैसा अहंकार! नहीं, बुद्धि विवादी है। झगड़ैल है।
यहां मैं सभी रास्तों की बातें कर रहा हूं। क्योंकि मैं कहता हूं, चलो, गीता से न मिले, छोड़ो भी। गीता से क्या लेना-देना है! आम खाने से मतलब, गुठलियां गिनने से क्या प्रयोजन है! गीता से नहीं मिले, जाने दो, धम्मपद सही। चलो धम्मपद से खोज लें। अगर होमियोपैथी काम न आयी, तो एलोपैथी सही; एलोपैथी काम न आयी, तो नेचरोपैथी सही। पैथी से बंधने की जरूरत क्या है? जो पैथी से बंध गया, वह तो रोगी से भी महारोगी है। एक तो बीमारी पकड़े है, और अब चिकित्सा ने भी पकड़ा।
सभी रास्तों से लोग पहुंचे हैं। मैं तुमसे सभी रास्तों की चर्चा कर रहा हूं। इसलिए नहीं कि तुम सभी रास्तों पर चलो। मैं कहता हूं, जब तुम्हें जो रास्ता जम जाए, तुम उस पर चल पड़ना। जिनके लिए तब तक न जमा होगा, उनके लिए मैं आगे बोलता चला जाऊंगा।
इसलिए तुम्हें मेरे वक्तव्यों में विरोध दिखायी पड़ेगा। क्योंकि मैं इतने विरोधी लोगों पर बोल रहा हूं। उनकी अभिव्यक्तियां इतनी भिन्न हैं। कहां बुद्ध, कहां क्राइस्ट! कहां कृष्ण, कहां महावीर! कहां पतंजलि, कहां तिलोपा! कहां शिव का विज्ञान भैरव, कहां लाओत्से का ताओ तेह किंग! इतने भिन्न लोग हैं, इतनी भिन्न सदियां, इतनी भिन्न अभिव्यक्तियां। लेकिन मेरी सारी चेष्टा तुम्हें बताने की यह है कि सबके भीतर एक की तरफ ही इशारे हैं। अंगुलियां अलग-अलग, चांद एक है।
तो जब मैं लाओत्से की अंगुली पकड़कर उठाऊंगा चांद की तरफ, तो स्वभावतः
वह अंगुली वैसी ही नहीं होगी जैसी बुद्ध की अंगुली होगी। हो ही नहीं सकती। बुद्ध की अंगुली बुद्ध की अंगुली है। लाओत्से की अंगुली लाओत्से की अंगुली है।
तुम अगर गौर से मुझे देखते रहे, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि अंगुलियों
का प्रयोजन ही नहीं है। अंगुलियां किस तरफ उठायी जा रही हैं--चांद की तरफ-- उस तरफ देखो, अंगुलियों को भूलो। अगर तुमने चांद देखा, तो मेरे वक्तव्यों

में तुम्हें एक धारा बहती हुई प्रवाहित मालूम होगी। अगर अंगुलियां देखीं, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तो मेरे वक्तव्य तुम्हें अलग-अलग मालूम होंगे।
चांद को देखना हो, तो तुम्हें मुझे बड़ी प्रेम की नजर से देखना होगा। विवाद की नजर लेकर तुम आए, तो शब्द दिखायी पड़ेंगे। क्योंकि विवाद शब्द को भी पकड़ ले, तो बहुत। शब्द भी छूट जाता है। विवादी का मन इतना आतुर होता है विवाद के लिए कि वह शब्दों को भी नहीं पकड़ पाता। उनको पकड़ लेता है जिनको विवाद के काम ला सकता है। उनको छोड़ देता है जो उसके काम के नहीं। जिनसे विवाद खड़ा हो सकता है, उनको पकड़ लेता है। जिनसे खड़ा नहीं हो सकता, उनको भूल ही जाता है।
लेकिन, अगर तुमने प्रेम से मुझे सुना, जो कि जीवन को देखने का अलग ही, अनूठा ही ढंग है; अगर तुमने प्रेम से मुझे सुना, तो तुम मेरे सारे विरोधों में एक ही संगीत को प्रवाहित होते हुए देखोगे। नदियां चाहे पूरब की तरफ जा रही हों, चाहे पश्चिम की तरफ, सब सागर की तरफ जा रही हैं।
कुछ नजर आता नहीं उसके तसव्वुर के सिवा
हसरते-दीदार ने आंखों को अंधा कर दिया
प्रेम के लिए जो आंख है, बुद्धि के लिए वही अंधापन मालूम होता है। इसलिए बुद्धिमान सदा प्रेम को अंधा कहते रहे हैं। तुम प्रेमी से पूछो। प्रेमी बुद्धिमानों को अंधा मानता है। क्योंकि प्रेमी कुछ ऐसा देख लेता है, जो बुद्धि देख ही नहीं पाती।
कल एक युवा संन्यासी ने मुझसे पूछा कि जब से ध्यान कर रहा हूं, तब से कुछ ऐसी चीजें दिखायी पड़ती हैं, अनुभव आती हैं, कि मुझे डर लगता है कि कहीं मैंने कल्पना तो नहीं कर ली। फूल ज्यादा रंगीन दिखायी पड़ते हैं, कहीं मैं कल्पना तो नहीं कर रहा हूं? वृक्ष ज्यादा हरे मालूम पड़ते हैं, ताजे और नहाए मालूम पड़ते हैं, कहीं मैं कल्पना तो नहीं कर रहा हूं? क्योंकि वृक्ष तो ये वही हैं, न इन्होंने कोई स्नान किया है, न कोई ताजगी आ गयी है।
उस युवक की चिंता स्वाभाविक है। भीतर मन साफ हो रहा है, तो बाहर भी चीजें साफ होने लगीं। मैंने कहा, घबड़ाना मत। अगर डर गए और ऐसा सोच लिया और मान ली बुद्धि की बात कि यह तो कल्पना का जाल है, तुमने सपने देखने शुरू कर दिए, तो जो द्वार खुलता था, जो पर्दा हटता था, रुक जाएगा।
यह तो बुद्धि ने सदा ही कहा है। एक कवि को फूल में उतना दिखायी पड़ता है जितना किसी को दिखायी नहीं पड़ता। एक छोटे बच्चे को सागर के तट पर कंकड़-पत्थर में, सीपी-शंख में इतना दिखायी पड़ता है जितना किसी को दिखायी नहीं पड़ता। कंकड़-पत्थर भर लेता है खीसे में, जो भी रंगीन मिला। मां-बाप कहे चले जाते हैं कि फेंको, बोझ हुआ जा रहा है, यह घर ले जाकर क्या करोगे? बच्चा छोड़ता भी है, तो भी आंख में आंसू आ जाते हैं।
ये जो बड़े-बूढ़े हैं, इनको अगर हीरे-जवाहरात होते तो ये भी भर लेते। अभी इनको यह पता ही नहीं रहा, ये भूल ही गए भाषा कि इस बच्चे को अभी कंकड़-पत्थरों में भी हीरे दिखायी पड़ते हैं। अभी हर रंगीन पत्थर कोहिनूर है। अभी इसकी आंखें धुंधली नहीं पड़ीं, अभी साफ हैं। अभी इसे सीपी-शंख में खजाने दिखायी पड़ते हैं। अभी इसकी बुद्धि मंद नहीं हुई। अभी प्रतिभा ताजी- ताजी है, अभी-अभी परमात्मा के घर से आया है। अभी नजर साफ है। अभी धूल नहीं जमी। अभी अनुभव का कचरा इकट्ठा नहीं हुआ।
लेकिन जल्दी ही बड़े-बूढ़े इसे समझा देंगे कि ये कंकड़-पत्थर हैं, छोड़ो।
और दूसरे कंकड़-पत्थरों की दौड़ पर लगा देंगे, जिनमें उनको मूल्य दिखायी पड़ता है।
जब तुम फिर से प्रेम में पड़ते हो, तो फिर तुम्हें बच्चे की आंख मिलती है। जब तुम प्रेम में पड़ते हो, तो तुम्हें कवि की आंख उपलब्ध होती है।
तुम्हें रहस्यवादी संत की आंख उपलब्ध होती है।
तो अगर तुम मेरे प्रेम में हो, तो ही मेरे पास भी हो, ध्यान रखना।
अन्यथा पास आकर भी कोई पास आ पाता है? शारीरिक निकटता किसी को पास थोड़े ही लाती है। एक आत्मिक निकटता। फिर तुम हजारों मील दूर भी रहो, तो भी पास हो।
विचार बीच में न हों, तो तुम पास हो। विचार बीच में हों, तो तुम पास होकर भी

दूर हो। और विचार बीच में न हों, तो प्रेम बहता है। विचार पत्थर की तरह रोके हुए है प्रेम को। जहां प्रेम बहता है, वहां तुम्हें कुछ चीजें दिखायी पड़ेंगी जो प्रेम से खाली आंखों को दिखायी नहीं पड़ेंगी। और प्रेम से खाली आंखें तुम्हें अंधा कहेंगी। तुम उससे बेचैन मत होना। उनके लिए यह वक्तव्य स्वाभाविक है। बुद्धिमान तुम्हें पागल कहेंगे। सदा से उन्होंने कहा है। जब बुद्ध के पास लोग आकर हजारों की संख्या में संन्यस्त होने लगे, तो लोगों ने कहा, पागल हो गए, इस आदमी ने लोगों को पागल किया। यह क्या है? सम्मोहित हो गए। जब महावीर के पास आकर लोग संन्यस्त हुए, और उन्होंने जीवन का नया ढंग लिया, नयी चाल सीखी, तो लोगों ने फिर कहा कि पागल हुए। यह संसार सदा से ही जो भीड़ का रास्ता है उससे अन्यथा जाने वालों को पागल कहता रहा है।
अगर तुममें हिम्मत हो मेरे साथ चलने की, तो तुम्हें यह भी हिम्मत जुटानी पड़ेगी कि लोग जब पागल कहें, तो हंस लेना। और जब लोग पागल कहें, तो क्रोध मत करना। स्वाभाविक है। वे तुम्हें पागल नहीं कह रहे हैं, वे यह कह रहे हैं कि अगर तुम ठीक हो तो फिर हम पागल हैं क्या? वे सिर्फ आत्मरक्षा कर रहे हैं! तुम उन पर नाराज मत होना। अगर तुम नाराज हुए, तो तुम उनके विचार को मजबूत कर दोगे कि निश्चित ही तुम पागल हो गए हो। तुम नाराज मत होना। तुम हंसना, तुम उन्हें बिबूचन में डाल देना। तुम मुस्कुराना। तुम कहना कि ठीक कहते हो, पागल हो गए हैं, लेकिन पहले से भले हो गए हैं। और पहले से ज्यादा मजे में हो गए हैं। मगर पागल हो गए हैं, यह सच है।
तुम्हारे पागलपन को उनके प्रति करुणा बनने देना। क्योंकि वे परेशान हैं अपने पागलपन से। वे भी चाहते हैं कि छूट निकलें, कहीं कोई द्वार-दरवाजा मिले। वे कारागृह में बंद हैं। अगर तुम्हें आनंदित देखा, शांत देखा, तो तुम उन्हें भी खींच लाओगे। अगर तुम क्रोधित हुए, अगर तुम अपनी आत्मरक्षा करने लगे, तुमने कहा कि मैं पागल नहीं, अगर तुम विवाद में पड़े, तो तुम उनके लिए द्वार बंद कर दोगे। यही तो वे चाहते थे कि तुम विवाद में उतर आओ।
तुम मुस्कुराना। तुम उन्हें आशीर्वाद दे देना। उनके लिए परमात्मा से प्रार्थना करना। एक फूल उनको भेंट कर आना, और लौट आना। तुम कोई विवाद मत करना। तो तुम उनके लिए भी रास्ता खुला रखोगे। आज नहीं कल वे भी आ सकते हैं। उनकी भी संभावना उतनी ही महान है, जितनी तुम्हारी है।
"समय-समय पर आपसे कई भिन्न-भिन्न वक्तव्य, परस्पर विरोधी वक्तव्य सुने हैं, लेकिन उनके संबंध में कहीं कोई प्रश्न मेरे मन में नहीं उठा। और उनके बावजूद आप मेरी दृष्टि में और हृदय में सदा-सर्वदा एक और अखंड बने रहे।"
उन विरोधी वक्तव्यों के बावजूद अगर तुम्हारे हृदय में बना रहा, तो ही बने रहने में कुछ सार है। अगर मैं तुम्हें तर्कयुक्त लगूं, तुम्हारे बंधे- बंधाए तर्क की सीमा में बंधा हुआ लगूं, फिर तुम मुझसे राजी हो जाओ, तो वह दोस्ती कुछ बहुत गहरी नहीं। वह केवल विचार का नाता है। वह नाता कभी भी टूट सकता है। मेरे विचार बदल जाएं, या तुम्हारे बदल जाएं, वह टूट जाएगा। और विचार तो रोज बदलते रहते हैं। विचार का कोई भरोसा! विचार पर भरोसा तो ऐसे है, जैसे किसी ने सागर की लहरों पर भवन बनाने की आकांक्षा की। विचार तो बड़े चंचल हैं।
मन तो मौसम सा चंचल है
सबका होकर भी न किसी का
अभी सुबह का, अभी शाम का
अभी रुदन का, अभी हंसी का
मन तो मौसम सा चंचल है
मन के सहारे अगर तुम मेरे साथ रहे, तो ज्यादा देर चलना न होगा। यह दोस्ती थोड़ी देर की रहेगी। रास्ते पर दो राहगीर मिल गए, फिर मेरा रास्ता अलग हो गया, फिर तुम्हारा रास्ता अलग हो गया। मिले, थोड़ी दूर को साथ चल लिए, फिर बिछुड़ गए। प्रेम ऐसी कुछ बुनियाद है कि शाश्वत हो सकता है। मृत्यु भी

उसे मिटाती नहीं। जीवन तो उसे डगमगा ही नहीं सकता, मौत भी उसे नहीं डगमगा पाती।
बुद्ध की मृत्यु करीब आयी। उन्होंने घोषणा कर दी कि आज वे विदा हो जाएंगे शरीर से। आनंद बहुत रोने-चीखने लगा। लेकिन वह चकित हुआ कि बुद्ध का एक जो दूसरा शिष्य--सुभूति--एक वृक्ष के नीचे शांत बैठा है। आनंद ने उससे कहा, तुम्हें एक खबर नहीं मिली? किसी ने बताया नहीं? भगवान आज देह छोड़ देंगे! तुम रो नहीं रहे! तुम होश में हो? तुम्हारी आंखें गीली नहीं! फिर कभी मिलन न होगा, फिर कभी उनके ये सदवचन सुनने को न मिलेंगे! फिर कौन सिखाएगा यह सदधर्म? शास्ता खोया जाता है।
सुभूति ने कहा, जिस शास्ता से मेरा संबंध है, उसके खोने का कोई उपाय नहीं। जिससे मेरा संबंध है, उसकी मौत नहीं हो सकती। वह फिकर मैंने पहले ही कर ली है, आनंद। तूने कुछ गलत से संबंध बना लिया। विचार से मेरा कुछ लेना- देना नहीं। मेरा संबंध गहरा है विचार से। हम साथ ही हैं। अब हम अलग नहीं हो सकते। अलग होने का कोई उपाय नहीं।
आनंद ने बुद्ध को आकर कहा। बुद्ध ने कहा, सुभूति ठीक कहता है, आनंद। आनंद ने कहा, मैं चालीस वर्ष आपके पास रहा और मैं आपके पास न हो पाया, क्या बाधा है? तो बुद्ध ने कहा, तू ज्यादा सोच-विचार करता है। तेरा मुझसे संबंध विचार का है। तू अभी भी ध्यान में मुझसे न जुड़ा।
यह ध्यान बुद्ध का शब्द है प्रेम के लिए। कहो ध्यान, कहो प्रेम।
मेरे सारे विरोधी वक्तव्यों के बावजूद ही अगर तुम मेरे साथ हो, तो ही मेरे साथ हो। इसलिए मैं तुम से यह भी कह दूं कि मेरे इतने विरोधी वक्तव्यों के पीछे बहुत-बहुत कारण हैं। उनमें एक यह भी है कि जो इनके बावजूद मेरे पास होंगे, उनको ही मैं चाहूंगा कि मेरे पास हों। जो इनके कारण हट जाएंगे, उनकी बड़ी कृपा! उनके पास होने का कोई मूल्य न था। भीड़ बढ़ाने से तो कोई प्रयोजन नहीं। वे समय ही खोते, अपना भी, मेरा भी। वे जगह ही भरते, अच्छा हुआ हट गए।
दो तरह के लोग हैं। सभी जीवन की घटनाएं दो हिस्सों में बंटी होती हैं। मेरे करीब हजारों आने वाले लोगों में जब पुरुष मेरे पास आते हैं, तो वे कहते हैं, आपके विचार हमें अच्छे लगते हैं, इसलिए आपसे नाता बनाते हैं। स्त्रियां जब मेरे पास आती हैं, वे कहती हैं, आप हमें अच्छे लगते हैं, इसलिए आपके विचार भी अच्छे लगते हैं। और ऐसा स्त्री-पुरुष का विभाजन बहुत साफ-सुथरा नहीं है। बहुत से पुरुष हैं जो स्त्रियों जैसे हृदयवान हैं। बहुत सी स्त्रियां हैं जो पुरुषों जैसी बुद्धिमान हैं। बुद्धि कहती है, विचार अच्छे लगते, इससे आपसे लगाव है। हृदय कहता है, आपसे लगाव है, इसलिए विचार भी अच्छे लगते हैं।
अब थोड़ा सोचो, जो विचार के कारण मुझसे लगाव बनाया है, कल अगर विचार ठीक
न लगे! और ऐसे मैं हजारों मौके लाता हूं जब विचार ठीक नहीं लगते।
मेरे पास बहुत से गांधीवादी लोग थे। फिर मैंने उनसे छुटकारा चाहा। गांधी से कुछ लेना-देना न था। लेकिन गांधीवादियों के कारण गांधी के विपरीत बोला। वे भाग गए। जो उसमें से बच गए, उन्होंने सबूत दिया कि उनका नाता मुझसे है। मेरे पास, जब मैं गांधी के विपरीत बोला, तो सारे मुल्क के समाजवादी, साम्यवादी, उनकी भीड़ बढ़ने लगी। कम्युनिस्ट, जो मुझे कभी सुनने न आए थे, वे आने लगे। फिर जब मैं समाजवाद के खिलाफ बोला, वे भाग गए। उसमें से कुछ रुक गए। जो रुक गए, वही मूल्यवान थे। निरंतर मैं यह करता रहा हूं, निरंतर मैं यह करता रहूंगा।
मैं चाहता हूं कि तुम मेरे कारण ही मेरे पास होओ। कोई और इतर कारण नहीं है, यह संबंध सीधा है, तो ही तुम्हारा यहां होना उचित है। अन्यथा तुम किसी और की जगह घेर रहे हो, खाली करो। कोई और वहां होगा, कोई और लाभ ले लेगा। तुम द्वार पर भीड़ मत करो।
शुभ है कि मेरे सारे विरोधी वक्तव्यों के बावजूद तुम यहां हो। इसे भूलना मत। इसे सतत स्मरण रखना। क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है--इसे भी तुम समझ लो--कि मैं गांधी के खिलाफ बोला, तुम गांधीवादी थे ही नहीं, इसलिए तुम्हें कोई अड़चन न हुई, और तुमने सोचा कि हमारा तो प्रेम का नाता है। मैं

समाजवाद के खिलाफ बोला, तुम समाजवादी कभी थे ही नहीं, तुमने कहा, हमें इन विरोधी वक्तव्यों से कुछ नहीं लेना, हमारा तो प्रेम का नाता है।
थोड़ी प्रतीक्षा करो, कहीं न कहीं से मैं तुम्हारी जड़ पकड़ ही लूंगा। तुम ज्यादा देर न बच पाओगे। कहीं न कहीं से मैं तुम्हारे मत, तुम्हारे शास्त्र पर हमला करूंगा ही। करना ही पड़ेगा। क्योंकि जब तक मैं तुम्हें तुम्हारे शास्त्र से मुक्त न करूं, तब तक मैं तुम्हें तुम्हारी बुद्धि से मुक्त न कर पाऊंगा। जब तक तुम तुम्हारी बुद्धि से मुक्त न होओ, तब तक अहंकार के नीचे से आधार न हटेगा। तुम्हारा भवन गिर न सकेगा।
तो मैं खोजे चला जाता हूं। मेरे साथ आखिरी में जो बच रहेगा--सभी झंझावातों को सहकर, सभी आंधियों को सहकर--वह परीक्षा में पूरा उतरा। अगर तुम्हें होश हो, तो कोई कारण नहीं है कि तुम भी परीक्षा में क्यों न पूरे उतर जाओ। लेकिन जब तुम्हारे मत पर चोट पड़ती है, तब होश खो जाता है। तब आदमी बेचैन हो जाता है। क्योंकि यह मानना कि तुम कोई गलत चीज मानते थे, बड़ा मुश्किल होता है। तुम! इतने बुद्धिमान और किसी गलत चीज को मानते थे! तुम्हें अपनी बुद्धिमानी पर शक नहीं आता।
और धार्मिक व्यक्ति का वह बुनियादी लक्षण है। जिस बुद्धि को अपने पर
शक आ गया, वह धार्मिक हो गयी। क्योंकि जिसे अपने पर संदेह आया, उसने ही अपने को बदला। संदेह ही न, तो बदलोगे क्यों? जिसने पहचाना कि मैं रुग्ण हूं, वही चिकित्सा की खोज में चला, औषधि की तलाश की।

दूसरा प्रश्नः प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एरिक फ्राम ने कहा है कि मनुष्य के मन में झांककर देखने के बाद मुझे आश्चर्य होता है कि मनुष्य समाज में मैत्री, प्रेम और दया-दान के कृत्य भी होते हैं। कृपापूर्वक बताएं कि मनुष्य की वृत्तियों में कौन ज्यादा बुनियादी और बली है--प्रेम या घृणा, हिंसा या अहिंसा, सुख या दुख?

इस तरह सोचना कि कौन ज्यादा बलवान है, प्रथम से ही गलत प्रश्न उठा लेना है। और अगर गलत प्रश्न पूछ लिया, तो फिर उत्तर गलत होते चले जाते हैं। कहते हैं, अच्छे होटलों में बैरा यह नहीं पूछता कि आप चाय लेंगे या नहीं? बैरा पूछता है, आप चाय लेंगे या काफी? फर्क समझे आप? अगर बैरा पूछे, आप चाय लेंगे या नहीं, तो पचास मौके नहीं के हैं, पचास मौके चाय के हैं। बैरा पूछता है, आप चाय लेंगे या काफी? तो पचास मौके चाय के हैं, पचास मौके काफी के हैं। आपको छूटने का मौका नहीं दे रहा है। आपको नहीं कहने का अवसर नहीं दे रहा है।
इसलिए पश्चिम में तो विक्रेताओं को प्रशिक्षित किया जाता है कि ग्राहक से कैसी बात करनी, क्या कहना! क्योंकि तुम्हारे कहने पर उसका उत्तर निर्भर करेगा। अगर तुम खुद ही पचास परसेंट न कहने का अवसर दे रहे हो, तो तुम काहे के विक्रेता? तुमने आधी दुकान तो बरबाद कर दी। आधा काम-धंधा तो तुमने खराब ही कर लिया। यह तुमने गलत जगह से पूछ लिया। नहीं, ऐसा पूछना ठीक नहीं।
मनुष्य जाति बहुत से ऐसे प्रश्नों से पीड़ित रही है जो गलत जगह से पूछे गए। बस एक दफा पूछ लिया कि झंझट खड़ी हो जाती है। और हमारी आदतें सिखाने की, हमें सिखाया गया है हां और न की आदतें। अंधेरा और उजेला, रात और दिन, मौत और जिंदगी, हम दो हिस्सों में बांटकर देखते हैं।
जिंदगी दो हिस्से में बंटी नहीं है। जिंदगी तो सतरंगी है। इंद्रधनुष जैसी है। तुम पूछो, इंद्रधनुष सफेद कि काला? तो क्या कहें? इंद्रधनुष न काला, न सफेद। इंद्रधनुष सतरंगी है। तुम्हारे काले-सफेद में प्रश्न बनता ही नहीं।
यह तो ऐसा ही है जैसा कोई आदमी तुमसे पूछे, कि हां और न में जवाब दे दें--अपनी पत्नी को अब भी पीटते हैं या नहीं? अगर कहो हां, तो उसका मतलब हुआ अभी भी पीटते हैं। अगर कहो नहीं, तो उसका मतलब पहले पीटते थे। उसने छोड़ा ही नहीं अवसर। यह भी हो सकता है कि आप पीटते ही न हों।

प्रश्न पूछा जाता है कि अहिंसा या हिंसा, प्रेम या घृणा, क्रोध या करुणा? यह जीवन को बांटने का गलत ढंग है। जीवन सतरंगा है। हां और नहीं में बंटा हुआ नहीं है। हां और नहीं के बीच बहुत सी सीढ़ियां हैं। सीढ़ी दर सीढ़ी यहां बहुत मात्राएं हैं। यहां ऐसी भी जगह है, जहां न घृणा, न प्रेम-- उपेक्षा। उपेक्षा भी है। और यहां ऐसी भी घड़ियां हैं, जहां घृणा भी और प्रेम भी, दोनों साथ-साथ।
मनस्विद कहते हैं, तुम जिसको प्रेम करते हो उसी को साधारणतः घृणा भी करते हो। इसीलिए तो पति-पत्नियों के इतने झगड़े चलते हैं। जिससे प्रेम, उसी से घृणा। अब तुम उनसे कहो, इतना झगड़ा चलता है तो छोड़ ही क्यों नहीं देते? तुम बात ही गलत कर रहे हो, प्रेम भी है। छोड़ तो सकते ही नहीं। न छोड़ सकते हैं, न साथ रह सकते हैं। पति-पत्नी का संबंध ऐसा संबंध है कि बिना भी नहीं रह सकते और साथ भी नहीं रह सकते। पत्नी दूर चली जाती है तो याद आती है, पास चली आती है तो छुटकारे की कामना पैदा होने लगती है।
अगर तुम जीवन को सीधा-सीधा देखो, लेकिन अगर तुमने गणित से बांध लिया, तुमने कहा कि बात सीधी-साफ करो, अगर पत्नी से लगाव है, तो ठीक, साथ रहो। अगर लगाव नहीं, तो छोड़ दो, बात खतम करो।
काश, जिंदगी इतनी सीधी-सीधी होती! ऐसा अंधेरे-उजेले की तरह जिंदगी बंटी होती! बंटी नहीं है। जिंदगी बड़ी मिश्रित है।
तुम अगर किसी से पूछो, ठीक-ठीक कहो, प्रेम या घृणा? तो वह भी कहेगा, वह कहेगा, पक्का करना मुश्किल है। कभी घृणा भी होती है, कभी प्रेम भी होता है। सुबह घृणा होती है, शाम प्रेम हो जाता है। खोजने से पता चला है कि प्रेम और घृणा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बदलते रहते हैं।
इसलिए गलत प्रश्न से शुरुआत हम न करें। जीवन में जहां-जहां अति दिखायी पड़ती हो, वहां समझ लेना कि बीच में सेतु भी होगा। रात भी कहीं दिन से अलग है! मौत कहीं जिंदगी से अलग है! मौत कहीं जिंदगी के बाहर थोड़े ही घटती है, जिंदगी के भीतर ही घटती है। मौत आने के पहले मर थोड़े ही जाते हो, जिंदे ही रहते हो। जब मौत आती है, तुम्हें जिंदा ही पाती है। ऐसा थोड़े ही है कि पहले मर गए, फिर मौत आती है। मौत जिंदगी के भीतर है, बाहर नहीं है। और मौत जिंदगी के विपरीत भी नहीं है। क्योंकि तुम हटते हो, तो किसी के लिए जगह खाली करते हो, कोई और जिंदा हो पाता है। बूढ़ा मरता है, तो बच्चा पैदा हो पाता है। पुराने पत्ते गिर जाते हैं, तो नए पत्ते निकल आते हैं। पुराने पत्ते न गिरें, तो नए पत्ते न निकलेंगे।
तुम थोड़ा ऐसा सोचो, तुम्हारे बुजुर्ग अगर न मरते, तो तुम नहीं हो सकते थे। तुम हो, क्योंकि उनकी बड़ी कृपा थी, वे मर गए। अगर वे बने ही रहते और अड्डा जमाए बैठे रहते, तुम कहां होते? वैज्ञानिक कहते हैं, जहां तुम बैठे हो, वहां कम से कम दस आदमियों की लाशें दबी हैं। हर स्थान पर इतने आदमी हो चुके। तुम थोड़ा सोचो, कोई मरता न, तो जिंदगी मरने से बदतर हो जाती। सब बूढ़े, जरा सोचो तो! कौरव-पांडव से लेकर सब ऋषि-मुनि, सब राक्षस, सब बैठे हैं पृथ्वी पर, तुम भी आ गए! वे गला घोंट देते तुम्हारा। तुम्हारे लिए जगह कहां थी?
तुम हो सके हो, क्योंकि कोई नहीं हो गया है। किसी के नहीं होने से तुम्हारा होना जुड़ा है। अब अगर तुम बहुत जिद्द करोगे कि मैं सदा ही बना रहूं, तो तुम दूसरों के होने में बाधा बन जाओगे। जब तुम्हारा मौका आए तुम हट जाओ, ताकि दूसरे हो सकें। जीवन मौत के साथ-साथ चल रहा है। मौत जीवन का ही उपाय है। मौत जीवन का ही हिस्सा है। एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए कि विरोधी जुड़े हैं, फिर जीवन के संबंध में कई बातें साफ हो सकती हैं।
पूछा है कि "बुनियादी कौन है? बली कौन है?"
कोई भी नहीं। दोनों साथ-साथ हैं। और अगर छोड़ना हो, तो दोनों ही छोड़ने पड़ते हैं। इसीलिए तो भारत के मनीषियों ने कहा कि अगर तुम्हें मौत से बचना हो तो जीवन का त्याग कर देना होगा।
इसको तुम थोड़ा सोचो इस तरह से।
बुद्धपुरुषों ने कहा कि अगर तुम चाहते हो कि मौत से छुटकारा हो जाए,
तो जीवन से छुटकारा चाहिए। जब तक तुम जीवन को पकड़ोगे, मौत भी आती ही रहेगी।

तुम्हारे जीवन को पकड़ने में ही तुमने मौत को निमंत्रण दे दिया। जीवेषणा मौत को लाएगी। और जीवन और मृत्यु का चाक घूमता रहेगा। तुम जीवन को छोड़ो, मौत अपने से छूट जाती है। तुमने सम्मान चाहा तो अपमान आता ही रहेगा। तुम सम्मान छोड़ो, अपमान अपने से छूट जाता है। तुमने कुछ परिग्रह करना चाहा, तो तुम्हारे जीवन में कभी न कभी खोने का दुख झेलना ही बदा है। तुम खुद ही छोड़ दो, फिर तुमसे कुछ भी छूट नहीं सकता। पकड़ोगे तो छूटेगा। न पकड़ोगे तो छूटने की बात ही समाप्त हो गयी।
इसलिए पूरब की सारी मनीषा एक बात कहती है, अगर तुम चाहते हो कि दुख मिट जाए तो सुख का त्याग कर दो। इसमें विरोध का नियम काम कर रहा है। तुम चाहते हो, सुख तो बच जाए और दुख का त्याग हो जाए। तुम असंभव की कामना कर रहे हो। इसका यह अर्थ हुआ, अगर तुम जीवन से घृणा के रोग को छोड़ देना चाहते हो, तो जिसे तुम प्रेम कहते हो उसे भी छोड़ दो। तब तुम्हारे जीवन में एक निष्कलुषता आएगी, जिसमें न तो प्रेम होगा--जिसे तुम प्रेम कहते हो, वह नहीं होगा--जिसे तुम घृणा कहते हो, वह भी नहीं होगी। कुछ नयी ही गंध होगी, कुछ नयी ही बात होगी। तुम्हारी भाषा में कहीं भी न आ सके, ऐसी कुछ बात होगी। अनिर्वचनीय कुछ होगा। अव्याख्य कुछ होगा। कुछ नए शब्द खोजने पड़ेंगे। इसलिए हम बुद्ध को प्रेमी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रेम तो बिना घृणा
के हो नहीं सकता। इसलिए हमने उनको करुणावान कहा। जरा सा शब्द अलग किया। लेकिन करुणावान भी कहना क्या ठीक है? क्योंकि करुणा भी क्रोध के बिना नहीं हो सकती।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि बुद्ध के लिए तुम्हारी भाषा का कोई भी शब्द लागू नहीं हो सकता। क्योंकि जो भी शब्द तुम उपयोग करोगे, उससे विपरीत को भी स्वीकार करना पड़ेगा। तुम बुद्ध को त्यागी नहीं कह सकते, क्योंकि त्यागी वे तभी हो सकते हैं जब भोगी हों। तुम उनको ज्ञानी भी नहीं कह सकते, क्योंकि ज्ञानी वे तभी हो सकते हैं जब अज्ञानी भी हों। तुम उन्हें संन्यासी भी नहीं कह सकते, क्योंकि संन्यासी वे तभी हो सकते हैं जब संसारी भी हों।
फिर क्या कहो? इसलिए शास्त्र कहते हैं, उस संबंध में चुप ही रहा जा सकता है। कुछ कहा नहीं जा सकता। उस संबंध में मौन ही वक्तव्य है।
तो पहली तो यह बात कि दोनों साथ-साथ हैं, बराबर वजन के हैं। न तो घृणा ज्यादा है, न प्रेम ज्यादा है। और दूसरी बात, जीवन के प्रतिपल में स्थिति बदलती रहती है। जब तुम जवान होते हो, तब मोह ज्यादा लगता है। लगता है! वह जवानी का भ्रम है। प्रेम ज्यादा लगता है, वह जवानी का भ्रम है। भोग ज्यादा लगता है, वह जवानी का भ्रम है। फिर तुम्हीं बूढ़े हो जाओगे और त्याग की भाषा बोलने लगोगे। वह बुढ़ापे का भ्रम है।
इसलिए बूढ़े और जवान में बात बड़ी मुश्किल है, वे अलग-अलग भाषा बोलते हैं। बूढ़ा कहता है, यह सब सपना है जो तुम बातें कर रहे हो। जवान कहता है, ये सब पराजय की बातें तुम्हारा हारा-थकापन है। अब तुम बूढ़े हो गए, अब मौत करीब आ रही है। तुम मौत से घबड़ गए हो।
बूढ़ा आस्तिक हो जाता है। ईश्वर को मानने लगता है। जवानी नास्तिक है। जवानी अपने सिवा किसी को भी मानना नहीं चाहती। जवान कहता है, बूढ़ा मौत से डर गया है इसलिए ईश्वर को मानने लगा है, भयातुर है। यह भगवान सब भय से पैदा हुए हैं। और ब.ूढा कहता है, यह जवान अभी अंधा है। जवानी अंधी है। और अंधे को सब जगह हरा-हरा सूझता है। यह सब उतर जाएगा नशा। यह सब नशा है। तब अकल आएगी। मगर मैं तुमसे कहता हूं, न तो जवान को अकल है, न बूढ़े को। अकल का इससे कोई संबंध ही नहीं जवानी और बुढ़ापे से। जब तक तुम अपने भीतर ऐसी जगह न खोज लोगे जो न जवान है न ब.ूढी, तब तक तुम्हारे जीवन में कोई बुद्धि की किरण नहीं हो सकती। जवान जवानी से परेशान है और जवानी की भाषा बोल रहा है। बूढ़ा बुढ़ापे से परेशान है, बुढ़ापे की भाषा बोल रहा है। हालांकि बूढ़े को लगता है, मैं ज्यादा समझदार हूं। जवान को भी यही लगता है कि मैं ज्यादा समझदार हूं। इसीलिए तो पीढ़ियों के बीच एक दरार पड़ जाती है। बाप बेटे को नहीं समझ पाता, बेटा बाप को नहीं समझ पाता। बाप बिल्कुल भूल चुका कि वह भी कभी बेटा था और जवान था और इसी तरह की मूढ़ता की बातें उसने भी की थीं। वह भूल ही जाता

है। मूढ़ता की बातें लोग याद ही नहीं रखते। और जवान भी यह भूल जाता है कि यह बाप भी कभी जवान था, फिर बूढ़ा हुआ है। मैं आज जवान हूं, कल मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा। इसकी बात को ऐसे ही न ठुकराऊं। यह आज नहीं कल मेरे जीवन में भी आने ही वाली है। इसका ऐसा तिरस्कार न करूं। लेकिन नहीं, जवान भी अंधे, बूढ़े भी अंधे।
आंख तो उसके पास होती है, जो अपने भीतर उस धारा को खोज लेता है जो समय
के बाहर है। न जो जवान है, न जो ब.ूढी है।
कल जिस गुलाब की डाली पर बैठी बुलबुल
गाती थी गीत जवानी का पंचम स्वर में
हूं देख रहा अब उसकी आंखों में आंसू
दब गया गीत उसका पतझर की हर-हर में
जिस पाटल की पलकों की छाया के नीचे
थी लगी हाट मदिरा की, मधुपों का मेला
हैं आज पखुड़ियां बिखरी उसकी धरती पर
है खड़ा हुआ छाती पर मिट्टी का ढेला
यह तो रोज ही होता रहा है। अभी क्षणभर पहले जो फूल आकाश में इतराता था, क्षणभर बाद मिट्टी में दबा है। अभी क्षणभर पहले जवानी गीत गाती थी, क्षणभर बाद बुढ़ापा रो रहा है।
मन तो रोज बदलता चला जाता है। कभी एक स्वर महत्वपूर्ण मालूम होता है, कभी दूसरा स्वर महत्वपूर्ण मालूम होता है। मन के साथ तो यह धोखा, यह लुका- छिपी चलती ही रहती है। मन का नियम यह है कि मन पूर्ण को नहीं देख सकता। इसे तुम समझने की कोशिश करो।
मन केवल आधे को देख सकता है। जैसे मैं तुम्हारे हाथ में एक सिक्का दे दूं। सिक्का छोटा सा है। क्या तुम दोनों पहलुओं को एक साथ देख सकोगे? जब तुम सिक्के का एक पहलू देखोगे, दूसरा दब जाएगा। जब दूसरा देखोगे, पहला दब जाएगा। आज तक किसी मनुष्य ने पूरा सिक्का नहीं देखा है। तुम सोचते हो कि तुमने देखा, क्योंकि तुम दोनों अलग-अलग देखे पहलुओं को कल्पना में जोड़ लेते हो। अन्यथा तुमने पूरा सिक्का नहीं देखा है। अगर तुम बहुत तर्कयुक्त होओ, तो तुम दूसरे सिक्के के संबंध में, दूसरे पहलू के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा विचारक विट्गिंस्टीन ट्रेन से यात्रा कर रहा था। बड़ा तर्कयुक्त मनुष्य था। पास ही एक मित्र बैठा था, खिड़की से उन्होंने झांककर देखा, सर्दी की सुबह, धूप निकली है, और एक खेत में बहुत सी भेड़ें खड़ी हैं। उनके बाल अभी-अभी काटे गए हैं। वे सर्दी में थरथरा रही हैं। धूप में एक-दूसरे से सिकुड़ी खड़ी हैं।
मित्र ने विट्गिंस्टीन को कहा, देखते हैं, मालूम होता है भेड़ों के बाल अभी-अभी काटे गए हैं। ठंड पड़ रही है और भेड़ें ठंड में सिकुड़ रही हैं। विट्गिंस्टीन ने गौर से देखा और कहा, जहां तक इस तरफ दिखायी पड़ने वाले हिस्से का सवाल है, जरूर बाल काटे गए हैं, उस तरफ की मैं नहीं जानता। भेड़ को पूरा तो कोई देख नहीं रहा, उस तरफ का क्या पता? इस तरफ से भेड़ें ठिठुर रही हैं ठंड में, यह पक्का है। उस तरफ की मैं कुछ भी नहीं कह सकता।
मन एक चीज के एक ही पहलू को देख पाता है एक बार में। जवानी में एक पहलू देखता है, बुढ़ापे तक जब तक सिक्का उलटता है, दूसरा पहलू देख पाता है। तो जवानी में कहता है, यह महत्वपूर्ण है। बुढ़ापे में कहने लगता है, कुछ और महत्वपूर्ण है। जवानी में राग-रंग महत्वपूर्ण था, बुढ़ापे में त्याग की भाषा महत्वपूर्ण हो जाती है। जवानी में मदिरालय जाता था, बुढ़ापे में मस्जिद जाने लगता है। जवानी में रस, राग, वैभव, विलास; बुढ़ापे में संन्यास की बातें, त्याग, विराग--सारी भाषा बदल जाती है। पर होता कुल इतना ही है कि सिक्के का दूसरा पहलू सामने आता है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि सिक्के के किसी भी पहलू को जरूरत से ज्यादा मूल्य मत दे देना। दूसरा भी उतना ही मूल्यवान है। दोनों बराबर मूल्य के हैं। और अगर एक साथ तुमने दोनों का बराबर मूल्य आंक लिया, दोनों तुल गए तराजू पर बराबर, तो तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे।

उस व्यक्ति को ही मैं सम्यक-ज्ञान को उपलब्ध कहता हूं, जिसने मन के सारे विरोधों को साथ रखकर देख लिया। और जिसने चुनाव करना बंद कर दिया। और जिसने कहा, यह पूरा मन ही लुका-छिपी है। एक सामने आता है, दूसरा छिप जाता है। फिर हम धोखे में पड़ जाते हैं।
जो धोखे में नहीं पड़ता, जो दोनों को देखकर, दोनों के विरोध को देखकर, दोनों का अनिवार्य सत्संग देखकर दोनों से छुटकारा पा लेता है; द्वंद्व से जो मुक्त हो जाता है; द्वैत से, दुई से जो मुक्त हो जाता है, वही परम शाश्वतता में ठहरता है। वही स्वभाव को उपलब्ध होता है।

आखिरी प्रश्नः भगवान होने का आनंद अगर लेना हो, तो इसी क्षण भगवान होकर लो; क्या यही आपकी देशना है?

कल भ्रांति है। आज ही सत्य है। आने वाला क्षण भी आएगा या नहीं, कोई भी
कह नहीं सकता। जो आ गया है, बस वही आ गया है।
तो कल पर छोड़ कैसे सकते हो? कल है कहां?
कल रात यूरोप से एक युवक आया और संन्यस्त हुआ। मैंने उससे पूछा, कब तक रुकोगे? उसने कहा, कल तक रुका हूं। तो मैंने कहा, फिर तुम कभी जा न सकोगे, क्योंकि कल तो कभी आता नहीं। वह थोड़ा घबड़ाया। अगर कल तक रुके हो, तो सदा के लिए रुकना पड़ेगा। क्योंकि कल जब आएगा तो आज हो जाता है। आज होकर ही कुछ आता है।
समय का स्वभाव आज है, अभी है। कल तो मन की कल्पना है। कल तो मन का फैलाव है। कल तो आज से बचने का उपाय है।
तो अगर तुम कहते हो कि कल लेंगे भगवान होने का आनंद, तो तुम कभी न ले पाओगे। भगवान तो अभी है, यहीं है। सब साज-सामान तैयार है। तुम गाना कल पर क्यों छोड़ रहे हो? वीणा सामने रखी है, अंगुलियां वीणा पर पड़ी हैं, तुम तार छेड़ना कल पर क्यों छोड़ रहे हो? क्या तुम्हें पक्का है? यह हो सकता है वीणा कल भी हो, तुम न हो।
कल पर छोड़ने की आदत संसार में खतरनाक से खतरनाक आदत है। आज ही जी लो। लेकिन तुम्हें सदा यही सिखाया गया है, कल पर छोड़ो। क्योंकि तुम्हें यह सिखाया गया है, हर चीज की तैयारी करनी होगी। तैयारी के लिए कल की जरूरत है। आज कैसे भोगोगे? सितार बजानी है? तो पहले सीखनी भी तो पड़ेगी। सीखने के लिए कल तक ठहरना पड़ेगा। गीत गाना है? तो कंठ को साधना भी तो पड़ेगा। आवाज को व्यवस्था तो देनी होगी। तो कल की जरूरत पड़ेगी।
मगर मैं तुमसे कहता हूं, भगवान को भोगने के लिए कुछ भी तैयारी की जरूरत नहीं है। जो बिना तैयारी उपलब्ध है, वही भगवान है। जो तैयारी से मिलता है, उसका नाम ही संसार है। तुम्हें बड़ी उलटी लगेगी मेरी बात।
मैं तुमसे फिर कहूं, जो साधना से मिलता है, उसका नाम संसार है। जो मिला
ही हुआ है, उसका नाम भगवान है। संसार के लिए कल की जरूरत है, समय की जरूरत है, भगवान के लिए कोई जरूरत नहीं। यह गीत कुछ ऐसा है कि कंठ को साधना नहीं, बस गाना है। यह स्वर कुछ ऐसा है कि कोई प्रशिक्षण नहीं लेना है। ऐसा ही है जैसे कि मोर नाचता है--बिना किसी प्रशिक्षण के, बिना किसी नृत्यशाला में गए। पक्षी गीत गा रहे हैं--बिना कंठ को साधे। तुम जैसे हो भगवान वैसे ही प्रगट होने को तैयार है। तुम जैसे हो वैसा ही भगवान ने तुम्हें स्वीकारा है। कल मैं एक गीत पढ़ता था, मुझे प्रीतिकर लगा--
यह बाविकार मुकफ्फिर, यह फलसफी शायर
बहुत बुलंद फिजाओं में फड़फड़ाते हैं
चमन के फूल, हवा का खिराम, गुल की चटक
हर एक जिंदा मसर्रत से खौफ खाते हैं
कभी खुदा न करे मुस्कुराएं भी ये बुजुर्ग
तो किस कबींद मतानत से मुस्कुराते हैं रवाबे-जीस्त के आतिश-मिजाज तारों पर गिलाफ बर्फजदा फिक्र के चढ़ाते हैं
है मर्गे-फिक्र वह मुर्दा बुलंद परवाजी

कि जिससे जीस्त के आसाब ऐंठ जाते हैं
दार्शनिक, पंडित, पुरोहित, विचारक, शास्त्रज्ञ बड़ी ऊंची हवाओं की बातें करते हैं, बड़े ऊंचे आसमानों की बातें करते हैं। लेकिन वे बातें हैं। उन आसमानों में कभी उड़ते नहीं। जिंदगी उनकी जमीन पर सरकती हुई पाओगे। बातें आकाशों की। वे सिर्फ सपने हैं। और--
चमन के फूल, हवा का खिराम, गुल की चटक
हर एक जिंदा मसर्रत से खौफ खाते हैं
और तुम सदा पाओगे कि जहां भी कोई जिंदा सुख हो, उससे वे घबड़ाते हैं। मरे-मराए सुखों की बातें करते हैं। या, कभी होने वाले सुखों की बातें करते हैं। किन्हीं स्वर्गों की, जो होंगे। किन्हीं स्वर्गों की, जो कभी थे। चमन के फूल, हवा का खिराम, गुल की चटक
हर एक जिंदा मसर्रत से खौफ खाते हैं
और जहां भी जिंदगी की खुशी दिखायी पड़ती है, कहीं कोई जिंदा सुख मालूम पड़ता है, उससे घबड़ाते हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, जो जिंदा सुख से घबड़ाए वह भगवान का दुश्मन है। क्योंकि फूल उसी के हैं। हवा की लहरें उसी की हैं। पक्षियों के गीत उसी के हैं। यह जो नाच चल रहा है चारों तरफ, यह जो जीवन का उत्सव चल रहा है चारों तरफ, यह उसी का है। इससे जो घबड़ाया, इससे जो शरमाया, इससे जो बचा, वह आदमी मुर्दा है। उसका भगवान भी मुर्दा होगा। जिंदा भगवान तो यहां है। मुर्दा भगवान कहीं और, सात आसमानों के पार।
कभी खुदा न करे मुस्कुराएं भी ये बुजुर्ग
तो किस कबींद मतानत से मुस्कुराते हैं
और ऐसे लोग हंसते तो हैं ही नहीं। और भगवान न करे कि कभी वे हंसें भी! क्योंकि वे हंसते हैं तो उनकी हंसी में भी ऐसी घबड़ाहट, ऐसी गंभीरता, ऐसी निंदा! उनकी हंसी में भी हंसी नहीं होती, उनकी हंसी में भी लाश की सड़ांध होती है।
रवाबे-जीस्त के आतिश-मिजाज तारों पर
ये पंक्तियां बड़ी प्यारी हैं। जिंदगी के स्वर बड़े गर्म-गर्म हैं।
जिंदा हैं तो गर्म हैं।
रवाबे-जीस्त के आतिश-मिजाज तारों पर
और यह जिंदगी का बाजा है, जिंदगी का साज है। इसके गर्म-गर्म तार हैं। तैयार हैं कि छेड़ो अभी। निमंत्रण है, बुलावा है कि नाचो अभी, गाओ अभी।
रवाबे-जीस्त के आतिश-मिजाज तारों पर
गिलाफ बर्फजदा फिक्र के चढ़ाते हैं
और ये जो पंडित हैं, पुरोहित हैं, मौलवी हैं, ये इन गर्म-गर्म जिंदगी
की वीणा के तारों पर फिक्र और चिंता की बर्फ चढ़ाते हैं। ठंडा कर देते हैं। मार डालते हैं।
है मर्गे-फिक्र वह मुर्दा बुलंद परवाजी
और ये बातचीतें और ये विचारों की उड़ानें सब मरी हुई हैं।
कि जिससे जीस्त के आसाब ऐंठ जाते हैं
जिससे जिंदगी ऐंठ जाती है। जीवन के अंग ऐंठ जाते हैं। ये सब बातें हैं। जिंदगी के विपरीत हैं। मौत की पक्षपाती हैं।
तुमने जिन्हें अब तक धर्मों की तरह जाना है--बुद्धों को छोड़ दो, महावीरों, कृष्णों को छोड़ दो, उनके धर्म से तुम्हारी कोई पहचान नहीं, उनका तो धर्म यही है कि भगवान अभी हो जाओ; उनका तो सभी का संदेश यही है कि वर्तमान के अतिरिक्त और कोई समय नहीं है, उन्होंने तो सभी ने कहा है कि इसी क्षण को तुम शाश्वत बना लो, इसी में डूब जाओ--लेकिन उनके नाम पर पंडितों- पुरोहितों ने जो संप्रदाय खड़े किए हैं, वे सब तुम्हें कल की तैयारी कहते हैं। वे कहते हैं, आज छोड़ो, कल की तैयारी करो। उनकी वजह से ही तुम उदास हो, उनकी वजह से ही तुम्हारी जिंदगी के अंग ऐंठ गए हैं। उनकी वजह से तुम कुछ भी उत्सव नहीं मना पाते।

गुरजिएफ कहता था कि सभी धर्म भगवान के खिलाफ हैं। बड़ा कठिन वक्तव्य है। क्योंकि हमें तो लगता है, धर्म तो भगवान के पक्षपाती हैं। गुरजिएफ कहता है, सभी धर्म भगवान के खिलाफ हैं। मैं भी कहता हूं।
धार्मिक व्यक्ति भगवान के खिलाफ नहीं होता। धर्म सभी भगवान के खिलाफ हैं। धार्मिक व्यक्ति तो कभी-कभार होता है। जो धर्मों की जमातें हैं, वे परमात्मा के विपरीत हैं। तुम्हारे महात्मा सभी परमात्मा के विपरीत हैं। महात्मा तुम्हें जिंदगी को छोड़ना सिखाते हैं, और परमात्मा ने तुम्हें जिंदगी दी है। और महात्मा कहते हैं छोड़ो, और परमात्मा कहता है भोगो, जीवन परम भोग है।
अगर तुमने मेरी बातों को ठीक से समझा, तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम अपने परमात्मा को अपने जीवन की ऊंचाई बनाओ। तुम अपने परमात्मा को अपने जीवन के विपरीत मत रखो; अन्यथा तुम अड़चन में पड़ोगे। न तुम जिंदगी के हो पाओगे, न परमात्मा के हो पाओगे। तुम दो नावों में सवार हो जाओगे, जो विपरीत जा रही हैं। तुम परमात्मा को जीवन का स्वर समझो, और तुम जीवन के प्रतिपल को प्रार्थना बनाओ। तुम जीवन को इस ढंग से जीओ कि वह धार्मिक हो जाए। धर्म के लिए जीवन में अलग से खंड मत खोजो। धर्म को पूरे जीवन पर फैल जाने दो।
लेकिन दुखी लोग हैं, जो दुख को पकड़ते हैं। वे जीवन में सब तरह के दुख
का आयोजन करते हैं। पहले धन के नाम पर दुखी होते हैं, पद के नाम पर दुखी होते हैं, फिर किसी तरह इनसे छुटकारा होता है तो भगवान के नाम पर दुखी होते हैं। लेकिन दुख की आदत उनकी छूटती नहीं।
तुझको मस्जिद है मुझको मयखाना
वाइजा, अपनी-अपनी किस्मत है
कुछ हैं जो जिंदगी को मधुशाला बना लेते हैं। जिनकी जिंदगी एक उत्सव होती है, महोत्सव। एक अहर्निश आनंद।
और कुछ हैं जो जिंदगी को मस्जिद बना लेते हैं, चर्च। उदास, मुर्दा। मरघट का हिस्सा मालूम पड़ता है, जीवन का नहीं। अपनी-अपनी किस्मत!
वाइजा, अपनी-अपनी किस्मत है
हे धर्मगुरु, अपनी-अपनी किस्मत है।
तुम धर्मगुरु बनने की चेष्टा में मत पड़ना। तुम धार्मिक होने की फिकर छोड़ो। तुम परमात्मा के उत्सव को अंगीकार करो। जो जीवन में मिला है, उसे इतनी गहराई से भोगो कि उसकी भोग की गहराई में तुम्हें सब जगह से परमात्मा के दर्शन होने लगें। भोजन भी करो तो ऐसे अहोभाव से कि उपनिषद के वचन सत्य हो जाएं--अन्नं ब्रह्म। सौंदर्य को भी देखो तो इतने अहोभाव से कि सभी सौंदर्य उसी के सौंदर्य की झलक लाने लगें। उठो तो उसमें, बैठो तो उसमें, चलो तो उसमें। जागो तो उसमें, सोओ तो उसमें। परमात्मा ही तुम्हारा लिबास हो जाए। वह तुम्हें घेरे रहे। तो ही मैं कहता हूं, तुम धार्मिक हो पाओगे। धार्मिक होना चौबीस घंटे का काम है, इसमें छुट्टी का उपाय नहीं। इसमें रविवार का दिन भी नहीं आता।
ईसाइयों की कहानी है कि परमात्मा ने छह दिन संसार बनाया, सातवें दिन विश्राम किया। अब पश्चिम में यूनियनवादी लोग हैं, वे इसके खिलाफ हैं, वे कहते हैं, पांच दिन होना चाहिए काम। छह दिन? मुझे लगता है कि यूनियनवादियों ने ही उसको राजी किया होगा पहले भी कि तू छह ही दिन काम कर, सातवें दिन छुट्टी रख, नहीं तो मामला सब खराब हो जाएगा।
जहां तक मेरे देखे, परमात्मा सातों दिन काम कर रहा है--अहर्निश। छुट्टी तो कोई तब चाहता है जब काम दुख होता है। जब काम ही आनंद हो, तो कोई छुट्टी चाहता है? किसी ने कभी प्रेम से छुट्टी चाही है? काम से लोग छुट्टी चाहते हैं, क्योंकि काम उनका प्रेम नहीं।
तुम परमात्मा से छुट्टी न चाहो। तब तो एक ही उपाय है कि तुम जो करो, वह परमात्मा को ही निवेदित हो, समर्पित हो। तुम जो करो, उसमें ही प्रार्थना की गंध समाविष्ट होने लगे। प्रार्थना की धूप तुम्हारे जीवन को चारों तरफ से घेर ले, सुवासित कर दे। और अगर तुमने किसी भविष्य के परमात्मा के सामने प्रार्थना की तो वह झूठी रहेगी, क्योंकि परमात्मा सदा वर्तमान का है।

भविष्य के परमात्मा तुम्हारी ईजादें हैं। धोखे हैं। और अगर तुमने किसी भविष्य के परमात्मा के सामने प्रार्थना की तो उस प्रार्थना में मस्ती न होगी, मस्ती तो केवल अभी हो सकती है।
तेरा ईमान बेहजूर, तेरी नमाज बेसरूर
ऐसी नमाज से गुजर, ऐसे ईमान से गुजर
न तो तुम्हारी प्रार्थना में मस्ती है, न तुम्हारी प्रार्थना में परमात्मा है।
ऐसी नमाज से गुजर, ऐसे ईमान से गुजर
तेरा ईमान बेहजूर, तेरी नमाज बेसरूर
प्रार्थना को मस्ती बनाओ। अच्छा हो मैं ऐसा कहूं, मस्ती को प्रार्थना बनाओ। नाचो, गाओ। इसी क्षण यह हो सकता है। परमात्मा कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। और कब तक प्रतीक्षा करवाओगे?
निश्चित ही, यही मेरी देशना है कि अगर भगवान को जीना हो, तो अभी। न जीना हो तो साफ कहो कि हम जीना ही नहीं चाहते, कल पर क्यों टालते हो? कम से कम ईमानदार तो रहो। इतना ही कहो कि हमें लेना-देना नहीं। हमें प्रसन्न नहीं होना, हमें आनंदित नहीं होना। हमें दुखी रहना है। होश से दुखी रहो, कम से कम सच्चे तो रहोगे। और जो होश से दुखी है, ज्यादा दिन दुखी नहीं रह सकता। आज नहीं कल पहचानेगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं? एक महा अवसर मिला था, गंवाए दे रहा हूं। जहां कमल के फूल ही फूल खिल सकते थे, वहां कांटे ही कांटे बनाए ले रहा हूं।
नहीं, तुम्हारी तरकीब यह है कि तुम कहते हो, होना तो है प्रसन्न, लेकिन कल। कल के बहाने आज तुम दुखी हो लोगे। तुम कहोगे, आज तो कैसे खुश हो सकते हैं, कल होंगे। आज तो दुख में हैं, सो बिता लेंगे किसी तरह, गुजार लेंगे किसी तरह। लेकिन आज के ही गुजरने से तो कल निकलेगा। अगर आज दुख में गया, तो कल सुखी नहीं हो सकता। इसी दुख से तो आएगा। इसी दुख पर तो बुनियाद पड़ेगी। इसी दुख पर तो कल का मंदिर खड़ा होगा। यही ईंटें तो कल के मंदिर को बनाएंगी, जिनको तुम आज का क्षण कहकर गंवा रहे हो।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, आज ही मंदिर बना लो। मंदिर बना ही है, तुम
आज ही प्रार्थना कर लो। कल को कल पर छोड़ो।
जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः कल कल की चिंता स्वयं कर लेगा। तुम आज
जी लो।
धार्मिक व्यक्ति मैं उसी को कहता हूं, जिसने वर्तमान में जीने को ही एकमात्र जीवन बना लिया। फिर उसे परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता।
सूफी फकीर अलहिल्लाज मंसूर ने कहा है कि इसमें भी क्या लुत्फ कि हम परमात्मा को खोजने जाएं। ऐसे भी ढंग हैं कि वह खोजता हुआ आता है।
मैं तुम्हें ऐसा ही ढंग दे रहा हूं कि वह तुम्हें खोजता हुआ आए। यह भी कोई मजे की बात है कि तुम खोजते फिरो उसे! खोजोगे भी कहां, उसका कोई पता ठिकाना भी तो नहीं। तुम अगर उत्सव में जीओ, तो वह तुम्हें खोज लेगा। वह उत्सव का संगी-साथी है। वह उत्सव को प्रेम करता है। इसीलिए तो इतने फूल हैं, इतने गीत हैं, इतने चांद-तारे हैं। वह उत्सव का दीवाना है। तुमने उत्सव मनाया कि तुमने पाती लिख दी। तुमने उत्सव मनाया कि तुम्हारी खबर पहुंच गयी। तुम नाचो, नाच की ही गहराई में तुम अचानक पाओगे उसके हाथ तुम्हारे हाथ में आ गए, वह तुम्हारे साथ नाच रहा है। पर नाच में ही पाया जा सकता है। ऐसी उदास, मुर्दा शकलें बनाकर लोग बैठे हैं। परमात्मा भी झिझकता है।
उसके साथ होने का एक ही ढंग है कि तुम नाचो। नाच की ही एक गति, एक भाव-भंगिमा है, जहां तुम तिरोहित हो जाते हो और वह नाचने लगता है। नाच की ही एक प्रक्रिया है। जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप हो जाता है, ऐसी ही सौ डिग्री नृत्य की एक प्रक्रिया है, जहां तुम तिरोहित हो जाते हो। अचानक तुम पाते हो कहां गया मैं, और यह कौन नाचने लगा! यह कौन आ गया!
निश्चित, यही मेरी देशना है। परमात्मा को जीना है, तो अभी। और कोई उपाय नहीं।

तैयारी की जरूरत नहीं है, साज तैयार है। वीणा उत्सुक है कि तुम छेड़ो तार। गीत प्रतीक्षा कर रहा है कि गाओ। परमात्मा कब से बैठा राह देख रहा है कि तुम नाचो, तो मैं नाचूं। बहुत देर ऐसे ही हो चुकी, अब और मत प्रतीक्षा करो और कराओ। तुम जरा करके भी तो देखो मैं क्या कह रहा हूं।
तुम्हारी आदतों के विपरीत है, मैं जानता हूं, लेकिन आदतें तो तोड़नी हैं। आदत तो तुम्हारी दुखी और उदास होने की है। आदत लेकिन तोड़नी है। तोड़े ही टूटेगी। टूटते-टूटते ही टूटेगी। और अगर बात समझ में आ जाए तो इसी क्षण छलांग लगाकर तुम आदत के बाहर हो सकते हो।
थोड़ा मौका दो, इस दृष्टि को भी थोड़ा मौका दो। इस क्षण से ऐसे जीओ जैसे
कि परमात्मा साथ है, भीतर है। एक ढंग से तुम जीकर देख लिए हो, कुछ पाया नहीं। इस ढंग को भी एक मौका दो, अवसर दो, ऐसे भी जीकर देखो। मैंने पाया है, और मैं तुमसे कहता हूं, तुम भी पा सकते हो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
पचासवां प्रवचन

अशांति की समझ ही शांति

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्निदड्ढो" व तप्पति।। 120।।

न नग्गचरिया न जटा न पंका
नानासका थण्डिलसायिका वा।
रज्जोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकंखं।। 121।।

अलंकतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू।। 122।।

हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव।। 123।।

असो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ।
सद्धाय सीलेन च वीरियेन च
समाधिना धम्मविनिच्छयेन च।
सम्पन्नविरजाचरणा पतिस्सता
पहस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं।। 124।।

पहला सूत्र--

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति।

"पापकर्म करते हुए वह मूढ़जन उसे नहीं बूझता है। लेकिन पीछे वह दुर्बुद्धिजन अपने ही कर्मों के कारण आग से जले हुए की भांति अनुताप करता है।"
महत्वपूर्ण है। एक-एक शब्द समझने जैसा है। सरल सा दिखता है, सरल नहीं है। बुद्धों के वचन सदा ही सरल दिखते हैं। उनकी भीतर की सरलता से आते हैं, इसलिए वचनों में कोई जटिलता नहीं होती। लेकिन जब तुम उन्हें जीवन में उतारने चलोगे, तब अड़चन मालूम होगी। बुद्ध वचनों को समझना सरल, जीना कठिन होता है। जीने चलोगे तब पता चलेगा कि उनके सरल से दिखायी पड़ने वाले वचन प्रतिपग हजार कठिनाइयों से गुजरते हैं। कठिनाइयां तुमसे आती हैं। जटिलता तुम्हारी है। मार्ग के पत्थर तुम पैदा करते हो। लेकिन तुम भी क्या करोगे-- तुम तुम हो।
अगर तुम भी जागे हुए होओ तो ऐसे ही बुद्ध वचनों के आकाश में उड़ो जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं। पक्षियों के लिए आकाश में उड़ना कैसा सरल है! सीखने की भी जरूरत नहीं पड़ती, स्वभाव से ही लेकर आते हैं। लेकिन आदमी अगर आकाश में उड़ना चाहे तो जटिलता आती है--आदमी के कारण आती है।
ये सारे वचन बड़े सरल हैं। कभी-कभी तो तुम्हें ऐसा भी लगेगा--किसी ने पूछा भी था पीछे--कि जब आप वचन पढ़ते हैं तो बहुत सरल लगता है; जब आप समझाते हैं तो और कठिन हो जाता है। ऐसा होता होगा। वचन तो सरल लगता है, लेकिन जब मैं समझाता हूं तब मैं तुम्हारी कठिनाइयों को उभारकर सामने लाता हूं। वचन से तुम्हारा तो कोई मेल न हो पाएगा; तुम तो मरोगे तो ही वचन से मिलन होगा। तुम तो मिटोगे। तुम्हारी यह चट्टान तो पिघले, बहे, तो ही एस धम्मो की तुम्हें प्रतीति होगी।

तो जब मैं बोलता हूं तो बुद्ध के वचन पर ही ध्यान नहीं है, क्योंकि वह ध्यान अधूरा होगा--तुम पर भी ध्यान है। बुद्ध के वचन से भी ज्यादा तुम पर ध्यान है।
मैंने एक सूफी कहानी सुनी है। एक फकीर के पास एक युवक गया और उस युवक
ने कहा कि मैं परमात्मा को खोजना चाहता हूं। बहुत अंधेरे में जी रहा हूं, अब मेरा दीया जला दो। उस फकीर ने कहा कि देख भीतर का दीया तो जरा समय लेगा, सांझ हो गयी है, सूरज ढल गया, वह दीवाल के दीवे में रखा हुआ दीया है, आले से उस दीए को उठा ला और पहले उसको जला।
वह युवक गया। उसने लाख कोशिश की, दीया जले ही न। उसने कहा, यह भी अजीब
सा दीया है! इसमें ऐसा लगता है तेल में पानी मिला है, बाती पानी पी गयी है, तो धुआं ही धुआं होता है। कभी-कभी थोड़ी चिनगारी भी उठती है, मगर लौ नहीं पकड़ती। तो उस सूफी ने कहा, तो तू दीए से पानी को अलग कर। तेल को छांट। बाती में पानी पी गया है, निचोड़। बाती को सुखा, फिर जला। उसने कहा, तब तो यह पूरी रात बीत जाएगी इसी गोरखधंधे में।
उस सूफी ने कहा, छोड़! फिर इधर आ। तेरे भीतर का दीया भी ऐसी ही उलझन में है। दीया जलाना तो बड़ा सरल है, लेकिन तेल में पानी मिला है। बाती में जल चढ़ गया है। अब सिर्फ माचिस जला-जलाकर माचिस को खराब करने से कुछ न होगा। सारी स्थिति बदलनी होगी। दीया तो जल सकता है। लेकिन तू अभी चाहे--तो तू बाधा है। जब मैं बुद्ध के वचनों पर बोलता हूं, तो बुद्ध के वचन पर भी ध्यान है, तुम्हारे दीए पर भी ध्यान है। क्योंकि अंततः तो सिर्फ प्रकाश को जलाने की बातों से कुछ न होगा। यही फर्क है।
धम्मपद पर बहुत टीकाएं लिखी गयी हैं। जो मैं कह रहा हूं वह बिल्कुल भिन्न है। क्योंकि धम्मपद पर लिखी टीकाओं ने सिर्फ बुद्ध के वचनों को साफ कर दिया है। वे वैसे ही साफ हैं; उनमें कुछ साफ करने को नहीं। उलझन आदमी में है। और मेरे लिए तुम ज्यादा महत्वपूर्ण हो, क्योंकि अंततः तुम्हारे ही दीए की सफाई प्रकाश को जलने में आधार बनेगी। दीया जलाना सदा से आसान रहा है। क्या अड़चन है! मगर अड़चन तुम्हारे भीतर है।
इसलिए जब मैं बुद्ध के वचनों को समझाने चलता हूं तो मैं तुम्हें बीच-बीच में लेता चलता हूं। क्योंकि जब तुम चलोगे उन वचनों पर, तब धम्मपद काम न आएगा, तुम बीच-बीच में आओगे। तुम्हें रोज-रोज अपने को रास्ते से हटाना पड़ेगा। न गीता काम आती, न कुरान काम आता। हां, उनसे तुम प्रेरणा ले लो। उनसे तुम सुबह की खबर ले लो। उनसे तुम दीया जलाने का स्मरण ले लो। फिर दीया तो तुम्हें ही जलाना है--अपने ही दीए में, अपने ही पानी मिले तेल में, अपनी ही गीली बाती में।
"पापकर्म करते हुए वह मूढ़जन उसे नहीं बूझता है।"
पापकर्म करते हुए! पापकर्म कर लेने के बाद तो सभी बुद्धिमान हो जाते हैं। तुम भी हजारों बार बुद्धिमान हो गए हो--कर लेने के बाद! करते क्षण में जो जाग जाए वह मुक्त हो जाता है। कर लेने के बाद जो जागता है, वह तो सिर्फ पश्चात्ताप से भरता है, मुक्त नहीं होता। एक तो पाप, ऊपर पश्चात्ताप-- दुबले और दो अषाढ़। ऐसे ही मरे जा रहे थे--पाप मार रहा था, फिर पश्चात्ताप भी मारता है। पहले तो क्रोध ने मारा; फिर अब क्रोध से किसी तरह छूटे तो पश्चात्ताप ने पकड़ा कि यह तो बुरा हो गया, यह तो पाप हो गया। पहले तो कामवासना ने छाती तोड़ी, फिर किसी तरह उससे छूट भी न पाए थे कि पश्चात्ताप आने लगा कि फिर वही भूल कर ली।
तुम अगर अपने जीवन को देखोगे तो पाप और पश्चात्ताप, इन दो में बंटा हुआ पाओगे। एक कंधे से थक जाते हो ढोते-ढोते बोझ को, दूसरे कंधे पर रख लेते हो। पाप एक कंधा है, पश्चात्ताप दूसरा कंधा है।
मेरे देखे, अगर तुम पाप से मुक्त होना चाहते हो तो तुम्हें पश्चात्ताप से भी मुक्त होना पड़ेगा। यह बात तुम्हें बड़ी कठिन लगेगी। क्योंकि साधारणतः धर्मगुरु तुमसे कहते हैं, पश्चात्ताप से भरो। अगर पाप से मुक्त होना है तो पश्चात्ताप करो। लेकिन पश्चात्ताप शब्द का अर्थ ही क्या होता है? पश्चात--जब पाप जा चुका तब। पश्चात्ताप का अर्थ होता हैः जब

पाप जा चुका तब तुम उत्तप्त होते हो, तब तुम अनुताप से भरते हो। यही सूत्र है पूरा।
बुद्ध कहते हैं, "पापकर्म करते हुए मूढ़जन उसे नहीं बूझता, लेकिन पीछे अपने ही कर्मों के कारण आग से जले हुए की भांति अनुताप करता है।"
अनुताप यानी पश्चात्ताप। पीछे! जब आग हाथ को जलाती है, काश तुम तभी देख लो तो हाथ बाहर आ जाए! तुम्हारा हाथ है, तुमने ही डाला है, तुम्हीं खींच सकते हो। आग को दोष मत देना, क्योंकि आग ने न तो तुम्हें बुलाया, न तुमसे कोई जबर्दस्ती की, तुमने बिल्कुल स्वेच्छा से किया है।
मैंने सुना है, एक शराबी को एक बूढ़ी महिला, जो शराब के बड़े खिलाफ थी, रोज अपने मकान के सामने से शराब पीकर और डांवाडोल होते और नालियों में गिरते-पड़ते देखती थी। आखिर उससे न रहा गया। एक दिन जब वह नाली में पड़ा हुआ गंदगी में लोट-पोट रहा था, वह उसके पास गयी। उसने पानी के छींटे उसकी आंखों पर मारे और कहा, बेटा! कौन तुम्हें मजबूर कर रहा है इस शराब को पीने के लिए? उसने कहा, मजबूर! हम स्वेच्छा से ही पीते हैं। वालेंटरिली। कोई मजबूर नहीं कर रहा है।
शायद बेहोशी में सच बात निकल गयी। होश में होता तो कहता, पत्नी मजबूर
कर रही है। घर जाता हूं, दुख ही दुख है। क्या करूं, शराब में शरण ले लेता हूं। कि धंधा मजबूर कर रहा है, कि धंधा ऐसा है कि दिनभर चिंता, चिंता, चिंता, छुटकारा नहीं। थोड़ी देर शराब में विश्राम कर लेता हूं तो धंधे से छूट जाता हूं। कि संसार मजबूर कर रहा है, कि दुख, कि हजार बहाने हैं। वह तो शराब की हालत में सच बात निकल गयी। कभी-कभी शराबी से सच बात निकल जाती है। इतना भी होश नहीं रहता कि धोखा दे। उसके मुंह से बात बड़ी ठीक निकल गयी, स्वेच्छा से।
सभी पाप स्वेच्छा से है। अगर पाप के ही क्षण में तुम्हें जाग आ जाए तो कोई भी रोक नहीं रहा है, हाथ बाहर खींच लो। तुमने ही डाला है, तुम्हीं निकाल लो; तुम्हारा ही हाथ है।
बुद्ध का वचन यह कहता है, यहीं भूल होती है, मूढ़जन! मूढ़ता की यही परिभाषा है कि वह पीछे से बुद्धिमान हो जाती है। मूढ़जन हमेशा बाद में बुद्धिमान हो जाते हैं। बुद्धिमानों में और मूढ़ों में इतना ही फर्क है। बुद्धिमान वर्तमान में बुद्धिमान होता है, मूढ़ हमेशा बीत जाने पर। जो कल बीत गया है उसके संबंध में मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है आज। बुद्धिमान कल ही हो गया था। जरा सा फासला है, शायद इंचभर का। बुद्धुओं में और बुद्धों में बस इंचभर का फासला है। तुम जो थोड़ी देर बाद करोगे, बुद्ध तत्क्षण करते हैं।
बुद्ध का शब्द है मूढ़ के लिए--अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति-- बाल, बचकाना आदमी! बालबुद्धि! बालो!
बुद्ध तो मूढ़ भी नहीं कहते हैं। क्योंकि मूढ़ शब्द थोड़ा कठोर है, थोड़ा चोट है उसमें। बुद्ध तो उसे भी माधुर्य से भर देते हैं। वे कहते हैं, बालो। क्षमायोग्य है, बच्चा है। बुद्ध ने जहां-जहां मूढ़ शब्द कहना चाहा है वहां- वहां बालक कहा है। करुणा है। वे कहते हैं, भूल तुमसे हो रही है क्योंकि तुम बालबुद्धि हो। और तुम बालबुद्धि ऐसे हो कि अगर मूढ़ कहें तो शायद तुम उससे और नाराज हो जाओ; शायद तुम हाथ आधा डाले थे, और पूरा डाल दो। तुम्हारी मूढ़ता ऐसी है कि अगर मूढ़ कोई कह दे, तो तुम और अंधे होकर मूढ़ता करने लगोगे। बुद्ध कहते हैं, बालबुद्धि! अबोध! होश नहीं है। जाग्रत नहीं है।
बच्चे का तुम एक गुण समझ लो। छोटे बच्चे को दिन और रात में फर्क नहीं होता, सपने और जागरण में फर्क नहीं होता। कई बार छोटे बच्चे सुबह उठ आते हैं और रोने लगते हैं। वे एक सपना देख रहे थे, जिसमें अच्छे-अच्छे खिलौने उनके पास थे, वह सब छिन गए। वे रोते हैं कि हमारे खिलौने कहां? मां समझाती है कि वह सपना था। लेकिन मां समझ नहीं पा रही है कि सपने के लिए कहीं कोई रोता है! लेकिन बच्चे को अभी सपने और सत्य में सीमा रेखा नहीं है। अभी सपना और सत्य मिला-जुला है। अभी दोनों एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड हैं। अभी विभाजन नहीं हुआ।

बालबुद्धि व्यक्ति सपने में और सत्य में विभाजन नहीं कर पाता। उसके लिए जागरण चाहिए, होश चाहिए। तभी तुम समझ पाओगे क्या सच है, क्या झूठ है। बुद्धिमान आदमी वही है जो कर्म करते हुए जाग्रत है। जो कर रहा है उसे परिपूर्ण जागरण से कर रहा है। इसीलिए बुद्धिमान आदमी कभी पश्चात्ताप नहीं करता, पश्चात्ताप कर नहीं सकता। क्योंकि जो किया था, जागकर किया था। करना चाहा था तो किया था, इसलिए पश्चात्ताप का कोई कारण नहीं। न करना चाहा था तो नहीं किया था, इसलिए पश्चात्ताप का कोई कारण नहीं। पश्चात्ताप मूढ़ता का हिस्सा है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, क्रोध कर लेते हैं, फिर बहुत पछताते हैं। अब क्या करें? मैं उनसे कहता हूं, पहले तुम पश्चात्ताप छोड़ो। क्रोध तो तुमसे छूटता नहीं, कम से कम पश्चात्ताप छोड़ो। वे कहते हैं, पश्चात्ताप को छोड़ने से क्या होगा? पछताते-पछताते भी क्रोध हो रहा है, अगर पश्चात्ताप छोड़ दिया तो फिर तो हम बिल्कुल क्रोध में पड़ जाएंगे। मैं उनसे कहता हूं, तुम थोड़ा प्रयोग तो करो। अगर तुमने पश्चात्ताप छोड़ दिया तो पश्चात्ताप से जो ऊर्जा बचेगी, वही तुम्हारा जागरण बनेगी। अभी क्या हो रहा हैः क्षण में तो तुम सोए रहते हो, कर्म करते तो सोए रहते हो, जागते बाद हो--तुम्हारे जागने और जीवन का मेल नहीं हो पा रहा है। जरा सी चूक हो रही है। जब कृत्य करते हो तब सोए रहते हो, जब जागते हो तब कृत्य जा चुका होता है। उसको तुम पश्चात्ताप कहते हो।
तुम पश्चात्ताप छोड़ो। क्रोध हो गया, कोई फिकर नहीं। अब यह मत कहो कि
अब न करेंगे। यह तो तुम बहुत बार कह चुके हो। यह झूठ बंद करो। इस झूठ ने तुम्हारे आत्मसम्मान को ही नष्ट कर दिया है। तुम खुद ही जानते हो कि यह हम झूठ बोल रहे हैं। कितनी दफे बोल चुके हो। अब तुम किससे कह रहे हो, किसको धोखा दे रहे हो कि अब न करेंगे? यह तुमने कल भी कहा था, परसों भी कहा था। एक युवती ने दो दिन पहले आकर मुझे कहा कि एक युवक के मैं प्रेम में पड़ गयी हूं। लेकिन मुझे संदेह होता है। युवक ने मुझे कहा कि मैं तेरे लिए ही प्रतीक्षा करता था, जन्म-जन्म तेरी ही बाट जोही, अब तुझसे मिलना हो गया। मगर उस युवक के व्यवहार और ढंग से मुझे संदेह होता है, मैं क्या करूं? मैंने उससे कहा कि तू कम से कम दसवीं स्त्री है जिसने मुझसे यह खबर दी, उस युवक के बाबत। वह पहले भी दस से कह चुका है--और ज्यादा से भी कहा होगा--दस मेरे पास आ चुकी हैं।
उस युवक को भी शायद पता न हो कि वह क्या कह रहा है! न हमें पता है हम क्या कह रहे हैं, न हमें पता है हम क्या कर रहे हैं। हम किए चले जाते हैं, हम कहे चले जाते हैं। एक अंधी दौड़ है।
तुमने कितनी बार कहा, क्रोध न करेंगे। अब इतनी तो लज्जा करो कम से कम
कि अब इसे मत दोहराओ; ये शब्द झूठे हो गए। इनमें कोई प्रामाणिकता नहीं रही। इतना तो कम से कम होश साधो; मत करो क्रोध का त्याग, कम से कम यह झूठा पश्चात्ताप तो छोड़ो। लेकिन पश्चात्ताप करके तुम अपनी प्रतिमा को सजा- संवार लेते हो। तुम कहते हो, आदमी मैं भला हूं; हो गया क्रोध कोई बात नहीं, देखो कितना पछता रहा हूं! साधु-संतों के पास जाकर कसमें खा आते हो, व्रत-नियम ले लेते हो कि अब कभी क्रोध न करेंगे। ब्रह्मचर्य की कसम खा लेते हो। कितनी बार तुमने कसम खायी, थोड़ा सोचो तो!
एक वृद्ध, पर बड़े महत्वपूर्ण व्यक्ति ने और बड़े कीमती व्यक्ति ने मुझसे कहा--उनके घर मैं मेहमान था--कि मैंने अपने जीवन में... वे आचार्य तुलसी के अनुयायी हैं, तेरापंथी जैन हैं। और आचार्य तुलसी का यही धंधा है, लोगों को अणुव्रत नियम लो, कसम खाओ, छोड़ो... । तो मैंने उनसे पूछा कि तुमने क्या छोड़ा? तुम उनके खास अनुयायी हो। उन्होंने कहा, अब आपसे क्या छिपाना! चार दफे ब्रह्मचर्य का व्रत ले चुका हूं।
चार दफा! ब्रह्मचर्य का व्रत तो एक दफा काफी है, फिर दुबारा क्या लेने
की जरूरत पड़ी? फिर मैंने कहा, पांचवीं दफे क्यों न लिया? वे कहने लगे, थक गया, चार दफा लेकर बार-बार टूट गया। तो इतनी बात तो समझ में आ गयी कि यह अपने से न होगा; इसलिए पांचवीं दफे नहीं लिया।

चार दफे ब्रह्मचर्य के व्रत का कुल इतना परिणाम हुआ कि यह आदमी आत्मग्लानि से भर गया। अब इसको अपने पर भरोसा न रहा कि मैं व्रत पूरा कर सकता हूं। यह आदमी पुण्यात्मा तो न बना, इसने पाप की शक्ति को स्वीकार कर लिया। यह तो घात हो गया।
इसलिए मैं व्रतों के विरोध में हूं। मैं कहता हूं, व्रत भूलकर मत लेना। अगर समझ आ गयी हो तो बिना व्रत के समझ को ही उपयोग में लाना। अगर समझ न आयी हो तो व्रत क्या करेगा? आज व्रत ले लोगे जोश-खरोश में, कल जब फिर पुरानी धारा पकड़ेगी तो व्रत टूटेगा। तो या तो फिर तुम छिपाओगे लोगों से कि व्रत टूटा नहीं, चल रहा है... कम से कम यह बूढ़ा आदमी ईमानदार था। इसने कहा कि मैं चार दफे ले चुका; पांचवीं दफे नहीं लिया, क्योंकि समझ गया कि यह अपने से नहीं हो सकता, असंभव है।
जरा सोचो, जब तुम्हें ऐसा लगता है कि असंभव है, तुम कितने पतित हो गए। तुम अपनी आंखों में गिर गए। तुमने आत्मगौरव खो दिया। इसलिए तथाकथित धार्मिक गुरु तुम्हारी आत्मा को नष्ट करते हैं, निर्माण नहीं करते। और तुम्हारे व्रत और नियम तुम्हें मारते हैं, तुम्हें जगाते नहीं। अगर तुमने जबर्दस्ती की तो तुम पाखंडी हो जाओगे, भीतर-भीतर रस चलता रहेगा, बाहर-बाहर व्रत। अगर तुमने जबर्दस्ती न की तो व्रत टूटेगा, आत्मग्लानि से भर जाओगे, अपराध पैदा होगा।
मैं तुमसे कहता हूं, पश्चात्ताप मत करना। क्रोध हो जाए तो अब इतना ही ख्याल रखनाः इस बार हुआ, अगली बार जब होगा तो होश से करेंगे। मैं तुमसे नहीं कहता कि अगली बार मत करना। मैं तुमसे कहता हूं, होश से करना।
यही बुद्ध कह रहे हैं। वे कहते हैं, जब तुम कर्म करो तब होश से करना। पहले झकझोरकर जगा लेना अपने को। जब क्रोध की घड़ी आए तो बड़ी महत्वपूर्ण घड़ी आ रही है, मूर्च्छा का क्षण आ रहा है--तुम झकझोरकर जगा लेना अपने को! घर में आग लगने की घड़ी आ रही है, जहर पीने का वक्त आ रहा है--झकझोरकर जगा लेना अपने को! होशपूर्वक क्रोध करना। अगर कसम ही खानी है तो इसकी खाना कि होशपूर्वक क्रोध करेंगे। और तुम चकित हो जाओगे, अगर होश रखा तो क्रोध न होगा। अगर क्रोध होगा तो होश न रख सकोगे।
इसलिए असली दारोमदार होश की है। और तब एक और रहस्य तुम्हें समझ में आ जाएगा कि क्रोध, लोभ, मोह, काम, मद-मत्सर, बीमारियां तो हजार हैं, अगर तुम एक-एक बीमारी को कसम खाकर छोड़ते रहे तो अनंत जन्मों में भी छोड़ न पाओगे। एक-एक बीमारी अनंत जन्म ले लेगी और छूटना न हो पाएगा। बीमारियां तो बहुत हैं, तुम अकेले हो। अगर ऐसे एक-एक ताले को खोजने चले और एक-एक कुंजी को बनाने चले तो यह महल कभी तुम्हें उपलब्ध न हो पाएगा, इसमें बहुत द्वार हैं और बहुत ताले हैं। तुम्हें तो कोई ऐसी चाबी चाहिए जो चाबी एक हो और सभी तालों को खोल दे।
होश की चाबी ऐसी चाबी है। तुम चाहे काम पर लगाओ तो काम को खोल देती है; क्रोध पर लगाओ, क्रोध को खोल देती है; लोभ पर लगाओ, लोभ को खोल देती है; मोह पर लगाओ, मोह को खोल देती है। तालों की फिकर ही नहीं है--मास्टर की है। कोई भी ताला इसके सामने टिकता ही नहीं। वस्तुतः तो ताले में चाबी डल ही नहीं पाती, तुम चाबी पास लाओ और ताला खुला!
यह चमत्कारी सूत्र है। इससे महान कोई सूत्र नहीं। इससे तुम बचते हो
और बाकी तुम सब तरकीबें करते हो, जो कोई भी काम में आने वाली नहीं हैं। तुम्हारी नाव में हजार छेद हैं। एक छेद बंद करते हो तब तक दूसरे छेदों से पानी भर रहा है। तुम क्रोध से जूझते हो, तब तक काम पैदा हो रहा है।
तुमने कभी ख्याल किया? नहीं तो ख्याल करना। अगर तुम क्रोध को दबाओ तो काम बढ़ेगा। अगर तुम कामवासना में उतर जाओ, क्रोध कम हो जाएगा। इसलिए तो तुम्हारे साधु-संन्यासी क्रोधी हो जाते हैं। तुम्हारे ऋषि-मुनि, दुर्वासा, इनका मनोविश्लेषण किसी ने किया नहीं, होना चाहिए। कोई फ्रायड इनके पीछे पड़ना चाहिए। दुर्वासा! इतने क्रोधी! इतना महान क्रोध आया कहां से? जरा-सी बात पर जन्म-जन्म खराब कर दें किसी का! ऋषि से तो आशीर्वाद की वर्षा होनी चाहिए। अभिशाप! जरूर कामवासना को दबा लिया है। ब्रह्मचर्य के धारक रहे होंगे। ब्रह्मचर्य को थोप लिया होगा। तब ऊर्जा एक तरफ से इकट्ठी

हो गयी, कहां से निकले? वही ऊर्जा क्रोध बन रही है। उसी की भाप बाहर आ रही है। उसी का उत्ताप बाहर आ रहा है।
तुम गौर से देखो। अगर तुम कामी आदमी को देखोगे तो उसको तुम क्रोधी न पाओगे। अगर संयमी को देखोगे, क्रोधी पाओगे। घर में एक आदमी संयमी हो जाए, उपद्रव हो जाता है, उसका क्रोध जलने लगता है। धार्मिक आदमी क्रोधी होता ही है। यह बड़े आश्चर्य की बात है! होना नहीं चाहिए, पर ऐसा होता है। क्यों ऐसा होता है? बूढ़े आदमी क्रोधी हो जाते हैं, क्यों?
जैसे-जैसे बूढ़े होते हैं, वैसे-वैसे कामवासना की तरफ जाना ग्लानिपूर्ण मालूम होने लगता है। घर में बच्चे हैं, बच्चों के बच्चे हैं, अब कामवासना में उतरने में बड़ी शर्म मालूम होने लगती है, बड़ा बेहूदा लगने लगता है! अब तो बच्चों के बच्चे जवान हो गए, वे प्रेम-रास रचा रहे हैं; अब ये बूढ़े रास रचाएं तो जरा शोभा नहीं देता, भद्दा लगता है! तो बूढ़े क्रोधी हो जाते हैं। तुमने ख्याल किया, बूढ़ों के साथ जीना बड़ा मुश्किल हो जाता है।
अगर तुम क्रोध को दबा लो, काम को दबा लो--लोभ पकड़ लेगा। इसलिए तुम एक बात देखोगे, लोभी कामी नहीं होते। लोभी जीवनभर अविवाहित रह सकता है--बस धन बढ़ता जाए! कंजूस को विवाह महंगा ही मालूम पड़ता है। कंजूस सदा विवाह के विपरीत है। स्त्री को लाना एक खर्च है; वह उपद्रव है। कंजूस विवाह से बचता है। और अगर विवाह कर भी लेता है किसी परिस्थितिवश, तो पत्नी से बचता रहता है।
मैं एक मित्र के घर में बहुत दिन तक रहा। उन्हें मैंने कभी अपनी पत्नी
के पास बैठा भी नहीं देखा, बात भी करते नहीं देखा। और ऐसा भी मैंने निरीक्षण किया कि वे पत्नी से छिटककर भागते हैं। अपने बच्चों की तरफ भी ठीक से देखते नहीं, कभी बात नहीं करते। मैंने उनसे पूछा कि मामला क्या है? तुम सदा भागे-भागे रहते हो। उन्होंने कहा कि अगर जरा ही पत्नी के पास बैठो, बैठे नहीं कि फलाना हार देख आयी है बाजार में, कि साड़ी देख आयी है; जरा हाथ दो उसके हाथ में कि बस जेब में गया, और कहीं जाता ही नहीं! बच्चों से जरा मुस्कुराकर बोलो, उनका हाथ जेब में गया! नौकर की तरफ जरा देख लो, वह कहता है, तनख्वाह बढ़ा दो।
यह कंजूस आदमी है। इसने सब तरफ से सुरक्षा कर ली है। यह मुस्कुराकर भी नहीं देखता, क्योंकि हर मुस्कुराहट की कीमत चुकानी पड़ती है। यह पत्नी से बात नहीं करता, क्योंकि बात अंततः जेवर पर पहुंच ही जाएगी। कहां कितनी देर तक यहां-वहां जाओगे! स्त्रियों को कोई रस ही नहीं और किसी बात में--न वियतनाम में, न कोरिया में, न इजराइल में--उन्हें कुछ लेना-देना नहीं है। तुम बात शुरू करो, वे तुम्हें कहीं न कहीं से गहनों पर, साड़ियों पर, वस्त्रों पर ले आएंगी। इसलिए बात ही शुरू करना महंगा है।
कंजूस काम से बचता है। कंजूस क्रोध से भी बचता है, क्योंकि क्रोध भी महंगा पड़ता है। झगड़ा-झांसा, अदालत, कौन झंझट करे। कंजूस बड़ी विनम्रता जाहिर करता है। झगड़ा-झांसा महंगा हो सकता है। इसलिए कंजूस वह भी नहीं करता। पर तुम ख्याल करना, उसकी सारी ऊर्जा लोभ में बहने लगती है। उसका काम, क्रोध, सब लोभ बन जाता है।
एक तरफ से दबाओगे, दूसरी तरफ से निकलेगा। यह झरना बहना चाहिए। होश इस सारी ऊर्जा को समा लेता है।
ऐसा समझो कि बेहोशी में झरने नीचे की तरफ बहते हैं, होश में ऊपर की तरफ बहने लगते हैं। काम भी नीचे ले जाता है, क्रोध भी नीचे ले जाता है, लोभ भी नीचे ले जाता है। तुम काम की सीढ़ी से नीचे गए, क्या फर्क पड़ता है! कि लोभ की सीढ़ी से नीचे गए, क्या फर्क पड़ता है! तुम क्रोध की सीढ़ी से नीचे गए, क्या फर्क पड़ता है! सीढ़ियां अलग-अलग हों, नीचे जाना तो हो ही रहा है।
ऊपर ले जाता है होश। जैसे-जैसे तुम होश से भरते हो, तुम्हारी ऊर्जा ऊर्ध्वगमन करती है, तुम ऊर्ध्वरेतस होते हो। और उस ऊर्ध्वगमन में ही सारी ऊर्जा परमात्मा की तरफ, सत्य की तरफ, निर्वाण की तरफ यात्रा करती है।
उस यात्रा के बाद ही तुम पाते होः न क्रोध पकड़ता है, न लोभ पकड़ता है, न मोह पकड़ता है, न काम पकड़ता है। नहीं कि तुमने त्यागा। अब तुम इतनी बड़ी

यात्रा पर जा रहे हो कि उन क्षुद्रताओं में जाए कौन! अब तुम्हारे जीवन में इतने हीरे बरस रहे हैं, कंकड़-पत्थर कौन बीने! अब ऐसे फूल खिले, ऐसे कमल खिले हैं कि घास-पात को कौन इकट्ठा करे!
"पापकर्म करते हुए वह मूढ़जन उसे नहीं बूझता।"
बूझना शब्द भी बड़ा सोचने जैसा है।

बालो न बुज्झति।

बूझने का अर्थ सोचना नहीं है। क्योंकि सोचना तो हमेशा जो बीत गयी बात उसका होता है। सोच तो हमेशा पीछे होता है। बूझने का अर्थ हैः निरीक्षण। बूझने का अर्थ हैः अवलोकन। तुम जिसे सोच-विचार कहते हो, वह तो ऐसा है--जब फूल खिला तब तो देखा न, जब वह मुरझा गया और गिर गया तब तुम देखने आए। जब वसंत था तब तो आंख न खोली, जब पतझर आ गया तब तुमने बड़ी बुद्धिमानी दिखायी, आंख खोलकर सोचने लगे, वसंत क्या है? बूझने का अर्थ हैः जो है उसका अवलोकन, जो है उसके प्रति साक्षी भाव।
इसलिए मैं कहता हूं, मेरी बातों को सोचो मत, बूझो। बूझना सहजस्फूर्त अभी और यहीं घटता है। सोचना पीछे घटता है।
तुम सभी सोचते हो। काम कर लेते हो, फिर सोचते हो--ऐसा किया होता, ऐसा न किया होता। काश, ऐसा हुआ होता! यह तुम क्या कर रहे हो? नाटक हो चुका, अब रिहर्सल कर रहे हो? कुछ लोग हैं जिनका रिहर्सल हमेशा नाटक के बाद होता है। तुमने अपने को कई बार पकड़ा होगा, न पकड़ा हो तो पकड़ना, बात हो चुकी--किसी ने गाली दी थी, तुम कुछ कह गए--फिर पीछे सोचते हो, ऐसा न कहा होता, मुझे क्यों न सूझा, कुछ और कहा होता! अब हजार बातें सूझती हैं। मगर अब तो समय जा चुका। अब तो तीर छूट चुका। छूटे तीर वापस नहीं लौटते। अब तुम्हारे हाथ में नहीं है, जो बात हो गयी हो गयी।
तो कुछ लोग नाटक के बाद रिहर्सल करते हैं और कुछ लोग नाटक के पहले वर्षों तक रिहर्सल करते हैं। वे इतना रिहर्सल कर लेते हैं कि जब नाटक की घड़ी आती है तब वे करीब-करीब उधार हो गए होते हैं। जैसे तुमने कोई बात बिल्कुल तय कर ली। तुम इंटरव्यू देने गए। दफ्तर में नौकरी चाहिए थी। स्वभावतः तुम हजार तरह से सोचते हो, क्या पूछेंगे, हम क्या उत्तर देंगे। तुम उत्तर को बिल्कुल मजबूत कर लेते हो--बार-बार दोहरा-दोहराकर, दोहरा- दोहराकर, जैसा स्कूल में विद्यार्थी परीक्षा देने जाता है तो बिल्कुल रट लेता है, कंठस्थ कर लेता है।
मैं बहुत दिन तक शिक्षक रहा, तो मैं चकित हुआ जानकर कि जो प्रश्न पूछे नहीं जाते उनके विद्यार्थी उत्तर देते हैं। ये उत्तर कहां से आते होंगे? मैंने उन विद्यार्थियों को बुलाया कि तुम करते क्या हो! यह तो प्रश्न पूछा ही नहीं गया है। जब मैंने उन्हें समझाया कि यह तो प्रश्न ही नहीं, तब उनकी अकल में आया। उन्होंने कहा, अरे! हम तो कुछ और समझे। हमने तो जो प्रश्न तैयार किया था वही पढ़ लिया।
अक्सर तुम वही पढ़ लेते हो जो तैयार है। जो उत्तर तुम तैयार कर लाए हो, वही तुम सोचते हो पूछा गया है। तुम अपने उत्तर से इतने भरे हो कि जगह कहां कि तुम प्रश्न को सुन लो। पूछा कुछ जाता है, लेकिन जब तुम्हें पूछा जा रहा है, तब अगर तुम मौजूद होओ, तो तुम सुन सकोगे उसे। तुम कुछ और सुनकर लौट आते हो।
अक्सर मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, आपने कल ऐसा कहा। मुझे भी चौंका देते हैं। कल मैंने कभी कहा नहीं। उन्होंने सुना, यह बात पक्की है; अन्यथा वे लाते कैसे। तो अब सवाल यह है कि जो उन्होंने सुना वह जरूरी है कि मैंने कहा? जरूरी नहीं है। मेरे अनुभव से यह मुझे समझ में आया, तुम वही सुनते हो जो तुम सुनना चाहते हो। तुम वही सुन लेते हो जिसको सुनने के लिए तुम तैयार हो। जिसके लिए तुम तैयार नहीं हो वह तुमसे छूट जाता है, तुम चुनाव कर लेते हो। फिर तुम अपना रंग दे देते हो। फिर जब तुम मेरे पास आते हो, तुम कहते हो, आपने कहा था। मैंने कहा ही नहीं है। मैंने जो कहा था उसे सुनने को तो तुम्हें बिल्कुल चुप होना पड़ेगा। तुम्हारे भीतर कुछ भी सरकते

हुए विचार न रह जाएं; अन्यथा वह विचार मिश्रित हो जाएंगे। तुम जो भी सुनते हो, वह मेरी कही बातों की और तुम्हारी सोची बातों की खिचड़ी है। उस खिचड़ी से जीवन में कुछ क्रांति घटित नहीं हो सकती, तुम और उलझ जाओगे।
सुनने का ढंग हैः तुम जो भी जानते हो उसे किनारे रख दो। तुम ऐसे सुनो जैसे तुम कुछ भी नहीं जानते हो। तो धोखा न होगा।
तो कुछ हैं जो जीवन के पहले रिहर्सल करते रहते हैं; नाटक का जब दिन आता
है तब चूक जाते हैं। रिहर्सल इतना मजबूत हो जाता है कि उनकी तत्क्षण-विवेक की दशा खो जाती है।
दो ही तरह के लोग हैं--कुछ अग्रसोची हैं, कुछ पश्चात्ताप करने वाले हैं। दोनों के मध्य में वर्तमान का क्षण है, वहां होना असली कला है, वहां होना धर्म है।
"पापकर्म करते हुए वह मूढ़जन उसे नहीं बूझता है।"
हम वहां हैं जहां से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती
और जब तुम अपने कर्म के प्रति ही जागरूक नहीं हो तो तुम कर्ता के प्रति कैसे जागरूक होओगे? कर्ता तो बहुत गहरे में है। कर्म तो बहुत बाहर है, साफ है। कर्ता तो बहुत अंधेरे में छिपा है। अगर कर्म के प्रति जागे नहीं, तो कर्ता के प्रति कैसे जागोगे? और अगर कर्ता के प्रति न जागे, तो साक्षी के प्रति कैसे जागोगे? साक्षी तो बहुत दूर है फिर तुमसे।
हम वहां हैं जहां से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती
उस साक्षी से तुम कितने दूर पड़ गए हो। हजारों-हजारों मीलों का फासला
हो गया है। लौटो घर की तरफ! चलो अंतर्यात्रा पर!
यात्रा के सूत्र हैंः कर्म के प्रति जागो। पहला सूत्र। जब कर्म के प्रति होश सध जाए, तो फिर जागो कर्ता के प्रति। होश के दीए को जरा भीतर मोड़ो। जब कर्ता के प्रति दीया साफ-साफ रोशनी देने लगे, तो अब उसके प्रति जागो जो जागा हुआ है--साक्षी के प्रति। अब जागरण के प्रति जागो। अब चैतन्य के प्रति जागो। वही तुम्हें परमात्मा तक ले चलेगा।
ऐसा समझो, साधारण आदमी सोया हुआ है। साधक संसार के प्रति जागता है, कर्म के प्रति जागता है। अभी भी बाहर है, लेकिन अब जागा हुआ बाहर है। साधारण आदमी सोया हुआ बाहर है। धर्म की यात्रा पर चल पड़ा व्यक्ति बाहर है, लेकिन जागा हुआ बाहर है।
फिर जागने की इसी प्रक्रिया को अपनी तरफ मोड़ता है। एक दफे जागने की कला आ गयी, कर्म के प्रति, उसी को आदमी कर्ता की तरफ मोड़ देता है। हाथ में रोशनी हो, तो कितनी देर लगती है अपने चेहरे की तरफ मोड़ देने में! बैटरी हाथ में है, मत देखो दरख्त, मत देखो मकान, मोड़ दो अपने चेहरे की तरफ! हाथ में बैटरी होनी चाहिए, रोशनी होनी चाहिए। फिर अपना चेहरा दिखायी पड़ने लगा। साधारण व्यक्ति संसार में सोया हुआ है; साधक संसार में जागा हुआ है; सिद्ध भीतर की तरफ मुड़ गया, अंतर्मुखी हो गया, अपने प्रति जागा हुआ है। अब बाहर नहीं है, अब भीतर है और जागा हुआ है। और महासिद्ध, जिसको बुद्ध ने महापरिनिर्वाण कहा है, वह जागने के प्रति भी जाग गया। अब न बाहर है न भीतर, बाहर-भीतर का फासला भी गया। जागरण की प्रक्रिया दोनों के पार है, अतिक्रमण करती है। वह शुद्ध चैतन्य के प्रति जाग गया।
बाहर से भीतर आओ, भीतर से बाहर और भीतर दोनों के पार चलना है। लेकिन हम जरा सी देर बाद जागते हैं--
हम सत्य समझते हैं उनको जो नित्य नए
खिलते मधुबन में रंग-बिरंगे शूल-फूल।
पर अट्टहास कर पतझर कहता है हमसे
वह देखो मरघट में किसकी उड़ रही धूल?
पीछे हम जागते हैं कि अरे! यह तो सपना था। सुबह हम जागते हैं कि अरे! रात जो देखा सपना था। लेकिन रात जब सपना चलता है, तब हम उसे ही सत्य मानते हैं।

अगर तुम कर्म के प्रति जागने लगो--चलते समय जागे हुए चलो, बोलते समय जागे हुए बोलो, सुनते समय जागे हुए सुनो, भोजन करते हुए जागे हुए भोजन करो, बिस्तर पर लेटते हुए जागे हुए लेटो--जल्दी ही तुम पाओगे, सपने खोने लगे। क्योंकि अचानक अनेक बार नींद में भी, अचानक, तुम जाग जाओगे कि अरे! यह तो सपना है! और जैसे ही तुमने जाना, यह सपना है, सपना गया। सपने के होने की सामर्थ्य तुम्हारी मूर्च्छा में है। सपने का अधिकार तुम्हारी मूर्च्छा में है। सपने का दावा तुम्हारी बेहोशी पर है। तुम्हारे होश पर सपने का कोई दावा नहीं है।
और इसीलिए तो बुद्धपुरुषों ने इस संसार को माया कहा है। क्योंकि जो जागता है उसके लिए यह नहीं है। इसका यह मतलब मत समझ लेना कि बुद्धपुरुष दीवाल में से निकलता है, क्योंकि जब दीवाल है ही नहीं तो निकलने की दिक्कत क्या? या बुद्धपुरुष पत्थर-कंकड़ खाने लगता है, क्योंकि जब फर्क ही नहीं है, सब सपना ही है, तो भोजन हो कि पत्थर हो सब बराबर है। यह मतलब नहीं है। संसार माया का अर्थ हैः जिस संसार को तुमने अपनी सोयी हुई आंखों से देखा है, तुमने जो संसार अपने चारों तरफ रचा है--झूठा, कल्पना का। स्त्री है वहां, तुमने पत्नी देखी--पत्नी संसार है। स्त्री संसार नहीं है, स्त्री तो वास्तविक है। पत्नी, पति; मेरा, तेरा, मित्र, शत्रु, ये संसार हैं। बाहर तो लोग खाली पर्दे की तरह हैं, फिल्म तुम अपनी चलाते हो। वहां एक स्त्री है, तुम कहते हो, मेरी पत्नी है। वहां एक पुरुष है, तुम कहते हो, मेरा पति है। यह जो मेरा पति है, यह तुम्हारा प्रक्षेपण है। यह फिल्म तुमने चलायी है। हालांकि वह भी राजी है इस फिल्म को अपने ऊपर चलने देने के लिए, क्योंकि वह भी अपनी फिल्म तुम्हारे ऊपर चला रहा है। पारस्परिक सौजन्यता है। हम तुम्हारे लिए पर्दा बनते हैं, तुम हमारे लिए पर्दा बन जाओ। खेल जारी रहता है। आओ छिया-छी खेलें! स्वभावतः, तुम हमें साथ दोगे हमारे सपने सत्य बनाने में, तो हम तुम्हें साथ देंगे। जिस दिन तुमने कहा, हम साथ नहीं देते, उसी दिन खेल खतम। एक भी कह दे कि साथ नहीं देते, खेल खतम।
यह खेल वैसा ही है जैसे लोग ताश खेलते हैं। ताश के नियम होते हैं, नियम
का पालन करना पड़ता है दोनों खिलाड़ियों को। अगर एक भी खिलाड़ी कह दे कि हम इस चिड़ी के बादशाह को बादशाह नहीं मानते, तो खेल खतम! अब चिड़ी का बादशाह कोई है थोड़े ही! कागज पर बनी तस्वीर है। दो आदमियों की मान्यता है कि चिड़ी का बादशाह है। पत्नी-पति सब चिड़ी के बादशाह हैं। एक ने कह दिया कि नहीं मानते, तलाक हो गया! मान्यता का खेल है।
शतरंज के मोहरे देखे? हाथी-घोड़े सब चलते हैं। लोग जान लगा देते हैं, तलवारें खिंच जाती हैं, प्राण लगा देते हैं, कट मरते हैं--और वहां कुछ भी नहीं है; लकड़ी के हाथी-घोड़े हैं। आदमी के लड़ने का शौक ऐसा है! असली हाथी- घोड़े न रहे। असली हाथी-घोड़े से लड़ना जरा महंगा हो गया और मूढ़तापूर्ण हो गया, तो उसने कल्पना के हाथी-घोड़े ईजाद कर लिए हैं।
तुम चकित होओगे, अमरीका में स्त्री और पुरुषों की रबर की बनी हुई प्रतिमाएं बिकती हैं। असली हाथी-घोड़े महंगे पड़ गए। अब असली स्त्री को रखना एक उपद्रव है। असली है, उपद्रव होगा ही। गए एक रबर की स्त्री खरीद लाए; अब तुम्हारी जो मर्जी हो, जो भी उससे कहना हो कहो, वह मुस्कुराए चली जाती है। तुम्हारी जो मर्जी हो--ठुकराओ, सिर पर रखो, राजरानी बनाओ, कि उठाकर बाहर सड़क पर फेंक आओ--वह हर हालत में मुस्कुराए चली जाती है। वह सिर्फ रबर की स्त्री है। आदमी उस पर भी सपने जोड़ लेता है।
तुमने ऐसे लोग देखे होंगे, तुमने अपने भीतर भी ऐसे आदमी को पाया होगा,
जो तस्वीरें इकट्ठी कर लेता है। कागज पर खिंचे रंग की रेखाएं, सुंदर स्त्रियों की तस्वीरें लोग इकट्ठी करते रहते हैं।
माया का अर्थ हैः तुम्हारी तस्वीरों का जाल। वहां सच कुछ भी नहीं है।
और अगर सच है तो तुमने उसका पर्दे की तरह उपयोग किया है।
"पापकर्म करते हुए वह मूढ़जन उसे नहीं बूझता, लेकिन पीछे दुर्बुद्धिजन अपने ही कर्मों के कारण आग से जले हुए की भांति अनुताप करता है।"
तुम सबने किया है। इसलिए सूत्र समझना कठिन नहीं है। अब अनुताप छोड़ो।
बहुत हो चुका। अब अनुताप छोड़ो, अब जागना शुरू करो। कठिन होगा। पुरानी आदत

के विपरीत है। जन्मों-जन्मों की आदत है, लेकिन टूटेगी आदत। अगर सतत तुमने चेष्टा की, तो जैसे नदी की धार कठिन से कठिन, कठोर से कठोर चट्टान को भी तोड़ देती है, ऐसे ही आदत भी टूट जाती है। आदत पत्थर की जैसी है। होश जलधार है-- बड़ी कोमल--लेकिन अंततः जीत जाती है।
आंधियां चाहे उठाओ बिजलियां चाहे गिराओ
जल गया है दीप तो अंधियार ढलकर ही रहेगा
थोड़ी ही टिमटिमाती रोशनी सही, कोई फिकर नहीं, सूरज ज्यादा दूर नहीं। आंधियां चाहे उठाओ बिजलियां चाहे गिराओ
जल गया है दीप तो अंधियार ढलकर ही रहेगा
उग रही लौ को न टोको ज्योति के रथ को न रोको
यह सुबह का दूत हर तम को निगलकर ही रहेगा
जल गया है दीप तो अंधियार ढलकर ही रहेगा
वक्त को जिसने नहीं समझा उसे मिटना पड़ा है
बच गया तलवार से तो फूल से कटना पड़ा है
क्यों न कितनी ही बड़ी हो, क्यों न कितनी ही कठिन हो
हर नदी की राह से चट्टान को हटना पड़ा है
आंधियां चाहे उठाओ बिजलियां चाहे गिराओ
जल गया है दीप तो अंधियार ढलकर ही रहेगा
पर जल गया हो तब! अंधेरे में इस गीत को दोहराने से कुछ भी न होगा। बहुत लोग गीतों को दोहराने लगे हैं। धम्मपद पढ़ रहा है कोई। गीता दोहरा रहा है कोई। कुरान को गा रहा है कोई। दीया जलाओ! ये दीया जलाने के शास्त्र हैं, इनको दोहराओ मत, इनका उपयोग करो! इनसे कुछ सीखो और जीवन में रूपांतरित करो। इनको बोझ की तरह मत ढोओ।
और ये सब चोटें जो जीवन में पड़ती हैं, शुभ हैं। न पड़ें तो तुम जागोगे कैसे? क्रोध भी, काम भी, लोभ भी। एक दिन तुम उनके प्रति भी धन्यवाद करोगे। अगर न कर सको तो तुम असली धार्मिक आदमी नहीं।
इसलिए तुम उसी को संत समझना, उसी को सिद्ध समझना, जिसने अब अपने जीवन
की उलझनों को भी धन्यवाद देने की शुरुआत कर दी। अगर तुम्हारा संत अभी भी क्रोध के विपरीत आग उगलता हो, अभी भी कामवासना के ऊपर तलवार लेकर टूट पड़ता हो, अभी भी पापियों को नर्क में भेजने का आग्रह रखता हो, उत्सुकता रखता हो, और अभी भी पुण्यात्माओं के लिए स्वर्ग के प्रलोभन देता हो, तो उसने कुछ जाना नहीं। वह तुम जैसा ही है। उसने नए धोखे रच लिए होंगे। तुम्हारे धोखे अलग, उसके धोखे अलग। तुम्हारी माया एक ढंग की है, सांसारिक है; उसकी माया मंदिर-मस्जिद वाली है, लेकिन कुछ फर्क नहीं है।
चोट खाकर ही तो इंसान बना करता है
दिल था बेकार अगर दर्द न पैदा होता
सब चोटें अंततः निर्मात्री हैं। सब चोटें सृजनात्मक हैं। सभी से तुम बनोगे, निखरोगे, खिलोगे। उठना है उनके पार, दुश्मन की तरह नहीं; उनका भी मित्र की तरह उपयोग कर लेना है।
"जिसके संदेह समाप्त नहीं हुए हैं, उस मनुष्य की शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा धारण करने से, न पंकलेप से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से और न उकडूं बैठने से हो सकती है।"
"जिसके संदेह समाप्त नहीं हुए हैं... ।"
बुद्ध को नकार से बड़ा लगाव है। अब क्या अड़चन थी, वे कह देते कि जिसको श्रद्धा उत्पन्न हुई है। मगर वे न कहेंगे। वह शब्द उन्हें रास नहीं आता। परिस्थितियां भी नहीं थीं। श्रद्धा जैसे बहुमूल्य शब्द को बुद्ध ज्यादा उपयोग नहीं कर पाते। पर जो कहते हैं वह वही है। तुम इसे ध्यान रखना। "जिसके संदेह समाप्त नहीं हुए हैं... ।"
उनको उलटी तरफ से यात्रा करनी पड़ती है, कान दूसरी तरफ से घूमकर पकड़ना पड़ता है। श्रद्धा सीधा शब्द है, लेकिन वे कहते हैं, जिसके संदेह नहीं समाप्त हुए हैं। वे कहते हैं, संदेह समाप्त होने चाहिए। संदेह की जो शून्य स्थिति है, जहां संदेह नहीं है, वही श्रद्धा की स्थिति है। लेकिन बुद्ध

उसके संबंध में कुछ कहते नहीं। वे नहीं से चलते हैं। वे हर जगह नहीं से ही व्याख्या और परिभाषा करते हैं। नेति-नेति उनका शास्त्र है।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा था। एक नया युवक एक बड़ी पोथी लेकर आ गया। मुल्ला को बड़ी बेचैनी होने लगी। उस युवक ने कहा कि मैंने एक उपन्यास लिखा है और आप बुजुर्ग हैं; आप कविता भी करते हैं, कहानियां भी लिखते हैं, मैं बड़ा धन्यभागी होऊंगा अगर आप इसके लिए शीर्षक चुन दें। होंगे कोई दो हजार पन्ने! मुल्ला ने गौर से पोथी की तरफ देखा और उसने कहा कि ठीक, इसमें कहीं ढोल का जिक्र है? उसने कहा कि नहीं। वह युवक चौंका कि ढोल के जिक्र के पूछने की जरूरत क्या! मुल्ला ने पूछा, इसमें कहीं नगाड़े का जिक्र है? उसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं। तो उसने कहा, बस, शीर्षक चुन दिया, न ढोल न नगाड़ा। उठा अपनी पोथी और ले जा!
मैंने मुल्ला से कहा कि मुल्ला, तुम मुसलमान हो कि बुद्धिस्ट? बौद्ध मालूम होते हो बिल्कुल। यह तुमने खूब तरकीब निकाली है इसका शीर्षक चुनने की--न ढोल न नगाड़ा! गलत भी कोई नहीं कह सकता, क्योंकि दोनों का जिक्र नहीं है।
बुद्ध श्रद्धा की बात नहीं करते हैं। कहते हैं, जहां संदेह न हो। जिसके संदेह समाप्त हो गए हैं। नहीं से चलते हैं। लेकिन जिनके जीवन में तर्क है, विचार है, उनको यह बात जंचेगी, उनको यह बात समझ में आएगी। जिनके जीवन में भाव है, श्रद्धा है, उनको थोड़ा अजीब सा लगेगा। यह तो ऐसे हुआ जैसे प्रकाश की परिभाषा के लिए अंधेरे को बीच में लाना पड़े। लिया जा सकता है, अड़चन नहीं है। हम कह सकते हैं, प्रकाश यानी अंधेरे का न होना। जहां बिल्कुल अंधेरा नहीं है। बुद्ध कहते हैं, वही, जहां बिल्कुल अंधेरा नहीं है। मगर वे प्रकाश शब्द को नहीं लेते।
उनके संकोच और भय का कारण भी स्पष्ट है। प्रकाश के नाम पर बहुत उपद्रव
मच चुका है। श्रद्धा के नाम पर बहुत अंधश्रद्धा फैल चुकी है। श्रद्धा के नाम पर श्रद्धा तो दूर, सिर्फ अंधविश्वासों के जाल इकट्ठे हो गए हैं। इसलिए बुद्ध को मजबूरी में कहना पड़ा, जिसके संदेह समाप्त नहीं हुए हैं, उस मनुष्य की शुद्धि असंभव है।
जहां संदेह हैं, वहां अशुद्धि रहेगी। संदेह कांटे की तरह चुभता रहेगा। प्राण शांत न हो सकेंगे। फिर तुम कुछ भी करो। तो बुद्ध ने वे सारी बातें गिना दी हैं जो तथाकथित तपस्वी करते रहे हैं। नंगे रहने से कुछ भी न होगा। जटाजूट धारण करने से कुछ भी न होगा। धूल लपेट लेने से, राख लपेट लेने से कुछ भी न होगा। उपवास करने से कुछ भी न होगा। कड़ी भूमि पर सोने से कुछ भी न होगा। उकडूं बैठने से कुछ भी न होगा। क्योंकि महावीर को उकडूं बैठे-बैठे समाधि उपलब्ध हो गयी थी तो कई नासमझ उकडूं बैठे थे कि चलो, महावीर को उकडूं बैठने से समाधि उपलब्ध हुई, उनको भी हो जाएगी। अभी भी बैठे हैं।
मूल क्रांति भीतर घटती है, बाहर से कुछ लेना-देना नहीं है। हां, ऐसा भी
हो सकता है कि कोई उकडूं बैठा हो और भीतर की घटना घट जाए। और ऐसा भी हो सकता है, कोई शीर्षासन कर रहा हो और भीतर की घटना घट जाए। ऐसा भी हो सकता है, कोई बैठा हो, कोई चल रहा हो और भीतर की घटना घट जाए। ये तो बाहर की सांयोगिक बातें हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है।
बुद्ध वटवृक्ष के नीचे बैठे थे, घटना घट गयी। तब से बौद्ध वटवृक्षों
के नीचे बैठ रहे हैं, कि शायद... । वृक्ष से क्या लेना-देना है? लोगों ने तीर्थ बना लिए हैं उन स्थानों पर जहां किसी को घटना घट गयी थी। वे वहां जा- जाकर बैठते हैं कि शायद... । असली बात देखो। भीतर की तरफ देखो।
तो बुद्ध का इशारा यह है कि संदेह समाप्त हो गए हों, भीतर से संदेह का उपद्रव मिट गया हो।
अगर भीतर थोड़ा भी संदेह है, तो तुम जो कुछ भी करोगे वह अधूरा-अधूरा होगा। नग्न रहोगे तो अधूरी नग्नता होगी। भीतर तो संदेह बना ही रहेगा, पता नहीं! उपवास करोगे तो अधूरा उपवास होगा; भीतर तो कोई कहता ही रहेगा, क्यों भूखे मर रहे हो? कहीं भूखे मरने से कुछ होता है? धूल लपेटोगे, लपेटते रहना, लेकिन हाथ अधूरे ही रहेंगे। पूजा करना, प्रार्थना करना, लेकिन सब अधूरा

रहेगा। पूरा चाहिए! जब हृदय पूरा का पूरा किसी कृत्य में लीन हो जाता है, वहीं प्रार्थना आविर्भूत हो जाती है।
तो बुद्ध कह रहे हैं, जब तक तुम सर्वांगीण समग्रता से, संदेहशून्य हुए कुछ न करोगे, कुछ भी न होगा।
बढ़ाओ कल्पना के जाल, तब भी स्वप्न बाकी हैं
लगाओ तर्क के सोपान, तब भी प्रश्न बाकी हैं
तुम कितनी ही सीढ़ियां लगाओ तर्क की, इससे कुछ हल न होगा। प्रश्न थोड़े पीछे ढकलते जाएंगे, बस। फिर-फिर खड़े हो जाएंगे। उत्तर चाहिए, तर्क की सीढ़ियों से क्या होगा? अनुमान करने से कुछ भी न होगा।
ईश्वर अनुमान नहीं है। तर्क ज्यादा से ज्यादा अनुमान है। ईश्वर अनुभव है। तुम अंधेरे में बैठे-बैठे अनुमान लगा रहे हो, सोच-विचार कर रहे हो, बड़ी चिंतना चला रहे हो, मगर तुम्हारी चिंतना से क्या होगा? तुम्हारे विचार से जल तो न मिलेगा, प्यास तो न बुझेगी! तुम कितने ही भवन बनाओ विचार के, सरोवर का कितना ही चिंतन करो, अनुमान करो--वर्षा न होगी। भूखे हो, भूखे रहोगे। सोचो खूब, छप्पन भोगों के संबंध में सोचो, थाल सजाओ कल्पना के... ।
बढ़ाओ कल्पना के जाल, तब भी स्वप्न बाकी हैं
लगाओ तर्क के सोपान, तब भी प्रश्न बाकी हैं
कुछ हल न होगा। अनुभव सुलझाता है। और अनुभव तभी हो सकता है जब भीतर के संदेह तुम हटाकर रख दो। संदेह अनुभव नहीं होने देता। इसीलिए तो इतने लोग मंदिरों-मस्जिदों में, गुरुद्वारों में प्रार्थना कर रहे हैं, और सब प्रार्थना न मालूम कहां खो जाती है। उस प्रार्थना से कहीं कोई जीवन की दीप्ति पैदा नहीं होती। उस प्रार्थना से कहीं ऐसा नहीं लगता कि प्राण निखरे, उज्ज्वल हुए। मंदिर से लौटता हुआ आदमी थका हुआ मालूम पड़ता है, कोई जीवन की ऊर्जा लेकर नाचता हुआ लौटता नहीं मालूम होता। प्रार्थना की ही नहीं, मंदिर हो आया है। झुका?
बेफायदा है सिज्दागुजारी सुबह-ओ-शाम
जब दिल ही झुक सका न सरे-बंदगी के साथ
सिर झुकाते रहो, कवायद होगी, जो थोड़ा-बहुत लाभ हो सकता है व्यायाम से, जरूर होगा।
बेफायदा है सिज्दागुजारी सुबह-ओ-शाम
जब दिल ही झुक सका न सरे-बंदगी के साथ
सिर झुके तब दिल भी झुके। दिल झुके तब सिर भी झुके। तुम पूरे-पूरे झुको, अधूरे-अधूरे नहीं। फिर तुम जहां झुक जाओ, वहीं मंदिर है। और तुम जिसके सामने झुक जाओ, वही परमात्मा है। तुम पत्थर के सामने झुको तो परमात्मा है। और अभी तुम परमात्मा के सामने भी झुको तो पत्थर है। क्योंकि परमात्मा तुम सृजन करते हो। वह तुम्हारे भावों से निर्मित होता है। वह तुम्हारी ऊंचाई है, तुम्हारी उड़ान है। तुम्हीं जब जमीन पर सरक रहे हो, तो तुम्हारे सामने जो भी है वह पत्थर है। तुम जब उड़ोगे, तब तुम्हारे सामने जो भी होगा वह परमात्मा होगा।
बुद्ध श्रद्धा की बात नहीं करते, लेकिन मतलब वही है। फिर तुम उलटे- सीधे कुछ भी करते रहो। आदमी ने कितनी-कितनी चेष्टाएं नहीं की हैं!
मैंने सुना है, एक बड़ी पुरानी चीनी कथा है। एक फकीर के पास, एक सिद्धपुरुष के पास तीन युवक आए। वे तीनों सत्य के खोजी थे और उन तीनों ने चरणों में सिर रखा और कहा कि हम सत्य के तलाशी हैं। हम बहुत दूर-दूर भटक आए हैं, अब आपकी शरण आए हैं। हमारी प्रार्थना है कि यह हमारी मंजिल हो, कहीं और न जाना पड़े।
उस फकीर ने उन तीनों को गौर से देखा। उसने अपने झोले में से तीन स्वर्णपात्र निकाले, एक-एक तीनों को दे दिया और कहा ये बातें पीछे हो लेंगी, इन पात्रों को साफ कर लाओ, स्वच्छ कर लाओ। पहले ने पात्र को गौर से देखा। पात्र स्वच्छ ही था, ऐसा उसे लगा; क्योंकि गंदे पात्रों से ही पानी पीने की उसे आदत थी। वस्तुतः इतना स्वच्छ पात्र उसने कभी देखा ही न था। पात्र स्वच्छ न था, लेकिन उसका सारा अनुभव गंदे पात्रों का था, उनकी तुलना

में यह स्वच्छ ही मालूम हुआ। सोने का था। सोने ने ही उसे चकाचौंध से भर दिया। वह तो पात्र रखकर वहीं बैठ गया।
दूसरे ने गौर से पात्र को देखा, उठा, बाहर की तरफ गया, नदी की तरफ पहुंचा, किनारे पर जाकर नदी के, उसने खूब रगड़-रगड़ कर पात्र को धोया। रेत से रगड़ा, फिर भी तृप्ति न हुई तो पत्थरों से रगड़ने लगा। उसने रगड़ ही डाला पात्र को। वह पानी भरने योग्य भी न रह गया। उसने सफाई बिल्कुल कर दी। उसमें छेद हो गए। सोने का नाजुक पात्र था, उसने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जैसे कोई लोहे के पात्र को साफ कर रहा हो। जिद्दी था। जब गुरु ने कह दिया तो उसने इसको अहंकार बना लिया कि साफ ही करके ले जाऊंगा। उसने सफाई ऐसी की कि पात्र ही न बचा! जब वह लौटकर आया तो उसकी शकल पहचाननी मुश्किल थी। तीसरे ने गौर से पात्र को देखा, खीसे से रूमाल निकाला, भीतर गया घर में, पानी में भिगाया और उस गीले वस्त्र से आहिस्ते से उस पात्र को साफ किया, वापस लाकर बैठ गया।
उस फकीर ने तीनों के पात्र देखे। पहले के पात्र पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। लेकिन उसे मक्खियां दिखायी भी नहीं पड़ रही थीं, क्योंकि मक्खियों में ही जीया था। उसके चेहरे पर भी भिनभिना रही थीं, वह उनको भी नहीं उड़ा रहा था। गुरु ने कहा कि तू जरा गौर से तो देख, तूने पात्र साफ नहीं किया। मैंने कहा था... । उसने कहा, पात्र साफ है, अब और क्या साफ करना! सुंदर पात्र है, और क्या करना है! गुरु ने कहा, देख, मक्खियां भिनभिना रही हैं। उसने कहा कि वे तो इसलिए भिनभिना रही हैं... वे तो फूलों पर भी भिनभिनाती हैं, इससे क्या फूल गंदे हैं? वे तो पात्र की मधुरता के कारण भिनभिना रही हैं।
दूसरे से कहा, पानी भर। पहले का पात्र तो पानी भरने योग्य ही न था, गंदा था। दूसरे ने पानी भरा, लेकिन पानी बह गया। उसने सफाई जरूरत से ज्यादा कर दी थी। पात्र ही नष्ट कर लाया था।
कहते हैं, गुरु ने दो को विदा कर दिया, तीसरे को स्वीकार कर लिया। तीसरे ने पूछा कि मैं समझा नहीं। यह क्या हुआ? यह लेन-देन क्या है? यह राज क्या है इन पात्रों के बांटने का और चुनने का? उसके गुरु ने कहा, पहला भोगी है, गंदगी में रहने का आदी हो गया है। उसका शरीर मक्खियों से भिनभिना रहा है। वह उसको ही मिठास समझ रहा है, सौंदर्य समझ रहा है। अभी आत्मा उसके जीवन में जग सके, इसकी संभावना नहीं। दूसरा त्यागी है, हठयोगी है। तोड़-फोड़कर आ गया।
नग्न बैठे हैं, उपवास कर रहे हैं, उकडूं बैठे हैं, शीर्षासन कर रहे हैं, भूखे हैं, प्यासे हैं, धूप में शरीर को जला रहे हैं, कांटों पर लेटे हैं, राख रमाए बैठे हैं, गरमी की भरी दुपहरी है, आग जलाए, धूनी रमाए बैठे हैं; सर्दी की रातें हैं, बर्फीली जगह में नंगे बैठे कंप रहे हैं। पात्र को नष्ट कर रहे हैं। पात्र बहुत नाजुक है। सोने से ज्यादा नाजुक है तुम्हारी देह। सोना भी इतना नाजुक नहीं; आखिर धातु धातु है। देह बड़ी नाजुक है। स्वर्णमंदिर है तुम्हारी देह। उसके साथ दो दुर्व्यवहार हो सकते हैं। एक तो दुर्व्यवहार है जो भोगी करता है, और दूसरा दुर्व्यवहार है जो त्यागी करता है।
उस तीसरे को चुन लिया गया। वह योग्य था, क्योंकि वह समत्व को उपलब्ध था, वह मध्य में था। उसने न तो एक अति की, न दूसरी अति की। वह होशपूर्वक चीज को देखा और समझा। पात्र गंदा भी था, साफ भी किया। इतना साफ भी न किया कि पात्र नष्ट हो जाए, क्योंकि ऐसी सफाई का क्या फायदा! ऐसी औषधि का क्या फायदा कि मरीज ही मर जाए!
बुद्ध का सारा संदेश मज्झिम निकाय का है, मध्यमार्ग का है। बुद्ध कहते हैंः न भोग, न त्याग, बीच में ठहर जाना है।
अगर तुम बेहोश हो तो तुम भोगी रहोगे। अगर तुम बेहोशी से बहुत ज्यादा क्रोध में आ गए, प्रतिक्रिया में आ गए--बेहोशी तो न छोड़ी, संसार से भाग खड़े हुए--तो बेहोशी नया उपद्रव खड़ा कर लेगी। उपद्रव बदल जाएगा। अब तुम शरीर के दुश्मन हो जाओगे। पहले शरीर के पीछे दीवाने थे, अब शरीर के शत्रु हो जाओगे। पहले सोचते थे शरीर से स्वर्ग मिलेगा, अब सोचोगे कि शरीर को कष्ट

देने से ही स्वर्ग मिलने वाला है। भाषा विपरीत हो गयी, लेकिन तुम जागे नहीं। कहीं बीच में खड़े होना है।
जागरण मध्य में ले आता है, वह अति नहीं है।
त्यागी तो ऐसा आदमी है जो विनाश को आतुर हो गया है, नाराज है। भोग से न पाया, इसलिए नाराज है। यह तो नहीं समझ रहा है कि मेरी भूल थी; यह समझ रहा है कि भोग की भूल थी। यह तो न समझा कि मैं शरीर के साथ जरूरत से ज्यादा जुड़ा था, शरीर का ही दुश्मन हो गया। छोटे बच्चों जैसा व्यवहार कर रहा है। दरवाजे से टकरा जाता है बच्चा, तो दरवाजे को मारता है। बालबुद्धि है, बालो! मूढ़ है, सोचता है, दरवाजे का कोई कसूर है। यह खतरनाक काम है। यह दोस्ती खतरनाक है बेहोशी से।
मैं एक कहानी पढ़ता था। एक सूफी फकीर के पास एक भालू था। जंगल से गुजर रहा था और छोटा सा भालू का बच्चा मिल गया। बड़ा प्यारा था। उसने उसे पाल लिया। वह बड़ा हो गया। वह उसकी सेवा भी करता था, भालू। एक दुपहरी की बात, फकीर बहुत थका-मांदा था, यात्रा से लौटा था, घर में कोई भी न था। बिना सूचना दिए घर आ गया था, कोई शिष्य मौजूद न था। भालू ही था। तो उसने भालू से कहा कि देख तू बैठ जा, किसी को भीतर मत आने देना, मुझे विश्राम करना है। कोई बाधा मुझ पर न पड़े, मैं बहुत थका हूं और एक चार-छह घंटे की नींद अत्यंत अनिवार्य है। तो भालू बैठ गया दरवाजे पर पहरा देने। फकीर सो गया।
एक मक्खी बार-बार आकर उसकी नाक पर बैठने लगी। उस भालू ने अपना पंजा उठाकर कई दफे उस मक्खी को उड़ाया। फिर आखिर भालू भालू था। उसको इतना गुस्सा आया! क्योंकि वह मक्खी बार-बार जिद्द करने लगी--मक्खियां बड़ी जिद्दी-- जितना वह भगाने लगा वह वापस उसकी नाक पर बैठने लगी आकर। उसने एक गुस्से में इतना झपट्टा मारा कि नाक भी उसने अलग कर दी। फकीर की जब नाक कट गयी तब उसने अपने शिष्यों को कहा कि भालू की दोस्ती ठीक नहीं।
बेहोशी की दोस्ती भालू की दोस्ती है। पहले भोग में उलझाता है, फिर जब भोग से ऊबता है तो नाक तुड़वा डालता है। पहले शरीर के पीछे भटकाता है, फिर शरीर की दुश्मनी में भटकाता है; लेकिन भटकन जारी रहती है।
संसार नहीं छोड़ना है, बेहोशी छोड़नी है।
फरार का यह नया रूप है अगर हम लोग
चिराग तोड़ के नूरे-कमर का जिक्र करें
यह भी एक पलायन है। जिसको हम त्याग कहते हैं, भगोड़ापन है। और यह ऐसा ही मूढ़तापूर्ण है, जैसे कोई कहे कि हम तो दीए को तोड़ देंगे, तब हम रोशनी की चर्चा करेंगे। दीए को तोड़कर जैसे कोई चांद की रोशनी की चर्चा करने की जिद्द करे। दीए में भी चांद की ही रोशनी है। कितनी ही भिन्न हो, चांद की ही रोशनी है। शरीर में कितना ही भिन्न जीवन हो, तुम्हारा ही जीवन है; परमात्मा का ही आविष्ट भाव है।
फरार का यह नया रूप है अगर हम लोग
चिराग तोड़ के नूरे-कमर का जिक्र करें
त्यागी वही कर रहा है। वह भगवान का जिक्र कर रहा है, लेकिन भगवान की देन को तोड़ता है।
"अलंकृत रहते हुए भी यदि कोई धर्म का आचरण करता है; शांत, दान्त और नियत ब्रह्मचारी है तथा प्राणिमात्र के लिए दंड का जिसने परित्याग कर दिया है, वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है।"
"अलंकृत रहते हुए भी... ।"
राजसिंहासन पर बैठे-बैठे भी परमात्मा की उपलब्धि हो सकती है।
"अलंकृत रहते हुए भी... ।"
अलंकतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू।।

बुद्ध का यह वचन चौंकाएगा बौद्ध भिक्षुओं को भी। धम्मपद रोज पढ़ते हैं, लेकिन इसे शायद पढ़ते नहीं। अलंकृत रहते हुए भी! ठीक संसार में रहते

हुए भी! न धूल रमाने की जरूरत, न उकडूं बैठ जाने की जरूरत, न उपवास करने की जरूरत; असली जरूरत कुछ और है--वह है शांत होने की जरूरत, शमन करने की जरूरत; भीतर जो तूफान हैं, उन्हें विसर्जित करने की जरूरत; भीतर जो कामवासना का ज्वर है, ऊर्जा जो विक्षिप्त घूम रही है भीतर, उसे नियत, अनुशासित करने की जरूरत; उसी को वे ब्रह्मचर्य कहते हैं।
ब्रह्मचर्य का अर्थ यह नहीं है, कामवासना से लड़ना। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, कामवासना को समझ लेना। शांति का अर्थ नहीं है, अशांति से लड़ना। शांति का अर्थ है, अशांति को समझ लेना। समझ शांत कर देती है।
"वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है।"
ब्राह्मण तो भारत की पुरानी संस्कृति है। श्रमण जैनों के लिए प्रयोग किया गया शब्द है। वह भारत की दूसरी बहुमूल्य संस्कृति की धारा है। और भिक्षु बुद्ध अपने संन्यासियों के लिए कह रहे हैं।
"लोक में कोई ही पुरुष होता है जो स्वयं लज्जा करके अकुशल को, वितर्क
को नहीं करता। जिस तरह उत्तम घोड़ा कोड़े को नहीं सह सकता, उसी तरह वह निंदा को नहीं सह सकता है। कोड़े दिखाए गए उत्तम घोड़े की भांति उद्यमी, संवेगवान होओ! श्रद्धाशील, वीर्य, समाधि, धर्मविनिश्चय, विद्या, आचार और स्मृति से संपन्न होकर इस महान दुख को पार कर सकोगे।"
लोक में कोई ही ऐसा विरला पुरुष है, बुद्ध कहते हैं, जो लज्जावान है।
जो सोचता है और अपनी मूर्च्छित दशा पर लज्जित है। जो बूझता है और अपनी अवस्था को देखकर चकित होता है, हैरान होता है--यह मैं क्या कर रहा हूं! यह मुझसे क्या हो रहा है!
जो अपने प्रति थोड़ा भी जागने लगा, वह लज्जित होने लगेगा! इस फर्क को समझना जरूरी है। तुम साधारणतः अपराध अनुभव करते हो, लज्जा नहीं। लज्जा बड़ी अलग बात है, अपराध बड़ी अलग बात है।
अपराध का मतलब होता है, तुम डरे हो कि कहीं पकड़े न जाओ। अपराध का मतलब होता है कि करना तो तुम यही चाहते थे, लेकिन परमात्मा, राज्य, कानून, समाज, धर्म इसके विपरीत हैं। अपराध का मतलब होता है कि अगर तुम्हें पूरी स्वतंत्रता होती और तुम्हें कोई दंड देने वाला न होता, कोई निंदा करने वाला न होता, तो तुम यही करते, मजे से करते। लेकिन बड़ी मुश्किल है, दंड है, सजा है। और अगर यहां बच जाओगे तो परलोक में न बच सकोगे; वहां का डर है। अपराध का अर्थ है, करना तो तुम यही चाहते हो, लेकिन दूसरे नहीं करने दे रहे हैं। और पकड़े जाने का भय है।
इसे समझना। मैं स्कूल में विद्यार्थी था, तो मेरे उस स्कूल में एक बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति शिक्षक थे। वे मुसलमान थे; और जिन शिक्षकों के करीब मैं आया उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। हमेशा वे परीक्षा के समय में सुपरिटेंडेंट होते थे। सबसे बुजुर्ग आदमी थे। जब पहली दफा मैं परीक्षा दिया और वे सुपरिटेंडेंट थे, तो मैं बड़ा चकित हुआ। वे अंदर आए और उन्होंने कहा कि बेटो, अगर चोरी करनी हो, करना; पकड़े मत जाना। हम पकड़े जाने के खिलाफ हैं। अगर तुम्हें नकल करनी हो दूसरे की, कुशलता से करना। पकड़े गए, तो मुझसे बुरा कोई नहीं; न पकड़े गए, तुम्हारा सौभाग्य! अगर तुम्हें भरोसा न हो, डर हो कि पकड़े जाओगे, तो दे दो जो भी तुम ले आए हो छिपा कर।
अनेक लड़कों ने निकालकर अपनी चीजें दे दीं, क्योंकि यह आदमी बड़ा खतरनाक मालूम हुआ। यह बिल्कुल सीधी-सीधी बात कह रहा है, बात बिल्कुल साफ कह रहा है। हमें कुछ तुम्हें... तुम गलती कर रहे हो, इससे हमें मतलब नहीं है; गलती तभी है जब पकड़ी जाए। अगर तुम बचकर निकल सकते हो, मजे से निकल जाओ। मगर हम भी पूरी कोशिश करेंगे पकड़ने की।
अपराध का मतलब यही होता है कि तुम्हें पकड़े जाने का डर है; पकड़े जाने
की संभावना से तुम पीड़ित हो। और इसीलिए समाज ने कानून बनाया है, पुलिस बनायी है, अदालत बनायी है, मजिस्ट्रेट बिठाया है। और इतने से भी काम नहीं चलता है, क्योंकि इतने से भी तुम धोखा दे सकते हो। आखिर ये सब आदमी हैं, तुम भी आदमी हो। तो कितने ही कुशल बिठा दो तुम न्यायाधीश, आखिर चोर भी उतनी ही कुशलता खोज सकता है। कितने ही कुशल तुम बिठा दो पुलिस वाले, लेकिन चोर भी ज्यादा कुशल हो सकता है।

सच तो यह है कि पुलिस वाले को तुम कितना पैसा देते हो! तुम कोई बहुत कुशल आदमी नहीं पा सकते। मजिस्ट्रेट को भी तुम क्या देते हो! अगर कोई कुशल आदमी होगा, तो मजिस्ट्रेट होना पसंद न करेगा। उसके लिए जिंदगी में और बड़े मुकाम हैं। वह जिंदगी में और ज्यादा पा सकता है। मजिस्ट्रेट जो जिंदगीभर में पाएगा, वह एक दांव में पा सकता है।
तो जो असली होशियार लोग हैं, वे तो बाहर रह जाते हैं। उनसे तुम कैसे बचाओगे? वे कोई न कोई रास्ता निकालते रहेंगे। वे कानून में से दांव-पेंच निकालते रहेंगे। तो फिर समाज ने भगवान की कल्पना की है, कि अगर तुम यहां से बच जाओगे तो अगले लोक में न बच सकोगे। अगर तुम पुलिस वाले की आंख से बच जाओगे तो परमात्मा की आंख से न बच सकोगे। ध्यान रखना, वह हमेशा देख रहा है, वह हर जगह देख रहा है। तुम जब अंधेरे में चोरी कर रहे हो, तब भी वह मौजूद है। वहां तो लिखा जा रहा है।
तो समाज ने अंतःकरण पैदा किया तुम्हारे भीतर, ताकि तुम अगर बच भी जाओ
तो भी बिल्कुल न बच जाओ; भीतर कोई कहता ही रहे कि कहीं पकड़े न जाओ, कहीं यह हो न, आज नहीं कल! और जब मौत करीब आने लगेगी, तब तुम घबड़ाने लगोगे कि अब आने लगा मरने का वक्त, अब सामने खड़ा होना होगा, और जिंदगीभर जो किया था अब उसका क्या हिसाब! हिसाब देना पड़ेगा। तो जो आदमी बच भी जाता है समाज से, वह भी अपनी आंखों से नहीं बच पाता।
अपराध का मतलब है, करना तो तुम चाहते थे, बुरा भी तुम न मानते थे, लेकिन समाज ने तुम्हें मजबूर किया बुरा मानने को।
लज्जा बड़ी और बात है। लज्जा का मतलब हैः सारा समाज भी कहता हो कि झूठ स्वीकार है, चोरी स्वीकार है, पाप स्वीकार है; फिर भी तुम अनुभव करते हो कि भूल है, गलत है। इसलिए नहीं कि कोई दंड देने वाला है; इसलिए नहीं कि कोई परमात्मा के सामने तुम्हें जवाबदार होना पड़ेगा; इसलिए भी नहीं कि कोई अपराध है; सिर्फ इसलिए कि तुम्हारे आत्मगौरव के अनुकूल नहीं, यह तुम्हारे होने के अनुकूल नहीं; यह तुम्हारी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है। यह किसी और के सामने तुम्हें नहीं गिरा रहा है, यह अपनी ही आंखों में गिराए जा रहा है। इसलिए लज्जा बड़ी और बात है। लज्जा बड़ा धार्मिक गुण है। अपराध ज्यादा
से ज्यादा तुम्हें गैरकानूनी होने से रोकेगा; नैतिक बना देगा, लेकिन धार्मिक नहीं। लज्जा तुम्हें धार्मिक बनाएगी।
बुद्ध कहते हैं, लेकिन विरले हैं ऐसे पुरुष जिनके मन में न करने योग्य चीज को करने से लज्जा पैदा होती है। पर ऐसा ही सभी को होना चाहिए।
"जिस तरह उत्तम घोड़ा कोड़े को नहीं सह सकता।"
यह उसका अपमान है। तुम उत्तम घोड़े पर कोड़ा मत चलाना, उसकी जरूरत नहीं है। बुद्ध ने कहा है, घोड़े की आत्मा के सामने सिर्फ कोड़े की छाया काफी है। कोड़ा मत उठाना, कोड़े की छाया पर्याप्त है। उत्तम घोड़े को इशारा काफी है। तुम्हारे भीतर अगर थोड़ी भी लज्जा है, थोड़ी भी मनुष्य की महिमा का भाव है, थोड़ा भी आत्मगौरव है, अगर तुम्हें थोड़ा भी ऐसा लगता है कि यह जीवन एक महान अवसर है, एक महान संपदा है, एक प्रसाद है, इसे मैं क्षुद्रता में न गंवाऊं, तो बुद्ध कहते हैं, घोड़े की तरह, उत्तम घोड़े की तरह, तुम भी लज्जावान बनना। सुना है मैंने, अकबर के जीवन में उल्लेख है कि चार वजीरों ने कुछ पाप किया। पकड़े गए। चारों को उसने बुलाया। पहले को उसने बुलाया और कहा कि ऐसा मैंने कभी सोचा न था कि तुम करोगे! बस इतना ही कहा। कहा जाओ! उस आदमी ने जाकर घर में आत्महत्या कर ली। यह किसी के सामने भी न कहा था, यह बिल्कुल एकांत में हुआ था। इतना ही कि ऐसा मैंने कभी सोचा भी न था कि तुम! तुम!! और कर सकोगे! बस बात खतम हो गयी।
दूसरे को उसने कारागृह में डलवा दिया--आजन्म। वह घर आया। उसने कहा, घबड़ाओ मत, शाम को मैं पकड़ा जाऊंगा लेकिन तब तक मैं इंतजाम किए लेता हूं। हर जगह से निकलने का उपाय है, जहां जाने का उपाय है, वहां से बाहर आने का उपाय है। घबड़ाओ मत। आजन्म कारावास! लेकिन वह जेलखाने में भी जाकर बाहर निकलने का उपाय खोजता रहा।

तीसरे आदमी को फांसी की सजा दी है। वह आदमी रिश्वत खिलाकर भाग निकला। चौथे आदमी को काला मुंह करके गधे पर बिठाकर पूरी राजधानी में घुमवाया। मगर वह गधे पर ऐसा अकड़ से बैठा रहा जैसा शोभायात्रा निकली हो!
किसी ने अकबर को पूछा कि एक ही दंड था, चारों ने मिल कर एक पाप किया था,
एक ही जुर्म किया था, इतना अलग-अलग व्यवहार क्यों? उसने कहा, वे अलग-अलग लोग थे। पहले आदमी से मैंने इतना भी कहा, उसके लिए मैं पछताता हूं। यह भी नहीं कहना था। यह कोड़े की छाया भी ज्यादा पड़ गयी। उसने घर जाकर आत्महत्या कर ली, बात खतम हो गयी। मैं पछताता हूं, मुझसे भूल हो गयी। मैं आंक न पाया ठीक से कि यह आदमी कितना बहुमूल्य है। यह बात ही न उठानी थी। सिर्फ उसे उठाकर मैं एक आंख देख लेता और घर भेज देता, बस उतना काफी था, कुछ कहना नहीं था। मैंने बुलाया, कुछ कहना चाहता था और नहीं कहा, इतना काफी हो जाता। उसे जरूरत से ज्यादा दंड हो गया। इसका मुझे पछतावा है।
दूसरे आदमी को आजन्म भेजा है, लेकिन मुझे खबरें मिल रही हैं कि वह रिश्वत खिलाकर भाग निकलने की कोशिश कर रहा है, जेल के बाहर आने की; बेशर्म है। उसे अगर और भी ज्यादा सजा दी जाए तो थोड़ी होगी। तीसरे आदमी को फांसी की सजा दी; लेकिन वह भाग निकला। जैसे किसी तरह का आत्मगौरव नहीं है। चौथे को गधे पर निकलवाया है, लेकिन सुनते हैं, वह घर ऐसा लौटा है जैसे शोभायात्रा निकली हो। बड़ा प्रसन्न है कि सारी राजधानी ने जान लिया। शान से बैठा था, बड़ी भीड़ साथ चल रही थी।
कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा ही।
बुद्ध कहते हैं, लज्जावान। वह जो पहला आदमी है, उत्तम घोड़े की भांति, कोड़े की छाया बस काफी है। ऐसे बनो--कोड़े दिखाए गए उत्तम घोड़े की भांति उद्यमी, संवेगवान, संवेदनशील।
"श्रद्धा, शील, वीर्य, समाधि, धर्मविनिश्चय, विद्या और आचार तथा स्मृति से संपन्न होकर इस महान दुख को पार कर सकोगे।"
एक-एक शब्द बहुमूल्य है। श्रद्धा से बुद्ध का अर्थ हैः संदेहशून्य चित्त की अवस्था। वैसा मत सोचना जैसा तुमने श्रद्धा से सोचा है। जब बुद्ध कहते हैं श्रद्धा, तो उनका यह मतलब नहीं हैः किसी पर श्रद्धा। उनका यह मतलब नहीं हैः परमात्मा पर श्रद्धा, या स्वयं बुद्ध पर श्रद्धा। नहीं, उनका मतलब केवल इतना है, संदेहशून्य अवस्था, जहां कोई संदेह नहीं। अगर इसको तुम ठीक से समझो तो इसका अर्थ होगाः अपने पर श्रद्धा, आत्मश्रद्धा। शील! इस आत्मश्रद्धा की अवस्था से, इस अपने पर भरोसे की अवस्था से जो आचरण निकले, वही शील। लज्जा की प्रतीति से जो आचरण निकले, वही शील।
वीर्य! और इस शील पर अगर तुमने जीवन को ढाला--श्रद्धा, आत्मश्रद्धा, उससे उठा हुआ शील, आचरण--अगर इस आचरण में तुमने जीवन को ढाला तो तुम अपने को सदा ऊर्जस्वी पाओगे। तुम पाओगे तुम्हारे ऊपर अनंत ऊर्जा बरस रही है, कभी कम नहीं होती।
कुशील व्यक्ति सदा ही हारा हुआ, थका हुआ पाता है। सभी वासनाएं थकाती हैं, विचलित करती हैं, उजाड़ जाती हैं। तुम कभी भरे-पूरे नहीं हो पाते, तुम सदा खाली-खाली, रिक्त-रिक्त रहते हो, जैसे कि पात्र में कई छेद हों। कुएं से पानी भी भरते हो तो शोरगुल बहुत मचता है, लेकिन जब पात्र लौटता है कुएं से तो खाली का खाली आ जाता है। पानी भरता है, लेकिन भरा आ नहीं पाता।
जिस व्यक्ति के जीवन में व्यर्थ, अकुशल, न करने योग्य काम समाप्त हो
गए हैं; जो वही करता है जो करने योग्य है, होशपूर्वक करता है; जो अपने कर्म में जागरूक है, उसके जीवन में वीर्य उत्पन्न होता है, ऊर्जा उत्पन्न होती है। वह महा शक्तिशाली हो जाता है। उसके पास इतना होता है कि बांट सकता है। उसके पात्र से शक्ति बहने लगती है, दूसरों पर बरसने लगती है। और ऐसी ही ऊर्जा की दशा में समाधि संभव है। थके-थके, हारे-हारे, टूटे-टूटे, समाधि संभव नहीं है।
फूल वृक्ष में आते हैं तभी जब वृक्ष के पास जरूरत से ज्यादा ऊर्जा होती है। तुम्हारे जीवन में भी मेधा तभी प्रगट होती है, जब तुम्हारे पास जरूरत से ज्यादा ऊर्जा होती है। मेधा फूल की भांति है, और समाधि तो परम फूल है, आखिरी फूल है।

अगर बुद्धपुरुष तुम्हारी कामवासना, तुम्हारे क्रोध, तुम्हारे लोभ-मोह के विपरीत हैं, तो सिर्फ इसीलिए कि उनके माध्यम से तुम्हारी शक्ति क्षीण होती है, परम फूल नहीं खिल पाता। तुम दीन-दरिद्र रह जाते हो। भिक्षा- पात्र ही तुम्हारी आत्मा बन पाती है, कमल नहीं बन पाती।
समाधि, धर्मविनिश्चय! और जो समाधि को उपलब्ध हुआ, उसे धर्म का साक्षात्कार होता है। वही निश्चित कर पाता है क्या धर्म है। एस धम्मो सनंतनो उसी का साक्षात्कार है।
विद्या! शास्त्रों से नहीं मिलती विद्या। जिसने उस सनातन नियम को जान लिया, वही विद्यावान है, वही ज्ञानी है।
और आचार! शील और आचार में फर्क है। शील तब तक कहते हैं चरित्र को जब तक तुम जागकर उसे साध रहे हो। आचार तब कहते हैं जब तुम्हें जागे रहने की भी जरूरत न रही, स्वाभाविक हो गया। इसलिए जो आचार को उपलब्ध है, उसे शास्त्र आचार्य कहते हैं। आचार्य का अर्थ है, जिसके जीवन में अब चेष्टा न रही। अगर वह प्रेम देता है तो चेष्टा से नहीं। कुछ और दे ही नहीं सकता, बस प्रेम ही दे सकता है। अगर वह अपना ध्यान बांटता है, तो चेष्टा से नहीं। उसके पास ध्यान है लबालब, वह बहा जा रहा है।
शील तब तक है जब तक थोड़ी चेष्टा हो, आचार तब है जब चेष्टा भी चली जाए। अभी तुम जैसे बिना किसी चेष्टा के क्रोध करते हो, ऐसे ही वह करुणा करता है। अभी तुम जैसे बिना किसी चेष्टा के कामवासना से भरते हो, ऐसे ही वह प्रेम के फूल खिलते हैं उसमें। अभी जैसे बिना किसी चेष्टा के तुम दूसरे को दुख देने में रस लेते हो, ऐसा ही वह दूसरे को सुख देने में रस लेता है।
"आचार तथा स्मृति से संपन्न होकर।"
स्मृति का अर्थ है, जो मैंने तीसरी बात तुमसे कही प्रारंभ में। कर्म
का होश, पहला चरण; कर्ता का होश, दूसरा चरण; फिर साक्षी का होश। उसको स्मृति कहते हैं बुद्ध--आत्मस्मरण। जिसको नानक, कबीर, दादू सुरति कहते हैं, वह बुद्ध का ही शब्द है, स्मृति, जो धीरे-धीरे विकृत हो गया। कबीर तक आते-आते लोकभाषा का हिस्सा बन गया और सुरति हो गया। वह आखिरी घड़ी है। जब तुम्हारे भीतर का दीया जलता है सतत, अविच्छिन्न। उठो, बैठो; सोओ, जागो; कुछ भी करो, कुछ चेष्टा नहीं--भीतर का दीया जलता ही रहता है। वह प्रकाश तुम्हारे चारों तरफ फैलता ही रहता है। उस प्रकाश का नाम--स्मृति।
"इनसे संपन्न होकर इस महादुख को पार कर सकोगे।"
अगर इस गुलशने-हस्ती में होना ही मुकद्दर था
तो मैं गुंचों की मुट्ठी में दिले-बुलबुल हुआ होता
किसी भटके हुए राही को देता दावते-मंजिल
बयाबां की अंधेरी शब में जोगी का दीया होता
होने योग्य तो एक ही बात है, वह जोगी का दीया है!
किसी भटके हुए राही को देता दावते-मंजिल
बयाबां की अंधेरी शब में जोगी का दीया होता
अगर होना ही मेरी नियति थी, तो कवि ने कहा है, कि कुछ ऐसी बात होती कि अंधेरी रात में यात्रियों को परम लक्ष्य की तरफ जाने का निमंत्रण बनता। कुछ ऐसी बात होती कि अंधेरी रात में जोगी का दीया होता। जिसको बुद्ध स्मृति कहते हैं, वही है जोगी का दीया।
हो सकते हो। तुम्हारे अतिरिक्त कोई और बाधा नहीं है। इसलिए होने में अड़चन नहीं है। होना चाहो तो हो सकते हो। जो एक को संभव हुआ है, वह सबके लिए संभव है। जो एक मनुष्य के जीवन में दीया जला है, वह सभी मनुष्यों के जीवन में वह दीया जल सकता है। हां, अगर तुम्हीं उसे फूंककर बुझाए चले जाओ... ! मैं तुमसे कहता हूं कि वह दीया जलने की बहुत कोशिश करता है, तुम फूंक-फूंककर बुझाए चले जाते हो। तुम जलने नहीं देते। और फिर तुम दुख और धुएं से भरे जीते हो, तो रोते-चिल्लाते हो।
बंद करो रोना-चिल्लाना! शिकायत छोड़ो! यहां कोई भी नहीं है जिससे शिकायत हो सके। यहां कोई नहीं है जिसको दोष दिया जा सके। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई उत्तरदायी नहीं है। जिम्मा लो! जागो! और अपने जीवन का सूत्र अपने हाथ में सम्हालो! थोड़ी-थोड़ी रोशनी बढ़ने लगेगी। आज जो बूंद-बूंद

की तरह होगी, कल सागर हो जाता है। संदेह छोड़ो अपने पर। हटाओ व्यर्थ संदेह के जाल को। क्योंकि संदेह से भरे तुम कुछ भी न कर पाओगे, तुम कुछ भी न हो पाओगे।
बहुत लोग सिर्फ जीते हैं, कुछ हो नहीं पाते। जीते हैं और मरते हैं; उनके भीतर कुछ परम जीवन की झलक नहीं आ पाती। आ सकती थी। मगर कोई जबर्दस्ती नहीं ला सकता है। तुम ही ला सकते हो, बस तुम ही ला सकते हो।
इसलिए समय खराब मत करो--न किसी की शिकायत में, न किसी को दोष देने में,
न उत्तरदायित्व टालने में; सारी शक्ति को एक बात पर संलग्न करो, एक सूत्र पर कि तुम जागने लगो! कुछ भी करो, एक बात ध्यान रखो कि जागकर करेंगे। हजार बार हारोगे, कोई फिकर नहीं; एक हजार एकवीं बार जीत जाओगे। चट्टान भी टूट जाती है। और यह चट्टान तो केवल तुम्हारी ही आदतों की है। ज्योति की धार जरा इस पर बहने दो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 5
इन्कावनवां प्रवचन

आत्म-स्वीकार से तत्क्षण क्रांति

पहला प्रश्नः अकारण जीने की कला का सूत्र क्या है? कृपा करके कहें।

कारण से जीयो या अकारण जीयो, हर हालत में तुम अकारण ही जीते हो। कारण भला तुम खोज लो, कारण है नहीं। कारण तुम्हारा ही आरोपण है। इसे समझने की कोशिश करो।
जीवन कहीं जा नहीं रहा है, जीवन है। जीवन का कोई भविष्य नहीं है, बस वर्तमान है। वर्तमान ही एकमात्र अस्तित्व का ढंग है।
तुम जन्मे, क्या कारण है? पूछोगे, उलझोगे। पूछोगे तो कोई न कोई प्रश्न
का उत्तर देने वाला भी मिल जाएगा; कोई न मिलेगा तो तुम खुद ही अपने मन को कोई उत्तर देकर समझा लोगे। ऐसे ही तो सारे दर्शनशास्त्र निर्मित हुए हैं। आदमी ने पूछा--उत्तर देने वाला कोई भी नहीं है--आदमी ने ही पूछा, आदमी ने ही उत्तर दे लिए। फिर प्रश्नों की पीड़ा से बचने के लिए उत्तरों को सम्हालकर रख लिया, संजोकर रख लिया, मंजूषाएं बना लीं--वेद बने, कुरान-बाइबिल बनी। आदमी की बेचैनी समझ में आती है। उसे लगता है, क्यों? कारण होना चाहिए!
पर तुम जो भी कारण खोजते हो, तुम्हारा प्रश्न उस कारण पर भी उतना ही लागू होता है। तुम कहते हो, परमात्मा ने जन्म दिया। पर क्यों? परमात्मा को भी क्या सूझी? क्या अर्थ है? न देता तो हर्ज क्या था? प्रश्न मिटा नहीं, प्रश्न वहीं का वहीं है, एक कदम पीछे हट गया। परमात्मा क्यों है? क्या उत्तर दोगे? तुम्हारे सब उत्तर वर्तुलाकार होंगे। तुम कहोगे, परमात्मा इसलिए है कि सृष्टि का पालन करे। और सृष्टि इसलिए है कि परमात्मा बनाए! इन उत्तरों से तुम किसे धोखा दे रहे हो? जैसे अंधेरी रात में, अंधेरी गली में आदमी गुनगुनाने लगता है गीत। गीत गुनगुनाने से कुछ भय मिटता नहीं, लेकिन अपनी ही आवाज सुनकर ऐसा लगता है, कोई साथ है। लोग सीटी बजाने लगते हैं। सीटी बजाने से किसी का साथ नहीं हो जाता। लेकिन अकेलेपन का भय दब जाता है।
मरघट से कभी गुजरे हो अंधेरी रात में? नास्तिक भी मंत्र गुनगुनाने लगता है। कोई मंत्र भूत-प्रेतों से रक्षा नहीं करते। पहली तो बात भूत-प्रेत हैं नहीं, जिनसे रक्षा करनी हो। भूत-प्रेत तुम गढ़ते हो, फिर मंत्रों से रक्षा करते हो। पहले बीमारी खड़ी करते हो, फिर औषधि खोजते हो। फिर एक औषधि काम न करे तो दूसरी औषधि खोजते हो। यही तो दर्शनशास्त्र की सारी भ्रमणा है, विडंबना है।
तुम सोचते हो, प्रश्न बन गया तो उत्तर होना ही चाहिए। आदमी प्रश्न बना लेता है, तो सोचता है, कहीं न कहीं उत्तर भी होगा, जब प्रश्न है तो उत्तर भी होगा। प्रश्न तो तुम कोई भी बना सकते हो। तुम पूछ सकते हो, हरे रंग की गंध क्या है? प्रश्न में कोई भूल-चूक नहीं है। भाषा ठीक है। कोई तर्कशास्त्री नहीं कह सकता कि प्रश्न में कुछ गलती है। हरे रंग की गंध क्या है?
हरे रंग से गंध का क्या लेना-देना! मगर तुमने एक प्रश्न बना लिया, अब तुम उत्तर की तलाश पर चल पड़े। छोटे बच्चों को देखो। छोटे बच्चे जो प्रश्न पूछते हैं, वही बड़े-बूढ़े भी पूछते हैं। सिर्फ प्रश्नों का संयोजन बदल जाता है। छोटे बच्चे पूछते हैं, वृक्ष हरे क्यों हैं? क्या करोगे! डी.एच.लारेन्स घूमता था बगीचे में--एक बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति। छोटा बच्चा साथ था, उसने पूछा कि मुझे यह बताओ, वृक्ष हरे क्यों हैं? डी.एच.लारेन्स ने उस बच्चे की तरफ देखा, वृक्षों की तरफ देखा, अपनी तरफ देखा, और बोला, हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। वह बच्चा राजी हो गया। उत्तर मिल गया। पर यह कोई उत्तर हुआ?
पहले तुम प्रश्न बनाकर सोचते हो, बन गया प्रश्न तो उत्तर होना चाहिए। फिर प्रश्न काटता है, बेचैन करता है। प्रश्न खुजली पैदा करता है। जब तक खुजला न लो, चैन नहीं मिलता। फिर कोई उत्तर चाहिए। तो कहीं न कहीं तुम किसी न किसी उत्तर पर राजी हो जाओगे।

सभी लोग किन्हीं उत्तरों पर राजी हो गए हैं--कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई बौद्ध। इससे तुम यह मत समझना कि इन्हें उत्तर मिल गए हैं; इससे सिर्फ इतना पता चलता है कि थक गए हैं अपनी बेचैनी से, अन्यथा प्रश्न वहीं के वहीं खड़े हैं। प्रश्न तो दर्शनशास्त्र एक भी हल नहीं कर पाया। तुम अकारण हो। तुम्हारा जन्म क्यों हुआ? कोई उत्तर नहीं है। अकारण होने को स्वीकार करने में अड़चन क्या है? कहीं तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, तो यहीं स्वीकार कर लेने में क्या अड़चन है? ईश्वर को तो सभी धर्म कहते हैं, अकारण। उसका कोई कारण नहीं है। तो जो बात ईश्वर के लिए तुम स्वीकार कर लेते हो और तुम्हारे तर्क को कोई अड़चन नहीं आती, वही बात अपने को स्वीकार कर लेने में कहां कठिनाई हो रही है?
सभी धर्म कहते हैं, ईश्वर ने जगत को बनाया; और पूछो कि ईश्वर को किसने बनाया, तो नाराज हो जाते हैं। तो वे कहते हैं, अतिप्रश्न हो गया। सीमा के बाहर जा रहे हो। सीमा के बाहर कोई भी नहीं जा रहा है, सिर्फ तुम उनकी जमीन खींचे ले रहे हो। क्योंकि अगर इस प्रश्न को वे स्वीकार करें तो फिर उत्तर कहीं भी नहीं है। अगर वे कहें ईश्वर को महाईश्वर ने बनाया, तो फिर महाईश्वर को किसने बनाया? यह तो बात चलती ही रहेगी, इसका कोई अंत न होगा। तो कहीं तो रोकना ही पड़ेगा।
मैं तुमसे कहता हूं, शुरू ही क्यों करते हो? जब रुकना ही पड़ेगा, और बड़े भद्दे ढंग से रुकना पड़ेगा। तुम्हारे बड़े से बड़े दार्शनिक भी जबर्दस्ती तुम्हें चुप करवाए हुए हैं।
कहते हैं, जनक ने एक बहुत बड़ा पंडितों का सम्मेलन बुलाया था और उसमें हजार गाएं सोने से उनके सींग मढ़कर द्वार पर खड़ी कर दी थीं, कि जो जीत जाएगा, जो सभी प्रश्नों के उत्तर दे देगा, जो सभी को निष्प्रश्न कर देगा, ये हजार गाएं उसके लिए हैं। श्रेष्ठतम गाएं थीं। उनके सींगों पर सोना चढ़ा था, हीरे जड़ दिए थे।
स्वभावतः पंडित आए। बड़ा विवाद मचा। फिर भरी दुपहरी में याज्ञवल्क्य आया। उसे अपने पर बड़ा भरोसा रहा होगा। वह तार्किकथा, महापंडित था। उसने अपने शिष्यों को कहा कि ये गाएं तुम जोतकर आश्रम ले जाओ, थक गयी हैं धूप में खड़े-खड़े, विवाद का निपटारा मैं पीछे कर लूंगा।
इतना भरोसा रहा होगा अपने पर कि पुरस्कार पहले ले लो! विवाद का निर्णय
तो अपने पक्ष में होने ही वाला है। निश्चित ही उसने सारे पंडितों को हरा दिया। उसके शिष्य तो गायों को जोतकर आश्रम ले गए। जनक भी भौचक्का रह गया, इतना भरोसा! लेकिन एक स्त्री ने उसे मुश्किल में डाल दिया। जब सारे पंडित हार चुके तब एक स्त्री खड़ी हुई, गार्गी उसका नाम था। और उसने कहा कि तुम कहते हो, ब्रह्म ने सबको सम्हाला है, तो ब्रह्म को किसने सम्हाला है? उसने याज्ञवल्क्य की कमजोर नस छू दी। वह क्रोध से भर गया। उसने कहा, गार्गी! जबान बंद रख! यह अतिप्रश्न है। तेरा सिर गिर जाएगा--या तेरा सिर गिरा दिया जाएगा।
उपनिषद इस कथा को यहीं छोड़ देते हैं। इसके आगे क्या हुआ, पता नहीं। हो सकता है उस आदमी की जबर्दस्ती ने उस स्त्री का मुंह बंद कर दिया हो, लेकिन यह बात कुछ जीत की न हुई। अगर अतिप्रश्न है तो पहले ही कह देते कि एक प्रश्न है जो न पूछ सकोगे। तो निष्प्रश्न तो न कर पाए तुम। उत्तर सभी तो न दे पाए। संसार को किसने सम्हाला है? तो कहा, ब्रह्म ने। और गार्गी ने कुछ गलत पूछा? अगर सम्हालने का प्रश्न सही है तो फिर परमात्मा को, ब्रह्म को किसने सम्हाला है--यह प्रश्न भी उतना ही संगत और सही है। गौएं ले जानी थीं, एक बात! सोने पर नजर थी, एक बात! लेकिन यह तो अभद्रता हो गयी।
और सारे पंडित भी याज्ञवल्क्य से राजी हुए। शायद पुरुष का अहंकार दांव पर लग गया होगा। गार्गी अकेली थी--स्त्री थी।
कहते हैं, उसके बाद ही स्त्रियों को वेद का अध्ययन करने की मनाही कर
दी गयी। ये बेतुके प्रश्न उठा देती हैं बीच में। फिर हिंदुओं ने स्त्रियों को वेद पढ़ने का मौका न दिया। न पढ़ेंगी, न इस तरह के प्रश्न उठा सकेंगी।

लेकिन उस स्त्री ने बड़ी सीधी सी बात पूछी थी, छोटे बचों की तरह सीधी बात पूछी थी। बात में कहीं कोई गलती न थी, लेकिन मैं जानता हूं, याज्ञवल्क्य की मुसीबत थी! अगर गार्गी सही है, तो फिर सारे प्रश्न और सारे उत्तर व्यर्थ हो जाते हैं। फिर तो सारा दर्शनशास्त्र का व्यवसाय व्यर्थ हो जाता है।
मैं तुम्हें यही कह रहा हूं कि किसी भांति तुम दर्शन से मुक्त हो जाओ,
तो तुम ज्ञान को उपलब्ध होओगे। ये फलसफा की ऊंची बातें, बस मालूम होती हैं ऊंची हैं। इनकी बुनियाद कहीं नहीं। ये भवन ताश के पत्तों के भवन हैं। हवा का जरा सा झोंका--गार्गी का छोटा सा प्रश्न-भवन गिर गया! क्रोध उठ आया। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, न तो तुम्हारे जन्म का कोई कारण है, न तुम्हारे जीवन का कोई कारण है। वृक्ष हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। तुम जी रहे हो, क्योंकि तुम जी रहे हो।
तुम्हें मेरी बात जरा कठिन लगेगी। क्योंकि तुम मेरे पास भी उत्तर खोजने आए हो। मैं तुम्हें उत्तर देने को उत्सुक नहीं हूं। मैं तुम्हारे प्रश्न को गिरा देने में उत्सुक हूं, उत्तर देने में उत्सुक नहीं हूं। क्योंकि उत्तर तो मैं कोई भी दूंगा, प्रश्न थोड़े दिन में फिर रास्ता बनाकर खड़ा हो जाएगा। और मैं तुमसे यह नहीं कहना चाहता कि तुम्हारा प्रश्न अतिप्रश्न है। ऐसी बेहूदगी मैं न करूंगा! ऐसी अभद्रता, जो याज्ञवल्क्य ने की, मुझसे न हो सकेगी!
मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारा प्रश्न अतिप्रश्न नहीं है, निरर्थक है। इतना निरर्थक है कि उसके उत्तर की खोज में जाना जरूरी नहीं है। गए, तो खाली हाथ ही लौटोगे।
जीवन है। जीवन को परमात्मा कहो, कोई फर्क नहीं पड़ता--नाम की बात है।
नाम तुम्हारी मौज। तुम्हारी पसंदगी की बात है। ईश्वर कहो; पर ईश्वर है। और इस है से गहरे जाने का कोई उपाय नहीं है। यह है आत्यंतिक रूप से गहरा है।
इस है की कोई थाह नहीं। तुम यह नहीं कह सकते कि यह है कहां सम्हला है! माना गहरा है, लेकिन कहीं तो थाह होगी।
नहीं, कोई थाह नहीं। जीवन अथाह है। न इसके पीछे कोई कारण खोजा जा सकता है, न इसके आगे कोई भविष्य खोजा जा सकता है। बस जीवन अभी और यहीं है।
हां, तुम्हें बेचैनी लगती हो तो कारण खोज लो, लेकिन कारण खिलौने हैं। प्रौढ़ होना चाहिए। प्रौढ़ व्यक्ति मैं उसे कहता हूं जिसने प्रश्नों की व्यर्थता समझकर प्रश्नों का त्याग कर दिया। उसे मैं प्रौढ़ कहता हूं। जो अभी प्रश्न पूछे चला जाता है और सोचता है कि उत्तर होंगे कहीं, वह अभी बचा है। अभी उसने जीवन का बुनियादी पाठ भी नहीं सीखा, कि जीवन है--अकारण! तुम्हें अड़चन क्या है अकारण को स्वीकार करने में? पक्षी गीत गा रहे हैं, किसी कारण से? वृक्षों में फूल लगे हैं, किसी कारण से? चांद-तारे घूम रहे हैं, किसी कारण से? यह तुम्हें खुजलाहट क्या है कि कारण होना चाहिए? फिर अगर मैं कोई कारण बता दूं तो तुम चुप हो जाओगे? अगर मैं कह दूं, यह परमात्मा की लीला है, यह कोई उत्तर हुआ!
यही तुम्हारे ज्ञानी तुम्हें उत्तर दे रहे हैं, परमात्मा की लीला है!
और तुम पूछते नहीं कि लीला! किसलिए? यह परमात्मा बिना लीला के नहीं रह सकता, इसको कुछ अड़चन है? इसको कुछ बेचैनी है? यह बिना लीला के शांत नहीं बैठ सकता? महात्मा तो सब शांत बैठना सिखाते हैं। परमात्मा ही शांत नहीं बैठ पा रहा है, तो हम गरीब आदमियों का क्या! यह लीला क्यों? हमसे तो कहा जाता है, संसार छोड़ो; खुद संसार की लीला कर रहा है? यह बात बड़ी अजीब सी लगती है। हमसे तो कहा जाता है, त्यागो, यह सब अड़चन है, आवागमन से छुटकारा करो, और यह आवागमन बनाए चला जाता है? अगर कहीं कोई जुर्मी है और किसी ने कोई महाघात, महापाप किया है, तो यह परमात्मा है। यह जाल क्यों रचता है?
और ज्ञानी कहते हैं, लीला है। तुम जरा लीला शब्द को तो समझो! लीला का मतलब ही यह हुआ कि अकारण है। लीला कहने का मतलब ही यह हुआ कि ज्ञानियों के पास कोई उत्तर नहीं है। वे कह रहे हैं, क्षमा करो, अब मत पूछो, सब लीला है! मगर लीला कहने से ऐसा लगता है, उन्होंने उत्तर दिया, जैसे उन्होंने बता दिया। मगर तुम पूछो प्रश्न को फिर, लीला क्यों? किस कारण?

आदमी दुख भोगता है तो पूछता है, किस कारण? ज्ञानी--तथाकथित ज्ञानी, क्योंकि मैं नहीं मानता कि कोई ज्ञानी ऐसे कारण बताएगा जो नहीं हैं--तो ज्ञानी कहते हैं, पिछले जन्म में पाप किया होगा।
अब बड़ा मजा है, तुम राजी हो जाते हो। यहां दुख समझाए में नहीं आता था, समझने में नहीं आता था, क्यों दुख भोग रहा हूं! किसी को सताया नहीं, किसी को मारा नहीं, पीटा नहीं, दुख क्यों भोग रहा हूं! ज्ञानी कहते हैं, पिछले जन्म में बुरे कर्म किए होंगे। तुम राजी हो गए। तुम यह नहीं पूछते कि पिछले जन्म में बुरे कर्म क्यों किए होंगे? तो ज्ञानी और पिछले जन्म में ले जाएंगे, लेकिन कहां तक ले जाएंगे! तुम चलते ही चलो पूछते। तुम कहो, कभी तो शुरुआत हुई होगी, हम यह पूछते हैं कि शुरुआत क्यों हुई?
जब तुम पूछते हो कि मैं आज दुखी हूं, तब तुम्हारे इस प्रश्न में यह छिपा है कि दुख प्रारंभ क्यों हुआ? यह भी कोई बात हुई कि तुमने कह दिया, अगले जन्म में पाप किए थे, इसलिए दुख भोग रहे हो! पिछले जन्म में पाप क्यों किए थे? और पिछले जन्म में किए होंगे! और पिछले जन्म में किए होंगे! चलते चलो। तुम ज्ञानियों को थकाओ। तुम उनको उस जगह ले आओ जहां वे नाराज होकर खड़े हो जाएं और कहें कि अतिप्रश्न हो गया! गार्गी! सिर गिर जाएगा!! और मैं तुमसे कहता हूं, हर ज्ञानी को तुम इस जगह पर ले आओगे; जहां याज्ञवल्क्य आ गया, वहां दूसरे ज्ञानी न टिकेंगे--तुम जरा पूछते चलो।
मैं छोटा था तो कहीं भी साधु-महात्माओं की सभा हो, पहुंच जाता था। तो
एक उपद्रव होने लगा। मुझे देखकर ही सभा के आयोजक बेचैन होने लगते कि यह कुछ न कुछ पूछेगा। फिर तो महात्मा भी मुझे पहचानने लगे। वे कहते, वह छोकरा आ गया, उसको बाहर करो!
एक छोटे बच्चे के उत्तर नहीं दे पाते हो, कैसा महात्मापन है! एक छोटे बच्चे को राजी नहीं कर पाते हो, समझा नहीं पाते हो, किसको समझाने चले हो! तो ऐसा लगता है, जो समझने को बैठे हैं, वे समझने को वस्तुतः गहरे उत्सुक नहीं हैं; वे किसी तरह की लीपापोती करने को उत्सुक हैं, समझा लेना चाहते हैं, जल्दी में हैं; कुछ भी मानने को राजी हो जाते हैं, कुछ भी कहो वे स्वीकार कर लेते हैं, सिर हिला देते हैं कि ठीक होगा।
तुम जरा अपनी इस वृत्ति को ठीक से समझो। जरा फिर से आंख खोलकर देखो।
यह कारण को पूछो मत। कारण कहीं है नहीं। अस्तित्व अकारण है। और इसीलिए इतना सुंदर है। अकारण का अर्थ यह होता है कि इसके होने के लिए कोई वजह न थी, बेवजह है। जब कोई चीज बेवजह होती है, तो असीम होती है। जब कोई चीज बेवजह होती है, तो उस पर कहीं भी कोई सीमा नहीं होती, हो नहीं सकती। कारण सीमा बनाता है।
जरा देखो, कहीं सीमा दिखायी पड़ती है इस अस्तित्व में? रूपांतरण होता रहता है, सीमा कोई नहीं। रूप बदलते रहते हैं, खेल जारी रहता है। कारण होता तो कभी का चुक न गया होता! थोड़ा सोचो, कितने अनंत काल से जगत है! यह कैसा कारण है जो अब तक चुक नहीं गया! फिर कभी तो चुक जाएगा कारण। जब कारण चुक जाएगा तो जगत भी चुक जाएगा। तुम सोच भी सकते हो, जगत चुक जाएगा? कुछ तो होगा। ना-कुछ होगा, तो भी तो कुछ होगा। शून्य भी तो कुछ है!
इसलिए मैं तुमसे एक गहरी बात कहता हूं, यहां कोई कारण नहीं है! हां, तुम्हें बिना कारण के जीना कठिन मालूम पड़ता हो--यह तुम्हारी मजबूरी है--तो तुम कोई कारण पकड़ लो कि ईश्वर को खोजने के लिए जीवन है। पर बड़ा मजा यह है कि खोया किसलिए है!
कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, ईश्वर को खोजने के लिए जीवन है। यह भी बड़ा मजा है। तो यह ईश्वर प्रगट ही क्यों नहीं हो जाता, मामला खतम करो! क्यों व्यर्थ लोगों को परेशान कर रहे हो! इनकी आंखों के आंसू उसे दिखायी नहीं पड़ते? इनके जीवन का भयंकर दुख उसे दिखायी नहीं पड़ता? इनका संताप दिखायी नहीं पड़ता? वे छिपे जा रहे हैं! इन जनाब को भी खूब सूझी! हजरत अब तो बाहर आ जाओ! खूब रुला लिया इन लोगों को। नहीं, जीवन इसलिए है कि ईश्वर को खोजो! मगर खोया कैसे? कुछ कहते हैं, जीवन इसलिए है, सचरित्रवान बनो। कि दुश्चरित्रवान कैसे बने? ये सब बातें हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, जीवन बस जीवन के लिए है। होना होने के लिए है।

किसी ने ई.ई.कमिंग से, एक बहुत महत्वपूर्ण कवि से पूछा, तुम्हारी कविताओं का अर्थ क्या है? उसने सिर ठोंक लिया अपना। उसने कहा, फूलों से कोई नहीं पूछता कि तुम्हारा अर्थ क्या है! मेरी जान के पीछे क्यों पड़े हो? चांद-तारों से कोई नहीं पूछता कि तुम्हारा अर्थ क्या है! जब चांद-तारे बिना अर्थ के हो सकते हैं और फूल बिना अर्थ के हो सकते हैं, तो मेरी कविता को अर्थ बताने की जरूरत क्या? परमात्मा से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा अर्थ क्या है? जब सारा अस्तित्व बिना अर्थ के है और बड़े मजे से है और कहीं कोई अड़चन नहीं आ रही, तो मुझ गरीब के क्यों पीछे पड़ते हो? मुझे पता नहीं है।
कूलरिज से, एक दूसरे महाकवि से, किसी ने पूछा कि तुम्हारी कविताओं का अर्थ... ! एक कविता उलझ गयी है और मैं सुलझा नहीं पाता हूं। उसने कहा कि जब लिखी थी, दो आदमियों को पता था, अब एक को ही पता है। पूछा कि वे कौन दो आदमी थे। उसने कहा, मुझे और परमात्मा को पता था, जब लिखी थी; अब उसको ही पता है। अब मुझे भी पता नहीं है। मैं खुद ही उससे पूछता हूं कि कुछ तो बोल, इसका अर्थ क्या है!
तुम मतलब समझ रहे हो? मतलब साफ है। अर्थ पूछने की बात ही थोड़ी नासमझी
से भरी हुई है। कोई अर्थ नहीं है। इसको तुम यह मत समझ लेना कि जीवन अर्थहीन है। क्योंकि अर्थहीनता भी अर्थ की ही तुलना में हो सकती है। यहां अर्थ है ही नहीं, तो अर्थहीनता कैसे होगी? गरीबी, धन हो तो हो सकती है; धन हो ही न तो गरीबी कैसे होगी! गरीबी के लिए अमीरी होनी जरूरी है। अर्थहीनता के लिए अर्थ होना जरूरी है। यहां अर्थ है ही नहीं तो अर्थहीनता कैसी! बस, है। अकारण। बेबूझ। यही इसका रहस्य होना है।
इसलिए तुम लाख सिर पटको, उत्तर न पा सकोगे। सिर तोड़ लोगे अपना। हां, घबड़ा जाओ सिर पटकते-पटकते और किसी भी उत्तर को बहाना बनाकर अपने को समझा लो--बात दूसरी है।
जिनके पास उत्तर हैं, वे ऐसे लोग हैं जिनकी खोज पूरी नहीं है। जिनके पास उत्तर हैं, वे कमजोर लोग हैं, कायर हैं। जिनके पास उत्तर हैं, वे ऐसे लोग हैं जो खोज पर आगे न जा सके और जिन्होंने कहीं पड़ाव बना लिया और कहा कि मंजिल आ गयी। थक गए!
मैं थका नहीं हूं। मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। मेरी कोई मंजिल बनाने
की तैयारी नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूं, यात्रा ही मंजिल है। मजे से चलो। कहीं पहुंचना था.ेडे ही है; चलने में ही मजा है। पहुंचने की बात ही कमजोरी की सूचक है।
लोग पहुंचने की बड़ी जल्दी में हैं। क्यों? तुम्हें इस रास्ते पर मजा नहीं आ रहा है? तुम्हें चारों तरफ खिले फूल दिखायी नहीं पड़ते? ये वृक्षों की छाया, ये हरियाली, ये पक्षियों के गीत, यह कलरव--इसमें तुम्हें मजा नहीं आता? तुम कहते हो, हमें तो मंजिल पर पहुंचना है।
तुमने कभी फर्क देखा? तुम बाजार जाते हो, दुकान पहुंचना है; तब भी तुम उसी रास्ते से गुजरते हो, लेकिन तब न तो वृक्ष दिखायी पड़ते, न सूरज दिखायी पड़ता, न पक्षियों के गीत सुनायी पड़ते--तुम जल्दी में हो, तुम्हें कहीं पहुंचना है। फिर एक सुबह तुम घूमने निकलते हो, या सांझ घूमने निकलते हो; कहीं पहुंचना नहीं, घूमने निकले हो, तफरीह के लिए; तब अचानक तुम्हारे होने का गुणधर्म अलग होता है, तुम्हारे होने की कला ही और होती है! तुम ज्यादा खुले होते हो। पक्षियों की आवाज भी सुनते हो, किसी वृक्ष के नीचे दो क्षण रुक भी जाते हो। कहीं पहुंचना नहीं है। किसी पुलिया पर बैठ भी जाते हो, सुस्ता भी लेते हो। कहीं से भी लौट पड़ते हो। कोई रेखा थोड़े ही है। कोई बंधन नहीं है। तब तुम्हें सूरज भी दिखायी पड़ता है, पक्षियों से भी थोड़ा संबंध बनता है, घास की हरियाली भी दिखायी पड़ती है, खिले फूलों का रंग भी मालूम होता है।
यही रास्ता है, जिस पर तुम दुकान जाने के लिए भी जाते थे। यही रास्ता है, इस पर तुम मंदिर भी जा सकते हो। लेकिन मंदिर जाओ कि दुकान जाओ, बाजार जाओ कि प्रार्थनागृह में जाओ--अगर तुम कहीं जा रहे हो, तो यात्रा से चूक जाते हो; नजर तुम्हारी कहीं और लगी है। यहां नहीं हो सकते। कहीं और हो,

अनुपस्थित हो। और इस अनुपस्थिति को ही मैं अधर्म कहता हूं, यही मूर्च्छा है। होश का अर्थ हैः अभी और यहां।
एक गीत तुमसे कहूंः
यह समय दुबारा लौट नहीं आएगा
भरना है तो तुम मांग मिलन की अभी भरो
जब तक श्यामा के मौन-महल का स्वप्न-द्वार
खटकाए आ राजा दिन के कोलाहल का
तब तक उठ गागर में उंडेल लो गंगाजल आंगन-छाए इस बिना बुलाए बादल का
है बड़ा निठुर निर्दयी समय का सौदागर
रखता है नहीं उधार फूल मुट्ठीभर भी
पुरवाई ऐसे फिर न झूमकर गाएगी
हरना है तो तुम दाह जलन की अभी हरो
यह समय दुबारा लौट नहीं आएगा
भरना है तो तुम मांग मिलन की अभी भरो
अगर विवाह रचाना हो तो अभी। प्रेम करना हो, अभी। गीत गाना हो, अभी। नाचना हो, अभी। प्रार्थना, पूजा, अभी। अगर जीना हो तो अभी। मरना हो तो कल भी हो सकता है। मरने को कल पर टाला जा सकता है। कोई अभी मरता है? लोग सभी कल मरते हैं। अभी तो जीना है। अभी तो जीवन है।
जब मैं तुमसे कहता हूं, अकारण जीयो, तो मैं कहता हूं, लक्ष्य मत बनाओ।
क्योंकि लक्ष्य बनाया कि तुमने तैरना शुरू किया। तैरे कि तुम धार से लड़े। जब मैं कहता हूं, अकारण जीयो, तो मैं कहता हूं, बहो। धार से लड़ो मत। धार को दुश्मन मत बनाओ, दोस्ती साधो। धार पर सवार हो जाओ। धार के साथ बहो। धार जहां ले जाए, चलो। अपना कोई अलग से व्यक्तिगत लक्ष्य निर्धारित मत करो। नियति बूंद की क्या! होगी सागर की कुछ, बूंद को प्रयोजन क्या! और मैं तुमसे कहता हूं, सागर की भी नहीं, क्योंकि सागर भी बूंदों का जोड़ है। जब बूंद की ही नहीं, तो सागर की भी क्या होगी! सागर का गर्जन-तर्जन सुनो--अभी है। तुम इस गहरी अभी को पहचानो। यह क्षण जो अभी मौजूद है, इसमें तुम डुबकी लो।
तब तक उठ गागर में उंडेल लो गंगाजल
आंगन-छाए इस बिना बुलाए बादल का
यह तुमने बुलाया भी न था, बिना बुलाए आया है। यह जीवन तुमने मांगा भी न था, बिना मांगा मिला है। यह प्रसाद है। इसकी तुमने कोई कमाई भी न की थी; यह तुम्हें यूं ही मिला है। धन्यवाद दो! कारण पूछते हो? सौभाग्य अनुभव करो! और तुम पर कोई कारण का बंधन नहीं है।
लेकिन अहंकार कारण चाहता है। अहंकार कहता है, अगर कारण नहीं है, तो फिर मैं कैसे होऊंगा? मैं हो ही सकता है कारण के आधार पर। अहंकार कहता है, यह न चलेगा, तैरूंगा। अगर बहूंगा तो मैं तो गया।
तुम जरा सोचो! नदी की धार में बह चले, जहां धार ले चली वहीं चले; धार डुबाए तो ठीक, धार बचाए तो ठीक--तो फिर तुम्हारा अहंकार कहां रहेगा? अहंकार कहेगा, क्या नामर्दगी करते हो, लड़ो! धार से उलटे बहो! मजा लो लड़ने का! धार से हारे जा रहे हो! विजय करनी है! संघर्ष करना है! जूझना है! डायलान थामस का एक गीत है--अपने पिता की मृत्यु पर लिखा है--उसमें लिखा है, बिना जूझे मत मरो। जूझो! लड़ो! यह जो अंधेरी रात आ रही है, बिना जूझे मत समर्पण करो। लड़ो!
पिता मर रहा है। यह आधुनिक आदमी का दृष्टिकोण है, या कहो पाश्चात्य दृष्टिकोण है, वही आधुनिक आदमी का दृष्टिकोण हो गया हैः लड़ो--मौत से भी! ऐसे ही मत समर्पण करो! अंधेरी रात आती है तो जूझो, ऐसे ही मत छोड़ दो। आखिरी टक्कर दो! और यही कर रहा है आदमी। जीवन भर लड़ता है, मरने लगता है तो भी लड़ता है। जीवन भी कुरूप हो जाता है, मृत्यु भी कुरूप हो जाती है।
मैं तुमसे कहता हूं, लड़ो मत, बहो। लड़ कर तुम हारोगे। बहो--तुम्हारी जीत सुनिश्चित है। बहने वाले को कभी कोई हराया है? यही तो लाओत्से और बुद्धपुरुषों के वचन हैं--बहो!

तुम लड़ना चाहते हो, तुम धर्म के नाम पर भी लड़ना चाहते हो। तुमने धर्म
के नाम पर जिनकी पूजा की अब तक, अगर गौर से देखोगे तो लड़ने वालों की पूजा की है, बहने वालों की नहीं। क्योंकि वहां भी अहंकार को ही तुम सिंहासन पर रखते हो। कोई उपवास कर रहा है, तुम कहते हो, अहा! महासंत का दर्शन हुआ। कोई धूप में तप रहा है, तुम झुके, फिर तुमसे नहीं रुका जाता। फिर चरण छुए, तुमसे नहीं रुका जाता। धूप में तप रहा है! यही तुम भी चाहते हो कि तुम भी कर सकते। तुम जरा कमजोर हो, लेकिन सोचते हो, कभी न कभी समय आएगा जब तुम भी टक्कर दोगे अस्तित्व को।
बहते आदमी के तुम चरण छूकर प्रणाम करोगे? धूप से हटकर वृक्ष की छाया में शांति से बैठा हो, उसे तुम नमस्कार करोगे? कांटों पर सोया आदमी नमस्कार का पात्र हो जाता मालूम पड़ता है। यही तुम्हारी भी आकांक्षा है। तुम कहते हो, तुम जरा आगे हो, तुम हमसे जरा आगे पहुंच गए, तुमने वह कर लिया जो हम करना चाहते थे--कम से कम हमारा नमस्कार स्वीकार करो। हम भी यही आकांक्षा लिए जीते हैं। टक्कर देनी है!
टक्कर से अहंकार बढ़ता है। मैं हूं, अगर लड़ता हूं। अगर नहीं लड़ता हूं, मैं गया। और मैं तुमसे कहता हूं, धर्म का आधार सूत्र हैः समर्पण।
इसलिए तुमसे मैं कहता हूं, कोई कारण नहीं है। तुम्हें मैं बड़ी अड़चन में डाल रहा हूं। बड़ा सुगम होता, तुम्हें मैं कह देता, यह रहा कारण, यह रहा नक्शा, यह है पहुंचने का रास्ता--लड़ो। व्रत, उपवास, नियम! तुम कहते, बिल्कुल ठीक! चाहे तुम लड़ते, न लड़ते, नक्शा सम्हालकर छाती से रख लेते--कभी जब आएगा अवसर, लड़ लेंगे।
मैं तुमसे कहता हूं, कहीं कुछ लड़ने को नहीं है। जीवन को मित्र जानो। जीवन मित्र है। तुम उसी से आए, किससे लड़ रहे हो? तुम उसी में जन्मे, किससे लड़ रहे हो? तुम मछली हो इस सागर की। यह सागर तुम्हारा है। तुम इस सागर के हो। तुम ये फासले छोड़ो, दुई छोड़ो, लड़ने वाली बात छोड़ो। तुम इस सागर में जीओ आनंद से, अहोभाव से। कहीं पहुंचना नहीं है। तुम जहां हो, वहीं जागना है।

दूसरा प्रश्नः आपने तीन स्वर्णपात्रों वाली बोध कथा कही, जिसमें गुरु
ने उस शिष्य को स्वीकार किया जिसने स्वर्णपात्र के साथ सम्यक व्यवहार किया था। लेकिन मैं तो उन दो शिष्यों जैसा हूं जिन्होंने स्वर्णपात्र को या तो गंदा छोड़ दिया, या तोड़ दिया। फिर भी आपने किस आधार पर स्वीकार किया मुझको? कृपया समझाएं।

मैं यदि उस फकीर की जगह होता, तो जिसे उसने स्वीकार किया था, उसे छोड़कर बाकी दो को स्वीकार कर लेता। क्योंकि जिसे उसने स्वीकार किया था, वह तो उसके बिना भी पहुंच जाएगा। और जिन्हें उसने अस्वीकार कर दिया, वे उसके बिना न पहुंच सकेंगे।
उसने तो कुछ ऐसा किया कि जैसे चिकित्सक स्वस्थ आदमी को स्वीकार कर ले
और अस्वस्थ को कह दे कि तुम तो हो बीमार, हम तुम्हें स्वीकार न करेंगे। लेकिन चिकित्सक का प्रयोजन क्या है? वह बीमार के लिए है। स्वस्थ को अंगीकार कर लिया, बीमार को विदा कर दिया--यह कोई चिकित्साशास्त्र हुआ! सुगम को स्वीकार कर लिया। उस आदमी के साथ कोई अड़चन न थी। वह साफ-सुथरा था ही। कुछ करना न था। गुरु ने अपनी झंझट बचायी। गुरु ने अपना दृष्टिकोण जाहिर किया कि मैं झंझट में नहीं पड़ना चाहता।
मैं कोई झंझट बचाने को उत्सुक नहीं हूं। झंझट आती हो तो मैं बहता हूं, स्वीकार करता हूं। जब झंझट खुद ही आ रही हो तो मैं इनकार करने वाला कौन! बड़े झंझटी लोग आ जाते हैं संन्यास लेने; मैं कहता हूं, लो! तुम्हें कोई और देगा भी नहीं। मेरे अतिरिक्त तुम्हारा संन्यास संभव नहीं है। लेकिन मैं खुश हूं, क्योंकि यही तो मजा है।
उस गुरु ने तो ऐसा किया जैसे कोई मोम की मू
त बनाता हो। यह कोई ज्यादा देर टिकने वाली मू
त नहीं है--मोम की है, बड़ी सुगम है। मेरा रस पत्थरों में मू

त खोदने में है। जो अपने से ही पहुंच जाएंगे उनको साथ देने का क्या प्रयोजन है! जो अपने से न पहुंच पाएंगे उनके हाथ में हाथ देने का कुछ अर्थ है, कुछ सार है।
मैं तुमसे कहता हूं, वह व्यक्ति तो पहुंच ही जाता; उसके पास तो सूझ साफ थी, दृष्टि स्पष्ट थी। उसके पास करने जैसा अब कुछ था नहीं बहुत, सब हुआ ही था। जिन दो को इनकार कर दिया वे भी तलाश में थे, अन्यथा आते नहीं। उन्हें इनकार करने में शोभा नहीं रही। गुरु गणितज्ञ था; होशियार तो था, लेकिन गुरु की शोभा खो गयी।
तो तुम पूछते हो कि तुम्हें मैंने किस आधार पर स्वीकार किया है। तुम्हारा पूछना मेरी समझ में आता है। तुम खुद ही अपने को स्वीकार नहीं करते हो और मैंने तुम्हें स्वीकार किया है--इसलिए सवाल उठता है कि किस आधार पर!
मैं तुमसे कहता हूं, जब मैंने तुम्हें स्वीकार किया, तुम भी अपने को स्वीकार करो। क्योंकि तुम्हारी स्वीकृति से ही तुम्हारा सूया्नदय होगा। जब तक तुम अपने से लड़ते रहोगे, अपने को अस्वीकार करते रहोगे, निंदा करते रहोगे, तब तक तुम कैसे रूपांतरित होओगे? निंदा का अर्थ होता है, तुमने बांट दिया अपने को दो खंडों में। एक हिस्से को कहा निंदित है और एक हिस्से को सिरताज बनाया। यह तुम ही हो दोनों। जिसकी निंदा करते हो वह भी तुम्हीं हो, जो निंदा कर रहा है वह भी तुम्हीं हो। अब यह जो तुमने द्वैत अपने भीतर खड़ा कर लिया, यह जो तुमने दो टुकड़े कर दिए अपने, यह तुम खंड-खंड हो गए--अब तुम्हारे जीवन का सारा संगीत न खो जाए तो और क्या हो!
तो मेरी पहली शिक्षा यह है कि तुम ये खंड समाप्त करो, निंदा छोड़ो! स्वीकार करो। यह अस्वीकार लड़ना है। स्वीकार समर्पण है। मैं कहता हूं, राजी हो जाओ, तुम जैसे हो। क्या करोगे? प्रभु ने तुम्हें ऐसा बनाया।
तुम जब अपनी निंदा कर रहे हो तब तुम समस्त की भी निंदा कर रहे हो। तुम
कह रहे हो कि यह मुझे ऐसा क्यों बनाया? तुम्हारी शिकायत यह है कि तुम यह कह रहे हो कि मुझे किसी और ढंग का बनाना था। मुझे बुद्ध क्यों न बनाया! महावीर क्यों न बनाया! यह मुझे तुमने क्या बना दिया?
किससे शिकायत कर रहे हो? वहां कोई भी नहीं, जो तुम्हारी शिकायत सुने।
और किसी ने बनाया थोड़े ही है। तुम हुए हो। कोई जिम्मेवार नहीं है। और परमात्मा ने तुम्हें अपने से अलग थोड़े ही बनाया है, परमात्मा की तुम एक लहर हो। तुम हुए हो। स्वीकार करो। अस्वीकार करने में कुछ सार नहीं है। अस्वीकार करके तुम लड़ोगे, परेशान होओगे; व्यथित, बेचैन होओगे। जो क्षण सौभा्य के हो सकते थे, दुर्भा्य के हो जाएंगे। और जहां महासंगीत पैदा हो सकता था, वहां तुम वीणा की निंदा में ही पड़े-पड़े वीणा को तोड़ डालोगे। तोड़ो मत वीणा को। अगर तार थोड़े ढीले हों, थोड़े कसो। तार बहुत कसे हों, थोड़े ढीले करो।
और जो भी तुम हो, यही तुम हो; इससे अन्यथा तुम हो नहीं सकते। इसलिए किस बात की चाहना कर रहे हो? किस बात से तुलना कर रहे हो? और मैं तुमसे कहता हूं, तुम जैसे हो भले हो। यह अस्तित्व दोहराता नहीं। यह अस्तित्व बड़ा सृजनात्मक है, बड़ा मौलिक है। इसीलिए तो राम फिर पैदा नहीं होते, कृष्ण फिर पैदा नहीं होते। एक दफा इस अस्तित्व में जो पैदा हुआ--हुआ।
इसलिए तो हमारे पास एक बड़ा महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है और वह यह है कि जो पूरा हो गया, वह लौटता नहीं। पूर्णपुरुष सदा के लिए खो जाता है। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि अब उसको लौटने की कोई जरूरत भी न रही। दोहरने का तो सवाल ही नहीं है। यह अस्तित्व हर लहर को नया-नया ही बनाता है। ये कोई फोर्ड के कारखाने से निकली कारें नहीं हैं कि लगा दो लाख कारें एक सिलसिले में एक जैसी। ये आदमी हैं!
यहां प्रकृति में कुछ भी दोहरता नहीं। तुम जरा जाओ, एक पत्ता तोड़ लो
और ठीक उस जैसा पत्ता तुम सारे पृथ्वी के जंगल छान डालो, न खोज पाओगे। ठीक उस जैसा पत्ता न पा सकोगे। जाओ रास्ते पर, एक कंकड़ उठा लो। ठीक इस जैसा कंकड़, तुम पृथ्वी और चांद-तारे सब खोज डालो, तुम दुबारा न पाओगे। यह

अस्तित्व दोहराता ही नहीं। यह अस्तित्व मौलिक है। पुनरुक्ति नहीं करता। इसलिए तो इतना सुंदर है।
तुम पुनरुक्ति नहीं हो किसी की। लेकिन तुम तुलना कर रहे हो; तुम कहते हो, बुद्ध क्यों न बनाया! अब तुम मुश्किल में पड़े। अब जो हिस्से तुम्हें बुद्ध जैसे नहीं मालूम पड़ते, उनकी तुम निंदा करते हो; और जो हिस्से बुद्ध जैसे मालूम पड़ते हैं, उनके द्वारा निंदा करते हो। अब तुमने अपने को बांटा। तुम एक न रहे। और तुम एक ही हो। तुम अपने को बांट न सकोगे। जो खून तुम्हारे पैर में बहता है वही तुम्हारे मस्तिष्क में बहता है; तुम कहीं बीच में धारा को काट न सकोगे। अखंड हो तुम। जुड़े हो, एक हो। इकाई हो।
निंदा छोड़ो! निंदा द्वैत में ले जाती है; स्वीकार अद्वैत में। और जब तुम अपने भीतर ही अद्वैत को न पा सकोगे तो और कहां पाओगे? इस छोटी सी तुम्हारी जीवन की धारा में तो अद्वैत को साध लो! फिर वही दृष्टिकोण फैला लेना सारे अस्तित्व पर। जो अपने में पा लेता है अद्वैत को, वह अचानक सब में अद्वैत को देखना शुरू कर देता है।
मैं समझता हूं, तुम्हारा प्रश्न उठता है तुम्हारी गहरी आत्मनिंदा से।
और तुम्हें तथाकथित धर्मगुरुओं ने यही सिखाया है--पापी हो, निंदित हो, नरक जाने यो्य हो! सुन-सुन कर उनकी बातें तुम्हें भी जंच गयी हैं। बार-बार सुनने से तुम्हारे मन में भी बैठ गयी हैं। बार-बार पुनरुक्ति से झूठ भी सच हो गए हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, न तुम पापी हो, न तुम नर्क में जाने यो्य हो। नर्क में जाने योग्य होते तो नर्क में होते। पापी होते तो यहां कैसे होते! पापी तुम नहीं हो। तुम तुम हो। किसी भी तुलना से अड़चन में पड़ोगे।
सभी तुलनाएं झंझट का कारण बन जाती हैं। अगर तुमने मान लिया कि तुम्हारी नाक को तुलना करनी है... किसी की लंबी नाक, तुम्हारी छोटी--अब क्या करना! किसी की छोटी, तुम्हारी बड़ी--अब क्या करना! कोई नाक का मापदंड थोड़े ही है। सब नाकें योग्य हैं, सुंदर हैं; उनसे श्वास लेने का काम हो जाता है, बस काफी है। लेकिन तुमने अगर आधार बना लिया कि लंबी नाक, तो तुम्हारी छोटी अड़चन में पड़े! छोटी है तो लंबी दिखायी पड़ने लगी किसी की, अब अड़चन में पड़े। तुम पांच फीट छह इंच हो, कोई छह फीट है--अड़चन में पड़े।
तुम ऐसी तुलना रोज कर रहे हो--कोई गोरा है, तुम काले हो; कोई बड़ा प्रतिभाशाली है, तुम साधारण हो; कोई बड़ा पुण्यात्मा है, तुम बड़े पापी हो-- तुम तुलना में पड़े हो। तुलना दुख का कारण है। मैं तुमसे कहता हूं, तुलना छोड़ो। तुम तुम हो। तुम किसी जैसे नहीं हो। तुम अंगीकार करो अपने को, आलिंगन करो अपने को। उसी से तुम्हारा विकास होगा।
और मैं तुमसे कहता हूं, जिसने अपने को पूरा स्वीकार किया, तत्क्षण श्ठांति शुरू हो जाती है। क्योंकि पूरी स्वीकृति में तुम्हारी सारी की सारी ऊर्जा मुक्त हो जाती है खंडों से। तुम्हारे भीतर संगीत बजने लगता है।
इस जगत में जो लोग भी परमबोध को उपलब्ध हुए हैं, वे वे ही लोग हैं जिन्होंने अपने को परिपूर्ण रूप से अंगीकार कर लिया। बुद्ध कोई चेष्टा न कर रहे थे कि राम जैसे हो जाएं, और न कृष्ण चेष्टा कर रहे थे कि राम जैसे हो जाएं। ऐसी चेष्टा करते होते तो वैसे ही भटकते जैसे तुम भटक रहे हो। बुद्ध ने अपने होने को खोजा। कृष्ण ने अपने होने को खोजा। तुम भी अपना होना खोजो।
और यह मैं तुमसे इसलिए कहता हूं कि जिस दिन मैंने अपने जीवन में तुलना छोड़ी, उसी दिन मैंने पाया। जब तक तुलना थी, अड़चन रही। जिस दिन मैंने अपने को स्वीकार किया, उसी दिन मैंने एक गहरा सूत्र पाया--सभी को स्वीकार करने का। तब से मैंने किसी की निंदा नहीं की। कोई भी मेरे पास आया है, वह वैसा है, निंदा की बात क्या है!
इसलिए मैंने तुम्हें स्वीकार किया, क्योंकि मैं अपने को स्वीकार करता हूं। तुम पूछते हो, क्यों? इसलिए मैंने तुम्हें स्वीकार किया है, क्योंकि मैं अपने को स्वीकार करता हूं। अगर तुम्हारी यही मौज है कि तुम पात्र को गंदा रखो, तो मुझे यह भी स्वीकार है। आखिर तुम अपने मालिक हो। पात्र

तुम्हारा है। अगर तुम्हें मक्खियों में रस है, आशीर्वाद! और मैं क्या कर सकता हूं! अगर तुम ही रस ले रहे हो अपने पात्र को गंदा रखने में, तो तुम अपने मालिक हो। कोई और तुम्हारे ऊपर नहीं है। मैं कम से कम तुम्हारे ऊपर बैठता नहीं।
यहां मैं तुम्हें साथ दे सकता हूं मित्र की तरह, तुम्हारा मालिक नहीं हूं। तुम मेरे गुलाम नहीं हो। तुम्हें मेरी छाया नहीं बननी है। अगर तुम मेरे हाथ का सहारा भी लेते हो तो वह भी तुम्हारी मौज। तुम लेते हो तो मैं खुश हूं, तुम न लो तो भी मैं खुश हूं, क्योंकि तुम्हारी मौज में मैं किसी तरह की बाधा नहीं डालना चाहता।
इसलिए मैं तुम्हारे ऊपर कोई अनुशासन आरोपित नहीं करता हूं। न मैं तुमसे कहता हूं, ऐसा करो; न मैं तुमसे कहता हूं, वैसा करो। मैं कहता हूं, जहां से तुम्हें मौज, जहां से तुम्हें सुख के स्वर सुनायी पड़ते हों, वैसा करो। तुम्हारे सुख का मैं कैसे निर्णायक हो सकता हूं! मैं हूं कौन, जो तुम्हारे बीच में आऊं? तुमने अगर मुझे अपने पास खड़े रहने का मौका दिया, तुम्हारी कृपा है; लेकिन तुम्हारे जीवन के बीच में नहीं आ सकता, तुम्हारी राह में नहीं आ सकता। तुम अगर मुझसे कुछ सीख लो, तुम्हारी मौज है; लेकिन मैं तुम्हें मजबूर नहीं कर सकता कुछ सीखने को। तुम अपनी मौज से मेरे पास आते हो, मुझे स्वीकार है। कोई आ जाता है तो स्वीकार है, कोई चला जाता है तो स्वीकार है।
चार-पांच दिन पहले एक युवती आयी। उसने यूरोप से नाम मांगा था, संन्यास मांगा था, उसे पहुंचा दिया था। कभी आयी नहीं थी, कभी मुझे देखा नहीं था, कोई पहचान न थी। आयी फिर, कहने लगी कि मैं तो कुछ बेचैनी अनुभव करती हूं संन्यास में, कुछ बंधा-बंधापन मालूम पड़ता है। तो मैंने कहा, तू माला वापस कर दे। संन्यास तो तुझे मुक्त करने को है, बांधने को नहीं है।
वह थोड़ी घबड़ायी, क्योंकि उसने यह कभी सोचा न था। उसने सोचा होगा, मैं समझाऊंगा, बुझाऊंगा कि ऐसा कभी नहीं करना। मैंने कहा, तू देर मत कर अब। वह कहने लगी, मुझे सोचने का मौका दें। मैंने कहा, तू फिर सोच लेना, माला अभी तू छोड़; क्योंकि बंधी-बंधी सोचेगी भी तो सोचना भी तो पूरा न हो पाएगा। तू मुक्त होकर सोच और यह माला तेरे लिए प्रतीक्षा करेगी, जब तू सोच ले, और सोच ले ठीक से और पाए कि तेरी स्वतंत्रता में बाधा नहीं है, फिर ले लेना। तू अगर एक हजार एक बार आएगी और लौटाएगी और वापस आएगी, तो भी मुझे कोई अड़चन नहीं है। मगर बेमन से, जरा सी भी अड़चन तेरे मन में हो रही हो, तो मैं खिलाफ हूं। मैं तुझे अड़चन दूं, यह मुझसे न होगा।
वह तो बहुत घबड़ाने लगी। वह तो कहने लगी कि यह तो... आप मुझे इतनी स्वतंत्रता दे रहे हैं कि मैं यह भी छोड़ दूं!
इतनी ही स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है कि अगर मेरे विपरीत जाने की स्वतंत्रता न हो तो क्या खाक स्वतंत्रता है! और जब मैं तुम्हें मुझसे विपरीत जाने की भी स्वतंत्रता देता हूं, फिर भी अगर तुम मेरे पास हो, तो उस होने में कुछ गौरव है। अगर वह स्वतंत्रता ही न हो, सारा गौरव समाप्त हो गया।
तो उस गुरु की वह जाने। मैं ऐसा न कर पाता। इससे तुम यह मत सोचना कि मैं उसकी निंदा कर रहा हूं। इतना ही कह रहा हूं कि मैं मैं हूं, वह वह है। उस गुरु की वह जाने। जो उसे ठीक लगा, उसने किया। जो उसके स्वभाव के अनुकूल पड़ा, उसने किया। कहीं मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उसने गलत किया। अपना-अपना ढंग है।
हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि गालिब का है अंदाजे-बयां और
सुखनवर तो और भी बहुत अच्छे-अच्छे हैं। गीत गाने वाले तो बहुत हैं।
कहते हैं कि गालिब का है अंदाजे-बयां और
अपने-अपने अंदाज हैं।
तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उस गुरु की कोई निंदा है मेरे मन में। जो उसने किया, उसने किया। जो उससे हो सकता था, हुआ। यही उसे स्वाभाविक रहा होगा, यही सहज था। जो मुझे सहज है, मैं कर रहा हूं।

इस बात को मैं तुम्हें कितने ढंग से कहूं कि मेरे मन में तुलना नहीं है। और तुम्हारे मन में तुलना है। इसलिए बड़ी चूक होती है। जब भी मैं कुछ कहता हूं, तुम तुलनात्मक ढंग से सोचने लगते हो।
जब मैं बुद्ध पर बोलता हूं तो मैं कहता हूं, अहा! ऐसे वचन तो कभी किसी
ने कहे ही नहीं! अब तुम मुश्किल में पड़े। क्योंकि यही मैंने महावीर पर बोलते हुए भी कहा था, कि ऐसे वचन तो किसी ने कभी कहे ही नहीं। और यही मैंने कृष्ण पर बोलते हुए कहा था। अब तुम मुश्किल में पड़े! अब तुम कहने लगे, यह तो विरोधाभास हो गया। अगर कृष्ण ने ऐसे वचन कहे थे कि जो किसी ने न कहे, तो फिर यही वचन बुद्ध के संबंध में नहीं कहना चाहिए।
तुम तुलना कर रहे हो। मैं तुलना नहीं कर रहा हूं। मैं जब बुद्ध के वचनों की बात कर रहा हूं, तो बुद्ध के अतिरिक्त और कोई मेरे ख्याल में नहीं है। जब मैं कहता हूं, ऐसे वचन किसी ने नहीं कहे, तो मैं सिर्फ बुद्ध के वचनों के आनंद से तरोबोर हूं, डूबा हूं। अभी तुम कृष्ण की बात भी मत उठाना, नहीं तो कृष्ण मुश्किल में पड़ेंगे। अभी तुम महावीर को बीच में ही मत लाना, मैं उनको हटा दूंगा रास्ते से। जब महावीर की मैं बात कर रहा हूं, तब मैं उनमें डूबा हूं।
तुम मेरी बात को समझने की कोशिश करो। जब मैं गौरीशंकर के पास खड़ा हूं
तो मैं कहता हूं, अहा! ऐसा कोई पर्वत-शिखर नहीं। इससे तुम यह मत समझना कि मैं यह कह रहा हूं कि दूसरे पर्वत-शिखर इस पर्वत-शिखर के सामने फीके हैं। यह मैं कह ही नहीं रहा। मैं इतना ही कह रहा हूं कि यह पर्वत-शिखर इतना सुंदर है कि ऐसे पर्वत-शिखर हो ही कैसे सकते हैं! यही मैं कंचनजंघा के सामने भी खड़े होकर कहूंगा। क्योंकि होगा गौरीशंकर ऊंचा बहुत, ऊंचाई से कहीं कुछ सब ऊंचाइयां थोड़े ही होती हैं! सौंदर्य और भी हैं!
तुम मेरे वक्तव्यों को तुलना मत बनाना। मेरे वक्तव्य आणविक हैं। एक-
एक अलग-अलग हैं। तुम मेरे वक्तव्यों की माला मत बनाना। एक-एक मनका अलग-अलग है। और एक-एक मनका इतना सुंदर है कि मैं अभिभूत हो जाता हूं।
तो कल जब इस फकीर की बात कर रहा था, तब तुमने सोचा होगा, कि फकीर ने बिल्कुल ठीक किया। क्योंकि मैं डूबा था बिल्कुल। मैं फकीर के स्वभाव के साथ लीन हो गया था। आज जब तुमने मेरा सवाल पूछा तो मुझे मेरी याद आयी। तो अब मैं तुमसे कहता हूं--
हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि गालिब का है अंदाजे-बयां और
क्यों मैंने तुम्हें स्वीकार किया? क्योंकि स्वीकार मेरा आनंद है।
इसे भी तुम समझ लो। तुम्हारे कारण स्वीकार नहीं किया है, अपने कारण स्वीकार किया है। साधारणतः लोग स्वीकार करते हैं तुम्हारे कारण। वे कहते हैं, तुम सुंदर हो, इसलिए स्वीकार करते हैं; तुम सुशील हो, इसलिए स्वीकार करते हैं; तुम संतुलित हो, इसलिए स्वीकार करते हैं; तुम संयमी हो, इसलिए स्वीकार करते हैं। यह बात ही नहीं है। स्वीकार करना मेरा स्वभाव है, इसलिए स्वीकार करता हूं। तुम कैसे हो, यह हिसाब लगाता ही नहीं।
कौन माथापची करे कि तुम कैसे हो! कौन समय खराब करे! मेरा प्रयोजन भी क्या है कि तुम कैसे हो! यह तुम्हीं सोचो! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं। यह स्वीकार बेशर्त है। इसमें कोई शर्त नहीं है कि तुम ऐसे हो तो स्वीकार करूंगा, तुम ऐसे हो तो स्वीकार करूंगा। और जब मैं तुम्हें बेशर्त स्वीकार करता हूं, तो मैं तुम्हें एक शिक्षण दे रहा हूं कि तुम भी अपने को बेशर्त स्वीकार करो।
जरा देखो, जब मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया तो तुम क्यों अड़चन डाल रहे हो? तुम तो अपने मुझसे ज्यादा करीब हो। जब मैंने भी बाधा न डाली तुम्हें स्वीकार करने में, कोई मापदंड न बनाया, तो तुम क्यों... ?
एक गीत मैं पढ़ता था कल--
चुकती जाती है आयु, किंतु
भारी होती जाती गठरी
मन तो बेदाग, मगर तन की
चादर में लाख लगीं थिगरी

धर दी संतों ने तो जैसी
की तैसी उमर-चदरिया यह
पर मैं दुर्बल इंसान, कहां तक
रक्खूं इसे साफ-सुथरी
बचपन ने इसे भिगो डाला
यौवन ने मैला कर डाला
अब जाने कब रंगरेज मिले
चूनर निष्काम कहां पर हो!
मैं तो रंगरेज हूं। मुझे बिल्कुल फिकर ही नहीं कि तुम्हारी गंदी है चदरिया कि नहीं है गंदी, रंग देता हूं। यह गेरुआ रंग! अब अगर रंगरेज भी फिकर करने लगे कि धोयी है कि नहीं धोयी है... कौन फिकर करे! यहां तो रंग तैयार रखा है, तुम आओ, डुबाया! यह तुम पीछे समझ लेना कि सफाई करनी कि नहीं करनी।

तीसरा प्रश्नः ओशो,
शासकीय सेवा में हूं।
चार दिन के विश्राम में यहां आया था,
बोधि-दिवस को।
सिर पर हिमालय सा बोझ लिए
बुद्धि के सहारे यहां पहुंचा था।
प्याला पिया।
हिमालय गल गया संताप का,
हो गया शांत।
भूल गया लौटना।
किंतु हिसाब किया बुद्धि ने--
घर का क्या होगा?
परिवार का क्या होगा?
झट से बोल उठा हृदयः
खो जा, गोता लगा जा प्रिय के सागर में!
इस तरह जी रहा हूं,
मन में बड़ा द्वंद्व है,
कृपया मार्गदर्शन करें!

ठीक किया। रुक गए तो अच्छा किया। ऐसे क्षण कभी-कभी जीवन में आते हैं,
जब सागर करीब होता है और डुबकी लग सकती है। ऐसे क्षण मुश्किल से कभी आते हैं, जब तुम्हें सागर दिखायी पड़ता है और डुबकी लगाने की प्रगाढ़ आकांक्षा उठती है। ऐसे क्षणों में सब हिसाब-किताब छोड़ देना जरूरी है।
लेकिन, अब डुबकी लग गयी, अब घर जा सकते हो। क्योंकि अगर सागर का मोह बन जाए, तो यह डुबकी न हुई, यह फिर नया संसार हुआ। मुझमें डूबो, लेकिन अगर डुबकी ठीक से लग गयी, तो फिर तुम कहीं भी जाओ, मुझमें डूबे रहोगे। अगर कभी- कभी धूल-धवांस जम जाए, फिर आ जाना, फिर डुबकी लगा लेना। लेकिन अब सागर के किनारे ही बैठ जाने की कोई जरूरत नहीं है। घर-द्वार है, परिवार है, बच्चे हैं, वहां भी परमात्मा है--इतना ही जितना यहां है।
तो मैं तुम्हें कहीं से भी तोड़ना नहीं चाहता। परमात्मा से तो जोड़ना चाहता हूं, लेकिन कहीं से तोड़ना नहीं चाहता। इस बात को मैं जितने जोर देकर कह सकूं, कहना चाहता हूं। मैं तुम्हें संसार से तोड़ना नहीं चाहता और मैं तुम्हें संन्यास से जोड़ना चाहता हूं। जो संन्यास संसार से तोड़ने पर निर्भर हो, वह संसार के विपरीत होगा, अधूरा होगा; अपंग होगा, अपाहिज होगा। इसलिए तुम्हारे तथाकथित संन्यासी अपाहिज हैं, लंगड़े-लूले हैं; तुम पर निर्भर हैं; तुम्हारे इशारों पर चलते हैं। अब यह बड़े मजे की बात है, गृहस्थी चलाते हैं संन्यासियों को, उनको इशारा देते हैं।

मेरे पास अगर कभी कोई संन्यासी मिलने आता है, तो पूछना पड़ता है अपने श्रावकों से कि मिल लूं? अगर वे हां कहते हैं, ठीक; न कहते हैं तो नहीं आ पाते।
जैन-मुनि मुझे मिलने आना चाहते हैं; कभी आ भी जाते हैं चोरी-छिपे, तो
वे कहते हैं, श्रावक आने नहीं देते। श्रावक! संसारी आने नहीं देते। यह खूब संन्यास हुआ! और ये सोचते हैं कि उन्होंने संसार का त्याग कर दिया है। जिन पर तुम निर्भर हो, उनका तुम त्याग कर कैसे सकोगे? कहीं से रोटी तो मांगोगे! रोटी में ही छिपी जंजीरें आ जाएंगी। कहीं से कपड़ा तो मांगोगे! कपड़े में ही कारागृह आ जाएगा। कहीं रात ठहरने की जगह तो मांगोगे! सुबह पाओगे, पैरों में जंजीरें पड़ी हैं।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अपाहिज संन्यासी मुझे बनाने नहीं। जब संन्यासी को भी संसार पर निर्भर रहना पड़ता है, तो यही बेहतर होगा कि संन्यासी संसारी रहे। कम से कम मुक्त तो रहोगे। मेरा संन्यासी कम से कम मुक्त तो है, किसी पर निर्भर तो नहीं; अपनी नौकरी करता है, अपनी दुकान करता है, बच जाते हैं जो क्षण, परमात्मा की भक्ति में, सत्य के गुणगान में, ध्यान में लगा देता है। कम से कम किसी पर निर्भर तो नहीं है। किसी के ऊपर बोझ तो नहीं है। किसी दूसरे से आज्ञा तो नहीं मांगनी है। मुक्त तो है।
मैं तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता। तुम जहां हो, वहीं तुम्हें संन्यासी होना है।
तुमने सागर में डुबकी लगा ली, अब तुम जाओ! लौट जाओ घर! जो रस तुम्हें मिला है, उसे साथ ले जाओ। यह रस कुछ बाहर का नहीं है, जो यहां से चले जाने से छूट जाएगा। अगर यहां से चले जाने से छूट जाए तो यहां रहकर भी क्या फायदा! यह तो धोखा होगा।
इसलिए मैं कहता हूं मेरे संन्यासियों कोः आओ, जाओ! हां, कभी-कभी ऐसा लगे कि फिर एक झलक लेनी है, फिर एक गहराई में उतरना है--फिर आ जाना। लेकिन सदा ख्याल रखना कि जो गहराई भी तुम्हें मिले, उसे संसार में जाकर सम्हालना है। जो ध्यान तुम्हें लगे, उसे बाजार में सम्हालना है। किसी न किसी दिन तुम्हारी दुकान ही तुम्हारा मंदिर हो जाए, यह मेरी आकांक्षा है।
अछा किया, रुक गए। उस क्षण भाग जाते तो बुरा होता।
जीना है तो पीकर जी
पीना है तो जीकर पी
पी की नजरें घोल के पी ले
जय साकी की बोल के पी ले
मगर फिर जाओ। फिर जब वहां समय मिल जाए, वहां भी आंख बंद कर लेना और डुबकी लगा लेना। जब ऐसा लगे कि अनुभव थोड़ा हाथ से छूटने लगा, फिर आ जाना। फिर मुझमें स्नान कर लेना। लेकिन आखिरी ख्याल में यही बात रहे कि एक दिन ऐसी घड़ी लानी है कि तुम जहां हो वहीं डुबकी लगा सको, यहां आने की जरूरत न रह जाए। ठीक है थोड़े समय आना-जाना। मुझसे भी मुक्त हो जाना जरूरी है। बीमारी से मुक्त हुए, फिर औषधि से बंध गए--वह भी बुरा है। बीमारी से मुक्त हुए, फिर आहिस्ता-आहिस्ता औषधि की मात्रा कम करते जाना है, फिर उससे भी मुक्त हो जाना है।
तुम जिस दिन परम मुक्त हो, तुम जिस दिन तुम हो, बस उसी दिन काम पूरा हुआ। फिर उस दिन दूसरे तुम्हारे पास आकर तुममें डुबकी लगाने लगेंगे।
तो मैं तो एकशृंखला पैदा करना चाहता हूं। मेरी ज्योति से तुमने अपनी ज्योति जला ली, फिर ठीक है; कभी-कभी धीमी पड़ जाए, लौट आना। फिर उकसा लेना। फिर ताजा कर लेना। कभी जोश गिर जाए, उत्साह खो जाए, धुन दूर सुनायी पड़ने लगे, हाथ से धागे छूटते मालूम पड़ें, लौट आना। लेकिन धीरे-धीरे जब तुम्हारी ज्योति जलने लगे, तुम्हारे घर में उजेला हो, तो यहां आने की कोई जरूरत नहीं; दूसरे तुम्हारे पास आने लगेंगे, फिर उनकी ज्योति जलाना।
ज्योति से ज्योति जलाता चल!
इसलिए किसी तरह का द्वंद्व खड़ा मत करो। मैं द्वंद्व खड़ा नहीं करना चाहता, विस जत करना चाहता हूं। यहां मोह मत बनाओ। मोह से तो द्वंद्व खड़ा होगा। फिर बचे वहां तड़फेंगे तो उनकी पीड़ा; फिर पत्नी दुखी होगी, उसकी पीड़ा;

फिर परिवार है, मां है, पिता हैं, वृद्ध हैं, उनकी पीड़ा! नहीं, मुझे बुद्ध और महावीर का ढंग कभी जंचा नहीं। हजारों घर उदास हो गए थे। हजारों पत्नियां जीते जी, पति के जीते जी विधवा हो गयीं! हजारों बच्चे बाप के जीते जी अनाथ हो गए। मुझे वह ढंग कभी जंचा नहीं। उसमें मुझे कहीं भूल मालूम पड़ती रही है।
इसीलिए अगर बुद्ध और महावीर उखड़ गए और इस जीवन की गहराई में उनकी छाया
न पड़ी--स्वाभाविक है। बात ही ऐसी थी कि पड़ नहीं सकती थी। जीवन के विपरीत जाकर तुम उखड़ ही जाओगे; ज्यादा देर चल नहीं सकता।
ठीक है, बुद्ध के प्रभाव में हजारों लोग संन्यस्त हो गए, घर-द्वार छोड़ दिए। संन्यास का मामला था। अगर किसी और कारण घर-द्वार छोड़ते तो लोग भी निंदा करते; अब धर्म का मामला था, लोग भी निंदा न कर सके। पत्नियां आंसू पीकर रह गयीं; रो भी न सकीं, रोने की भी स्वतंत्रता न थी। यह पति मर जाता तो रो लेतीं। यह पति चोर हो जाता, बेईमान हो जाता, भाग जाता, भगोड़ा हो जाता, तो रो लेतीं। यह भी उपाय न बचा। यह संन्यस्त हो गया। घूंट पीकर रह गयीं। बचों की आंखों में आंसू सूखकर रह गए। हजारों घर-परिवार बरबाद हुए। जहां रौनक थी, बेरौनकी आ गयी। जहां घर सजे थे, वहां खंडहर हो गए। यह ज्यादा दिन चल नहीं सकता था।
मैं पक्ष में नहीं हूं। मैं कहता हूं, मेरे कारण अगर तुम्हारे घर में थोड़ी रौनक आ जाए, तो ही बात ठीक है; घट जाए रौनक तो मैं तुम्हारा दुश्मन साबित हुआ।
जाओ! कभी-कभी आ गए! और तुम तब पाओगे कि तुम्हारी पत्नी और बचे मेरे विपरीत न होंगे। अगर तुम यहां से प्रेम ले जाते हो, मुझमें डूबकर जाते हो और ज्यादा प्रेमपूर्ण होकर लौटते हो, तो वे तुम्हारे विपरीत न होंगे। बुद्ध और महावीर के प्रभाव के कारण संन्यास के प्रति कितना ही ऊपरी सम्मान हो, भीतर बड़ी गहरी चोट पड़ गयी भारत में। संन्यास का नाम सुनते ही पत्नी घबड़ा जाती है, मां घबड़ा जाती है, बाप घबड़ा जाता है। मेरे संन्यास के नाम से भी घबड़ा जाता है, क्योंकि उसको तो ख्याल पुराना ही है। संन्यास! किसी और का लड़का ले, तो पैर छू आता है जाकर। अपना लड़का! यह तो बर्बादी हो जाएगी। संन्यास शब्द विकृत हो गया। उस शब्द में जहर घुल गया।
मेरे पास आ जाती हैं पत्नियां। वे कहती हैं, आप यह क्या कर रहे हैं, हमारे पति को संन्यास दे रहे हैं! उनका कसूर नहीं। ढाई हजार साल हो गए बुद्ध-महावीर को, फिर हजार साल हो गए शंकराचार्य को, उन्होंने जो चोट पहुंचायी, वह अभी तक भी घाव हरा है, वह बुझा नहीं। पत्नी घबड़ाती है कि आप यह क्या कर रहे हैं, मेरे पति को संन्यास दे रहे हैं!
ऐसा पूना में एक युवक ने संन्यास ले लिया। उसकी मां, उसके बाप आए। बाप
तो किसी तरह बैठे रहे, आंख से आंसू बहते रहे, मां तो लोटने लगी। मैंने उससे कहा भी कि तू सुन भी तो! यह संन्यास कोई ऐसा संन्यास नहीं जैसा तू सोचती है। वह कहती है, मुझे सुनना ही नहीं। आप मुझसे कुछ कहिए ही मत। कहीं ऐसा न हो कि आप मुझे राजी कर लें, मुझे सुनना ही नहीं। बस आप माला वापस ले लो। मेरे लड़के को मुझे वापस दे दो।
मैं समझता हूं। इसके रोने में, इसके जमीन पर लोटने में बुद्ध और महावीर का हाथ है, शंकराचार्य का हाथ है। मैंने उसके लड़के का संन्यास वापस ले लिया। मैंने कहा, तू फिकर मत कर। मगर इसमें कसूर उसका नहीं है, इसमें बड़े-बड़े हाथ हैं।
मेरा संन्यास ऐसा संन्यास नहीं है। मेरा संन्यास विधायक है। तुम जहां
हो वहीं तुम्हें सुंदर और सुंदरतम होते जाना है। जहां हो, वहीं तुम्हें प्रेमपूर्ण और प्रेमपूर्ण होते जाना है। तुम जहां हो, जो तुम कर रहे हो, उससे तुम्हें उखाड़ना नहीं। तुम्हारी भूमि से तुम्हारी जड़ें तोड़नी नहीं। और तुम्हारी छाया में जो जी रहे हैं, उनकी छाया छीननी नहीं। इसलिए जाओ!

आखिरी प्रश्नः चेतना और चैतन्य ने पूछा है। आपके स्वास्थ्य को देखकर हमारे हृदय द्रवित हो जाते हैं। इस परिस्थिति में विधायक दृष्टि साथ नहीं दे पाती। कृपया राह बताएं!

स्वाभाविक है। मुझसे लगाव बनता है तो मेरे शरीर से भी लगाव बन जाता है। क्योंकि अभी तुम्हें यह कठिन है, मुझमें और मेरे शरीर में फासला करना। कठिन है, क्योंकि अभी तुम अपने भीतर भी अपने में और अपने शरीर में फासला नहीं कर पाए हो। जो तुम्हारे भीतर नहीं हुआ है, वह तुम मेरे भीतर भी न कर पाओगे। गणित सीधा-साफ है। एक ही उपाय है कि तुम अपने भीतर शरीर में और अपने में फासला करना शुरू करो।
मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं। शरीर के संबंध में कुछ नहीं कह सकता--मेरे संबंध में कहता हूं, मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं। लेकिन शरीर के अपने नियम हैं। शरीर का अपना ढंग-ढांचा है। वह अपनी राह चलेगा। और शरीर को मरना है, तो रुग्ण रह-रह कर वह अन्यास करेगा। उसे जाना है, उसे विदा होना है। तो वह अचानक तो विदा नहीं हो सकता। धीरे-धीरे क्रमशः विदा होगा।
मुझे देखो। शरीर को भूलो। शरीर से ज्यादा मोह मत बनाओ। बनता है, स्वाभाविक है। उसकी निंदा नहीं है। लेकिन अपने को जगाओ। क्योंकि तुम्हारे मोह बनाने से सिर्फ दुख होगा तुम्हें।
किसके रोने से कौन रुका है कभी यहां
जाने को ही सब आए हैं, सब जाएंगे
चलने की ही तो तैयारी बस जीवन है
कुछ सुबह गए कुछ डेरा शाम उठाएंगे
जाना तो होगा। तो शरीर खबरें देने लगता है कि जाएगा। सभी को जाना होगा। इस सत्य को स्वीकार कर लो। इसके साथ बहुत जद्दोजहद करने की जरूरत नहीं है। पीड़ा हो, तो जागने की चेष्टा करो। दुख हो, तो समझने की कोशिश करो, कहीं मोह बनने लगा। जहां मोह बनता है वहां दुख होता है। दुख से तुम मुक्त न हो सकोगे जब तक मोह से मुक्त न हो जाओ।
लेकिन मोह से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि मुझे और मेरे शरीर को अलग-अलग देखो। ठीक है, शरीर की फिकर करनी उचित है, चिंता लेनी उचित है, हिफाजत करनी उचित है। फिर भी वह जाएगा। और एक बार संबोधि की घटना घट जाए, तो शरीर से संबंध टूट जाता है।
वह ख्याल भी तुम समझ लो।
मेरा शरीर कुछ भी करके पूरा स्वस्थ नहीं हो सकता; क्योंकि शरीर के स्वास्थ्य के लिए एक अनिवार्य बात है, वह खतम हो गयी है। मेरा संबंध उससे टूट गया है। जैसे नाव किनारे से बिल्कुल खुल गयी है। कुछ छोटी-मोटी खूंटी बची हैं जिनसे किनारे से रुकी हुई है--रुकी है कि तुम्हारे थोड़े काम आ जाऊं। लेकिन यह रुकना ज्यादा देर नहीं हो सकता। और शरीर पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो सकता। जिस आधार पर शरीर स्वस्थ होता है--तादात्म्य... ।
इसीलिए तो तुम एक ख्याल समझने की कोशिश करोः जो व्यक्ति भी इस बात को ठीक से जान गया कि मैं शरीर नहीं हूं, वह फिर दुबारा शरीर में न आ सकेगा। जो भी जाग गया, वह दुबारा शरीर में न आ सकेगा। क्योंकि शरीर में आने का जो मौलिक आधार है कि मैं शरीर हूं, वह छूट गया--तादात्म्य टूट गया। जैसे तुमने शराब पी हो और तुम रास्ते पर चलो तो डगमगाते हो; लेकिन शराब उतर गयी, फिर तो नहीं डगमगाओगे। फिर तुम डगमगाने की कोशिश भी करो तो भी तुम पाओगे कि कोशिश ही है, डगमगा नहीं पा रहे।
शरीर से जो संबंध है आत्मा का, उसका सेतु है तादात्म्य। मैं शरीर हूं, इसलिए शरीर से आत्मा जुड़ी रहती है। शरीर थोड़े ही तुम्हें पकड़े हुए है, तुम्हीं शरीर को पकड़े हुए हो। जब तुम जाग जाते हो, जब तुम्हें लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं, हाथ ढीला हो जाता है। फिर तुम शरीर में होते भी हो तो भी शरीर में तुम्हारी जड़ें नहीं रह जातीं; थोड़ी-बहुत देर चल सकते हो। फिर शरीर घर नहीं है, सराय है; और कभी भी सुबह हो जाएगी और चल पड़ना होगा।
तो तुम्हारे दुख को मैं अनुभव करता हूं। तुम्हारी पीड़ा समझता हूं। कुछ किया नहीं जा सकता। तुम मेरे शरीर में और मुझमें फर्क करना शुरू करो।
और यह फर्क तभी हो सकता है जब तुम अपने भीतर फर्क करो, क्योंकि वहीं से तुम्हें समझ आनी शुरू होगी।
मैं समझ नहीं पाया हूं अब तक यह रहस्य

मरने से क्यों सारी दुनिया घबराती है क्यों मरघट का सूनापन चीखा करता है
जब मिट्टी मिट्टी से निज ब्याह रचाती है
फिर मिट्टी तो मिटती भी नहीं कभी भाई
वह सिर्फ शक्ल की चोली बदला करती है
संगीत बदलता नहीं किसी के सरगम का
केवल गायक की बोली बदला करती है
शरीर तो आते हैं, जाते हैं। बहुत आए, बहुत गए। अनंत बार शरीर आए और गए। शरीर में स्वास्थ्य तो धोखा है; क्योंकि शरीर में अमृत हो ही नहीं सकता। वह दोस्ती ही मरणधर्मा से है। वह तो टूटेगी। लेकिन उसके टूटने से कुछ भी नहीं टूटता।
संगीत बदलता नहीं किसी के सरगम का
केवल गायक की बोली बदला करती है
तो बोली पर बहुत ध्यान मत दो, सरगम को पकड़ो। मेरी बोली पर मत जाओ, मेरे सरगम को पकड़ो! मेरे घर को मत देखो, मुझे देखो! घर की हिफाजत जितनी कर सकते हो, करो। जितनी देर रुक जाए, उतना तुम्हारे काम का है। लेकिन रोओ मत, दुखी मत होओ। क्योंकि उस दुख में और रोने में, आंसुओं में जितना समय गंवाया, वह जागने में लगाना उचित है।
आज इतना ही।